ORGANON

होम्यो दर्शन

(जैसा मेरी समझ में आया)

नोटः यह पुस्तक केवल होम्योपैथिक चिकित्सकों के लिए ही नहीं बल्कि हर व्यक्ति के पढ़ने योग्य पुस्तक है।

डा0 शैलेन्द्र ममगाई, (दून रत्न, गोल्ड मेडेलिस्ट, गढ़वाल गौरव इत्यादि)

ममगाई होम्यो क्लीनिक

218, डी0 एल0 रोड, देहरादून

(डा0 हैनिमैन विरचित ऑर्गेनन की व्याख्या)

यह व्याख्या दिल्ली होम्योपैथिक मेडिकल एशोसिएशन, दिल्ली के द्विभाषी मासिक मुख पत्र 'दि हैनिमैनियन होम्योपैथिक संदेश' में मई, 1986 से धारावहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। अब उस को संशोधित करके द्वितीय संस्करण के रूप में पुनः अनुवाद और टाइप करके पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है हिन्दी के पाठक मेरे इस प्रयास को पसन्द करेंगे।

Dr. S. K. Mamgain; E-mail: drmamgain@gmail.com

समर्पण

सन् 1966 – 67 के लगभग पहली बार जब मुझे ऑर्गेनन का पंचम संस्करण (अमेरिकन प्रकाशन) पढ़ने को मिला तो मुझे अहसास हुआ कि चिकित्सा के क्षेत्र में यहाँ पर ही सत्य है क्योकि तब तक आयुर्वेद की पुस्तकें भी पढ़ी थीं और पेट के रोग के कारण एलोपैथी भुगत रहा था। इन्जेक्शनों के प्रभाव से श्रवणशक्ति खराब हो चुकी थी। होम्योपैथी में सत्य के दर्शन मिलने से मैंने एकलव्य की तरह होम्योपैथी के आविष्कारक डा0 हैनिमैन को अपना गुरु मान कर अपना ध्यान होम्योपैथी में केन्द्रित कर दिया। उस गुरु की कृपा से होम्योपैथी के द्वारा अब तक मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति द्वारा हर प्रकार के रोगों से पीड़ित निराश रोगियों को नया जीवन मिल चुका है।

मै ऐसे महान गुरु के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

आर्गेनन का प्रस्तुत अनुवाद मेरी ओर से श्रद्धांजली स्वरूप समर्पित एक पुष्प है।

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

प्रस्तावना

भागवत पुराण के प्रथम स्कन्द के पाँचवें अध्याय के 33वें श्लोक में अन्य संदर्भ में लिखा है कि:

आमयो यश्च भूतानी जायते येन सुव्रत।
तदेव ह्यामयम् द्रव्यं न पुनाति चिकित्सिकम्।।1।5।33 भागवत

अर्थात् प्राणियों को जिस पदार्थ के सेवन से जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्सा विधि के अनुसार प्रयोग करने पर क्या उस रोग को दूर नहीं करता? यह श्लोक उक्त स्थान पर एक उदाहरण के रूप में व्यक्त किया गया है। यह एक तथ्य है कि किसी बात का उदाहरण केवल तब ही दिया जा सकता है जब वह बात वास्तविक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि उस काल में जब यह श्लोक उद्धृत किया गया ''सम: समम् शमयति'' के सिद्धान्त पर प्राचीन भारत में चिकित्सा की जाती रही होगी। परन्तु यह विद्या अन्य अनेक विद्याओं की तरह काल के गाल में समा गई। यही सिद्धान्त लैटिन भाषा के सूत्र 'सिमिलिया सिमिलिबस क्युरेन्तुर' जिस पर आज की होम्योपैथी का आविष्कार हुआ है जिसको जर्मनी के डॉक्टर हैनिमैन ने स्वतन्त्र रूप से सन् 1790 से 1843 के बीच पुन: पूर्ण व्यवहारिक रूप में आविष्कार करके संसार के सामने प्रस्तुत किया।

होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति प्रकृति के नियमों पर आधारित पूर्णत: एक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है। जिस प्रकार हर विज्ञान के कुछ आधारभूत नियम होते हैं, उसी प्रकार होम्योपैथी के भी कुछ आधारभूत नियम हैं। इन आधारभूत नियमों के अनुसार कार्य करने पर सार्वभौमिक परिणाम अवश्य मिलते हैं, यदि कभी असफलता मिल जाय तो वैज्ञानिक अपने कार्य के विश्लेषण द्वारा असफलता का पता लगा कर समुचित सुधार करके पुन: सफलता प्राप्त कर सकता है। यह नियम है कि किसी भी विज्ञान में उसके नियमों और दशाओं को पूरा करते हुए कार्य किया जाता है तो देश और काल से परे सुनिश्चित परिणाम मिलता है, साथ ही ज्ञान के नए द्वार भी खुलते हैं। विज्ञान के अलग अलग क्षेत्रों में हैनिमैन, आर्किमिडीज, गैलिलियो, न्यूटन, आइन्स्टीन, स्टीफन हॉकिन्स आदि अनेक वैज्ञानिक इस तथ्य के उदाहरण हैं। अत: विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में ज्ञान और दक्षता प्राप्त करने के लिए आधारभूत नियमों और संलग्न दशाओं को पूरी तरह आत्मसात करना आवश्यक होता है। पहाड़ की चोटी पर चढ़ने के लिए हर कदम सम्भाल कर और जमा कर रखते हुए ही आगे बढ़ना पड़ता है।

Dr. S.K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं स्वयं होम्योपैथ बनने के लिए होम्योपैथी के आधारभूत नियमों को भली प्रकार समझने का प्रयास करता रहा हूँ। अब तक जो थोड़ा सा ज्ञान मुझे मिला है उसी के आधार पर मैंने अब तक विभिन्न प्रकार के अनेक रोगों में चमत्कारिक परिणाम पाये हैं। ये नियम जो मूलत: महर्षि हैनिमैन द्वारा ''ऑर्गेनन'' में संग्रहित किए गए हैं और जैसे मेरी समझ में आए कलमबद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ। इस पर विद्वान पाठकों की समालोचना सादर आमन्त्रित है ताकि मैं समुचित सुधार कर सकूँ।

जिस प्रकार किसी भी विज्ञान के मूल नियमों को जाने बिना उसके कार्य नहीं किए जा सकते, मेरा विश्वास है कि उसी प्रकार होम्योपैथी के नियमों को आत्मसात किए बिना न तो हम होम्योपैथी के महत्व को समझ सकते हैं और न ही रोगी को बिना कोई नुकसान पहुँचाए विज्ञान सम्मत कलात्मक आरोग्य सम्पन्न कर सकते हैं। लगभग पचास वर्षो के अनुभव के बाद मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि होम्योपैथिक चिकित्सा वास्तविक संजीवनी चिकित्सा पद्धति है।

चिकित्सक के नाते वास्तव में हमें करना क्या है? जो चीज शरीर को जिन्दा रखती है उसे हम जीवनी शक्ति कहते हैं, वास्तव में यही शक्ति स्वास्थ्य की दशा में; औषधीय या नशीले पदार्थ के प्रभाव में तथा रोग ग्रस्त हो जाने की दशा में शरीर के स्वास्थ्य के लिये जिम्मेदार होती है। रोग की दशा को पुन: स्वस्थ दशा में बदलने के लिए चिकित्सक को इस जीवनी शक्ति को फिर से स्वस्थ दशा जैसी प्रक्रिया करने के लिए उचित औषधि की उद्दीपक शक्ति के द्वारा उद्दीपित करने की आवश्यकता होती है। रोग का नाम कुछ भी हो, औषधि के रूप में प्रयुक्त पदार्थ कुछ भी हो, यदि उसका उपयोग 'सिमिलिया सिमिलिबस क्युरेन्तुर' के सिद्धान्त पर किया गया हो अर्थात् रोग और औषधि के लक्षणों की समानता के आधार पर किया गया हो तो चिकित्सा होम्योपैथिक चिकित्सा होगी और रोग सहजता से द्रुत गति से समाप्त हो कर स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाएगी।

डा0 एम0 एल0 टायलर अपनी पुस्तक ''ड्रग पिक्चर्स'' के पृष्ठ 358 पर लिखती हैं ''..... दुर्भाग्यवश हैनिमैन के समय से ही हर कोई जो भी होम्योपैथी की प्रैक्टिस (हैनिमैन के लगभग पचास वर्षो के अन्वेषणों, प्रयोगों, अनुभवों और ज्ञान के विस्तृत अध्ययन के बिना ही) करना चाहता है अथवा लिखना चाहता है, हमेशाा एक कदम आगे निकलने के लिए तत्पर रहता है।''

Dr. S. K. Mangain. Email: drmangain@gmail.com

अत: होम्योपैथिक चिकित्सक होने के नाते मैंने शुरु से ही इस ज्ञान को समझने का प्रयास किया है और अब तक जैसा मेरी समझ में आया यहाँ उसको प्रकट करने का प्रयास कर रहा हूँ।

जहाँ तक रोगियों को रोगों की दशा में आराम पहुँचाने का प्रश्न है पिछले बहुत काल से हर चिकित्सा पद्धति के माध्यम से लाखों रोगी नित्य आराम पाते रहते हैं फिर होम्योपैथी में ऐसी क्या विशेषता है कि जिसके आधार पर अनेक अन्य चिकित्सा पद्धति के विद्वान चिकित्सक उस पद्धति को छोड़ कर हैनिमैन के अनुयायी बने और होम्योपैथी को अपने अन्वेषणों और अनुभवों से समृद्ध बनाया और होम्योपैथी को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा कहा, हेरिंग, कैण्ट, क्लार्क, बरनेट, एलेन, महेन्द्र लाल सरकार, जे0 एन0 कांजिलाल आदि अनेक चिकित्सको की एक श्रृंखला है जिन्होंने होम्योपैथी को अपने ज्ञान से समृद्ध किया और भविष्य के होम्योपैथिक चिकित्सको के लिए लिपिबद्ध करके छोड़ गए। हमें इस ज्ञान से लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि हम भी रोग पीड़ित मानवता की कुछ सेवा कर सकें।

*

Dr. S. K. Mamgain; Email: drmamgain@gmail.com

होम्यो दर्शन

(जैसा मेरी समझ में आया)

होम्योपैथी में क्या विशेषता है यह जानने के लिए तथा प्रयोग द्वारा इसकी श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए हमें सबसे पहले इसके मर्म को समझना पड़ेगा। मर्म को समझने से तात्पर्य है इसके मूल सिद्धान्तों को आत्मसात करना अर्थात् 'ऑर्गेनन' में वर्णित नियमों एवं सिद्धान्तों को भली प्रकार समझना और फिर उनके अनुसार चिकित्सा कार्य करना। ये नियम और सिद्धान्त जिस प्रकार मेरी समझ में आये सुधी पाठकों के समक्ष यहाँ पर प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है पाठक इसे पसन्द करेंगे।

1म अनुच्छेद में ही हैनिमैन ने चिकित्सक के कर्त्तव्य और लक्ष्य पर जोर देते हुए कहा:

''चिकित्सक के जीवन का एकमात्र ध्येय (मिशन) रोगी के स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित करना है, जैसा कि यह परिभाषित किया गया है, निरोग (CURE) करना है।''

इस मिशन का अर्थ है मन और कर्म से पूरी निष्ठा के साथ रोगियों की इस प्रकार चिकित्सा करना कि उनके रोग समूल समाप्त हो जाएँ और वे पुन: स्वस्थ हो कर बिना किसी प्रकार की औषधि का उपयोग किए पुन: स्वस्थ जीवन जीने लगें। जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, इसी मिशन शब्द का यह अर्थ कदापि नहीं है कि चिकित्सक रोगी को दी गई सेवा का कोई शुल्क न लें। डा0 ब्रैडफोर्ड ने हैनिमैन की जीवनी में लिखा है कि एक बार किसी युवक चिकित्सक ने हैनिमैन से इस विषय में राय पूछी तो उन्होंने उसको लिखा कि 'इस संसार में भलाई सबसे पहले भुला दी जाती है अत: अपनी सेवा के लिए प्रत्येक रोगी से उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ अवश्य लेना चाहिए। गरीब व्यक्ति को भी बिना कुछ लिए दवा न दें भले ही उससे कुछ ही पैसे लें।'

महर्षि हैनिमैन ने अपने जीवन के पचास वर्ष अनेक कष्ट झेल कर भी होम्योपैथिक चिकित्सा की हर पहलू से जाँच, परख करके उसको पूर्ण रूप में प्रस्थापित किया और जब आवागमन और संचार के साधन बहुत सीमित थे संसार भर में यश और ख्याति प्राप्त की और प्रचुर धन भी कमाया।

स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि 'फूल की सुगन्ध हवा के रुख के अनुसार फैलती है जबकि मनुष्य के ज्ञान और व्यक्तित्व की सुगन्ध हवा के रुख के बिना ही सब ओर फैलती है।' जब कोई चिकित्सक आरोग्यदायक चिकित्सा करने में सफल हो

Dr. S. K. Mangain. Email: drmangain@gmail.com

जाता है तो बिना किसी प्रकार के विज्ञापन के ही उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल जाती है। रोगी उसे स्वयं ढूँढ लेते हैं।

महर्षि हैनिमैन के अनुयायियों में अनेक चिकित्सक हुए हैं जिन्होंने होम्योपैथी की उन्नति में अविस्मरणीय योगदान दिया और अनेक तथाकथित असाध्य रोगियों को इस चिकित्सा के द्वारा निरोग करके होम्योपैथी के इतिहास में अमर हो गए।

अत: हैनिमैन द्वारा प्रयुक्त शब्द मिशन का तात्पर्य है होम्यो-विज्ञान का यथाशक्ति गहन अध्ययन करके ज्ञानपूर्वक रोगी को होम्योपैथिक चिकित्सा द्वारा निरोग (क्योर) करना।

2रे अनुच्छेद वर्णित निरोग शब्द का भी थोड़ा विवेचन कर लें, जिसे अंग्रेजी में क्योर (cure) कहा गया है। पूर्वकाल में यह शब्द लेटिन भाषा में (care) अर्थात् देखभाल करने या सेवा, शुश्रुषा करने के अर्थ में प्रयुक्त होता था। बाद में, चिकित्सा में चिकित्सित (treated) के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। जब रोग में आराम मिलने के बाद रोगी को अस्पताल से छुट्टी दे दी जाती है तो डिस्चार्ज स्लिप में आज भी परिणाम - cured लिखा जाता है, जिसका तात्पर्य होता है चिकित्सित। महर्षि हैनिमैन ने इसी शब्द को पहली बार सम्पूर्ण निरोग या आरोग्य करने के अर्थ में परिभाषित किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि चिकित्सा ऐसी होनी चाहिए कि उससे रोग के समस्त लक्षण पूरी तरह समाप्त हो जाएँ ताकि चिकित्सा के बाद केवल पूर्णत: प्राकृतिक स्वास्थ्य ही शेष रह जाए। उन्होंने इस शब्द को आर्गेनन के दूसरे अनुच्छेद में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया:

> ''आरोग्य का सर्वोच्च आदर्श स्वास्थ्य का द्रुत, सौम्य और स्थायी पुनर्स्थापन करना है अथवा रोग का अल्पतम समय में, पूरी तरह विश्वसनीय और पूरी तरह हानिरहित तरीके से सहज बोधगम्य सिद्धान्तों के आधार पर पूरी तरह समाप्त या उन्मूलन।''

जिस काल में हैनिमेन ने आरोग्य की यह परिभाषा प्रस्तुत की थी उस काल में चिकित्सा में रोगी का खून गिराना, सीटन लगाना, जोंक लगाना आदि कई प्रकार के उग्र तरीके उपयोग में लाए जाते थे जिनसे रोगी अक्सर रोग के बजाय चिकित्सा से ही मर जाते थे। आज भी एलोपैथिक चिकित्सा में अनेक उग्र तरीके उपयोग में लाए जाते हैं परन्तु आज उनका रूप बदल गया है। आज उपयोग में लाए जाने वाले तरीकों में कदम-कदम पर मानवीय भूल की अनेक सम्भावनाएँ रहती है। अत: उपरोक्त परिभाषा सब काल के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त है। इस परिभाषा को सत्य करने के लिए हैनिमैन नें अपने जीवन काल में ही वह तरीका आविष्कृत करके चिकित्सा जगत के सामने प्रस्तुत किया, जिससे सच्चे अर्थो में आरोग्य मिलता है। वास्तव में उक्त तरीक से

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

की गई चिकित्सा सब पहलुओं से अर्थात् सौम्य, द्रुत और हानिरहित ढंग से स्थायी रूप से आरोग्यकारक होती है और ऐसा कैसे हुआ यह भी सिद्धान्तों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। जब इस ढंग से आरोग्य प्राप्ति होती है तो चिकित्सक को समाज में बड़ा सम्मान और यश मिलता है साथ ही चिकित्सक को स्वयं हार्दिक प्रसन्नता और कुछ अच्छा कर सकने की मानसिक शान्ति मिलती है जो वास्तव में आनन्ददायक होती है। मानव जीवन के मूल्य के विषय में कहा है कि 'अपने लिए जिया तो क्या जिया।' पशु तो केवल अपने लिए जीते हैं।

3रा अनुच्छेद - ऐसी विज्ञान सम्मत और कलात्मक चिकित्सा करने के लिए जिस ज्ञान की जरूरत होती है उसके लिए महर्षि हैनिमैन ने ऑर्गेनन के तीसरे अनुच्छेद में निम्नलिखित निर्देश दिए हैं:

''यदि चिकित्सक भली प्रकार समझता है कि रोगों में क्या आरोग्य करना है अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिगत रोग के मामले में (रोग का ज्ञान, रोग के इंगित), यदि वह भली प्रकार समझता है कि औषधियों में क्या आरोग्य कारक है, कहने का मतलब प्रत्येक व्यक्तिगत औषधि में (औषधीय शक्ति का ज्ञान), और यदि वह स्पष्ट रूप से वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर औषधि में जो आरोग्यकारक है उसका और जो रोगी में निसन्देहरूप से विकृत पाया गया है उसके साथ भली प्रकार अनुकूलन करना जानता है ताकि निश्चित आरोग्य सम्पन्न हो - साथ ही हस्तगत रोगी मामले में औषधि की उपयुक्त क्रिया के तरीके के अनुसार ही उसका अनुकूलन करना जानता है (औषधि का चुनाव, अत्यधिक इंगित औषधि) और औषधि को तैयार करने का सही तरीका और उसकी आवश्यक मात्रा (औषधि की उपयुक्त मात्रा) और औषधि की मात्रा की पुरावृत्ति का समय जानता है: यदि अन्ततः वह प्रत्येक रोगी के मामले में आरोग्य की राह में रुकावटों को और उनको कैसे दूर किया जाए यह भी जानता है, ताकि आरोग्य स्थायी हो: तब ही वह न्यायसंगत और विवेकपूर्ण चिकित्सा कार्य का जानकार होता है, और वह आरोग्यकला का वास्तविक चिकित्सक होता है।''

आयुर्वेद में सदियों पहले लिखा गया एक श्लोक है:

''रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तर औषधम्।
ततः कर्मभिषक पश्चात् ज्ञानपूर्वक समाचरेत।।
यस्तु रोग विशेषज्ञ, सर्व भैषज कोविदः।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरशंसयम्।।''

Dr. S. K. Mangalani Email: drmangain@gmail.com

जिसका अर्थ है, ''वैद्य को चाहिए कि रोग को समझे, औषधि को समझे और तब ज्ञानपूर्वक चिकित्सा सम्पन्न करे। जो रोग को भली प्रकार समझता है और जिसे सब औषधियों का पूरा ज्ञान है और समय तथा परिस्थिति के अनुसार उचित मात्रा में औषधि का उपयोग करता है उसे सफलता अवश्य मिलती है'' उपर्युक्त अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने इसी तथ्य को बहुत स्पष्ट और विस्तृत रूप में स्वतन्त्र खोज के द्वारा परिभाषित किया है।

वास्तव में सत्य एक होता है किसी भी देश और काल में जो कोई भी उसे खोजने का प्रयत्न करता है वह उसी रूप में उसे प्राप्त होता है। उनके जीवन चरित में ऐसा कोई आभास नहीं मिलता है कि महर्षि हैनिमैन को भारतीय, ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा, अध्यात्म के बारे कोई भी जानकारी थी, उनकी यह खोज स्वतन्त्र खोज है।

जब चिकित्सक उपरोक्त अनुच्छेद में वर्णित सब पहलुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसे होम्योपैथिक विज्ञान का कलात्मक रूप में उपयोग करने मे सफलता प्राप्त हो जाती है। ऐसा करने के लिए चिकित्सक को रोगी के स्वास्थ्य में उत्पन्न सभी प्रकार के यथा शारीरिक, मानसिक (पैथोलॉजिकल एवं साइकोलॉजिकल), स्वभाव, इच्छाओं, अनिच्छाओं इत्यादि परिवर्तनों को सही तरीके से एकत्र करके और लिख कर संग्रह करके तत्समान लक्षणों वाली औषधि से अवलोकन सहित उचित मात्रा, सही समय पर पुनरावृत्ति द्वारा रोगियों के स्वास्थ्य की द्रुत और सौम्य पुनर्स्थापना करने में सक्षम हो जाता है।

4थ अनुच्छेद में चिकित्सक के कर्त्तव्य बतलाते हैं कि रोगियों को रोग मुक्त कराने के लिए उनको पथ्य, परहेज के निर्देश देने के साथ साथ समाज के स्वास्थ्य की रक्षा भी चिकित्सक का एक अन्य कर्त्तव्य है। अत: उसे यह ज्ञान भी होना चाहिए कि रोगियों को किन बातों से बचना चाहिए और समाज को रोगों से कैसे बचाया जा सकता है। वे कहते हैं कि:

> ''इसी प्रकार, यदि वह (चिकित्सक) उन वस्तुओं को जानता है जो स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं और रोग उत्पन्न करती हैं और स्वस्थ व्यक्तियों को उनसे कैसे बचाया जाय तो वह स्वास्थ्य का रक्षक होता है।''

चिकित्सक लोगों में यह जागरुकता पैदा कर सकता है कि किस प्रकार स्वच्छता, भोजन में खाद्य, अखाद्य के लाभ और हानि, प्रात:कालीन स्वच्छ हवा में व्यायाम और खान-पान के नियम और संयमित जीवन आदि स्वास्थ्य के नियमों का किस प्रकार पालन करें ताकि लोग स्वस्थ जीवन जी सकें।

Dr. S. K. Mondairi, Email: drmangan@gmail.com

तरह-तरह की महामारियों से कैसे बचा जा सकता है, उनसे बचाव के क्या उपाय हो सकते हैं। इनसे समाज को अवगत कराना, ऐसे रोगों की प्रतिषेधक औषधियों का चुनाव करके इनके द्वारा लोगों को सुरक्षित करना आदि चिकित्सक के दायित्व का क्षेत्र है।

आज समाज में तरह तरह के नशीले और मादक पदार्थों का प्रचलन बढ़ रहा है समाज को इनके परिणामों के प्रति आगाह करना और इनसे बचे रहने के लिए जागरुक करना भी चिकित्सक का कर्त्तव्य बनता है। ऐसा करने के लिए चिकित्सक को स्वयं अपने नैतिक चरित्र, अपनी आदतों और अपने स्वभाव को आदर्श बनाए रखना आवश्यक है, तब ही वह दूसरों को सुधरने के लिए प्रेरित कर सकता है। आदर्श चरित्र का स्वत: प्रभाव पड़ता है।

महर्षि हैनिमैन का जीवन चरित पढ़ने से पता चलता है कि वह स्वयं सच्चरित्र और दृढ़ इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति थे। जब सन् 1831 - 33 में यूरोप में कॉलरा का प्रकोप फैला था तो इन्होंने इससे बचाव और चिकित्सा के तरीके छपवा कर महामारी से पीड़ितों की सहायतार्थ भिजवाए थे जिससे अनेक लोगों ने लाभ उठाया था।

5वें अनुच्छेद से आगे के कुछ अनुच्छेदों में अनुच्छेद तीन में वर्णित चिकित्सक के ज्ञान सम्बन्धी बिन्दुओं का विवेचन किया गया है। पहला बिन्दु है रोग में क्या आरोग्य करना है? इसके लिए चिकित्सक को क्या क्या जानने की जरूरत है में उन्होने सुझाया है:

रोग खासतौर से दो प्रकार के होते है 1. एक्यूट, 2. क्रॉनिक। एक्यूट रोगों को आरोग्य करने के लिए उनके उत्पन्न होने में सहायक सम्भावित कारणों पर विचार करना जरूरी होता है इसी प्रकार क्रॉनिक रोग के सम्पूर्ण इतिहास में प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान देना होता है जो उस रोग के मूल कारण होते हैं जो सामान्यत: कोई क्रॉनिक धातुदोष होता है। ये सब घटक रोग को आरोग्य करने में चिकित्सक के सहायक होते हैं। रोग की इस जाँच में रोगी की शारीरिक गठन (और बौद्धिक चरित्र, उसका व्यवसाय, रहन-सहन के तरीके, आदतें, सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्ध, उसकी आयु, यौन क्रियायें, इत्यादि-इत्यादि) सभी बातों पर विचार करना होता है।

रोग के निर्मूलन के लिए इन सभी कारणों की जानकारी और उनके समाधान का पूरा ज्ञान चिकित्सक को होना चाहिए। क्योंकि जब तक रोग के मूल कारण का समाधान नहीं किया जाएगा रोगी स्वस्थ नहीं हो पाएगा। उदाहरण के लिए मैं यहाँ सन् 1970 में घटी एक घटना का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसका मुझे सीतापुर के आँखों के अस्पताल में पता चला था।

Dr. S. K. Mangalm Email: drmangalm@gmail.com

''एक जवान युवक की छाती में पिछले लगभग छः महीने से दर्द होता था उसने कई जगह चिकित्सा कराई थी, एक्स-रे परीक्षण में छाती में क्षत आए थे जिसके कारण इस युवक को हर चिकित्सक ने टी0 बी0 बतला कर उसकी चिकित्सा की थी परन्तु राहत मिलने के स्थान पर उसकी तबियत और खराब होती जा रही थी, दर्द लगातार रहता था, भूख बन्द हो गई थी ओर शरीर सूखता जा रहा था। उक्त आँख के अस्पताल में उसका कोई जानकार व्यक्ति काम करता था, उसने एक चिकित्सक से सहायता माँगी चिकित्सक ने उस युवक से रोग का सारा इतिहास पूछा। युवक ने बतलाया कि छः महीने पहले उसके ऊपर एक पेड़ की शाख गिर गई थी और छाती में चोट आई थी। शाख के कुछ टुकड़े छाती से निकाल भी दिए गए थे। आँख के डाक्टर नें युवक की छाती में जहाँ पर दर्द होता था उस स्थान की बारीकी से जाँच की उसको शंका हुई कि वहाँ पर कुछ है, कुरेदने पर उस स्थान पर लकड़ी के दो छोटे छोटे टुकड़े निकले। टुकड़े निकल जाने के बाद से दर्द एकदम बन्द हो गया और युवक के स्वास्थ्य में तेजी से सुधार हो गया।''

अतः प्रत्येक चिकित्सक को चाहिए कि रोगी के रोग निदान के लिए जब रोग शुरु हुआ उस समय की परिस्थितियों और कारणों की सम्भावनाओं का विवेचन करे। मेरे अपने अनुभव में अनेक रोगियों के रोग के मूल कारण में कोई न कोई दुर्घटना जिम्मेदार रही है।

6ठे अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन न स्पष्ट किया है कि पूर्वाग्रहों से रहित चिकित्सक रोग के प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में केवल रोगी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में रोग के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को ही जान सकता है (रोग का प्रतिभास, दुर्घटनाएँ, लक्षण) जिन्हें वह स्पर्श आदि द्वारा जाँच करके जान सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चिकित्सक रोगी के पूर्व स्वास्थ्य मे रोग के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को जिन्हें रोगी स्वयं अनुभव करता है और व्यक्त करता है, जो कुछ रोगी के साथ रहने वाले बतलाते हैं और जिन्हें चिकित्सक स्वयं अवलोकन करता है के द्वारा ही जान सकता है। ये अनुभव किए जा सकने वाले समस्त लक्षण पूरे रोग को प्रदर्शित करते हैं अर्थात् ये सारे लक्षण मिल कर रोग के वास्तविक चित्र को प्रदर्शित करते हैं। चाहे कोई कितना ही गहन चिंतक क्यों न हो अन्य किसी तरीके से रोग में क्या आरोग्य करना है उसे नहीं जान सकता।

वर्तमान समय में बहु प्रचलित एलोपैथिक चिकित्सा में रोग को ज्ञात करने के अनेक प्रकार के विस्तृत लेबोरेटरी परीक्षण, रेडियोलॉजिकल, बैक्टीरियोलॉजिकल तथा अन्य अनेक

Dr S K Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

प्रकार के परीक्षणों का विकास हो गया है जिनके द्वारा रक्त तथा शरीर के अन्दर रोग के द्वारा हो जाने वाले छोटे से छोटे परिवर्तनों का पता लगाया जा सकता है। परन्तु क्या वास्तव में इन परीक्षणों के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि रोग में आरोग्य क्या करना है? रोग की प्रथमावस्था में तो सभी परीक्षण सामान्य (नार्मल) पाए जाते है, परन्तु उस अवस्था में भी रोगी अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित होता है। अतः इन परीक्षणों से केवल रोग का परिणाम मात्र प्राप्त होता है। किसी परीक्षण से रोगी की कष्टकारक अनुभूतियों को, रोग के कारण रोगी के मानसिक परिवर्तनों को, रोग के घटने-बढ़ने की दशाआ कों, रोगी पर तापमान के प्रभावों को, रोगी की प्रतिक्रियाओं, रोगी की इच्छाओं तथा अनिच्छाओं आदि अनेक लक्षणों को नहीं जाना जा सकता है। यह सब जानकारी जो केवल रोगी द्वारा, उसके साथ रहने वालों और चिकित्सक के स्वयं के अवलोकनों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

यही जानकारी रोग का वास्तविक वह चित्र होती है जिसे आरोग्य करना होता है। अनुभवों से पाया गया है कि जब इस जानकारी के आधार पर स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है तो समस्त पैथोलॉजिकल एवं अन्य परिवर्तन यथासमय स्वतः सामान्य प्राकृतिक अवस्था में आ जाते हैं।

7वें अनुच्छेद में स्पष्ट किया गया है कि उपरोक्त प्रकार से प्राप्त रोग चित्र की जानकारी को पुनः स्वास्थ्य में बदलने के लिए चिकित्सक को क्या करना होता है। जिस प्रकार रोग में उसके कारण को नहीं जाना जा सकता है उसे तो केवल उसके लक्षणों के द्वारा ही जाना जा सकता है (रोग के मूल धातुदोष की सम्भावना पर अवश्य विचार किया जा सकता है तथा रोग को बढ़ाने वाली परिस्थियों पर भी ध्यान देना जरूरी होता है) चिकित्सक को तो रोग के लक्षणों द्वारा इंगित उपयुक्त औषधि को खोजना होता है - रोगी की रोगग्रस्त आन्तरिक दशा को प्रकट करने वाले ये समस्त लक्षण जो जीवनीशक्ति पर रोग द्वारा हुए प्रभाव को प्रकट करते हैं इन्हीं से पता चलता है कि रोग को समाप्त करने के लिए किस औषधि की आवश्यकता है, एकमात्र सिद्धान्त होता है। एक शब्द में रोग को आरोग्य करने के लिए लक्षणों की समग्रता ही एकमात्र सिद्धान्त होता है, ताकि वास्तव में चिकित्सक रोग के प्रत्येक मामले में अपनी कला से रोग को स्वास्थ्य में बदल सके।

रोग की दशा में जीवनीशक्ति कष्टकारी लक्षणों के माध्यम से ही वाञ्छित औषधि के लिए पुकार करती है। यह एक प्रकार से उसी तरह है जैसे बीच समुद्र में मुसीबत में फँसा जलपोत सहायता के लिए अक्षांश और देशान्तर के संदर्भ सहित अपनी स्थिति के

Dr S. K. Mondal | Email: drmangain@gmail.com

साथ सहायता के लिए रेडियो सन्देश प्रसारित करता है उसी प्रकार जीवनीशक्ति किसी विकृत शक्ति से प्रभावित होने पर विभिन्न लक्षणों के माध्यम से वाञ्छित सहायता (औषधि) के लिए पुकार करती है। कुशल चिकित्सक मात्र इन्हीं लक्षणों के आधार पर तदनुरूप वाञ्छित औषधि के द्वारा जीवनीशक्ति का पुनः स्वस्थ दशा प्राप्त करने के लिए उद्दीपन कर देता है जिससे सभी कष्टकर लक्षण समाप्त होकर स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है।

8वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन का कहना है कि जब सम्पूर्ण रोग लक्षण और रोग बोधगम्य सभी प्रतिभास समाप्त हो कर स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है तो किसी भी तरीके से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि स्वास्थ्य के साथ रोग अभी भी बाकी है या रोग द्वारा उत्पन्न परिवर्तन अभी समाप्त नहीं हुए हैं।

महर्षि हैनिमैन के समय में आज जैसे पैथोलॉजिकल और अन्य प्रकार के परीक्षण विकसित नहीं हुए थे। परन्तु आज भी उचित हौम्योपैथिक चिकित्सा से समस्त रोग लक्षणों के समाप्त हो जाने के बाद भी देखा गया है कि रोगी के स्वास्थ्य में समुचित सुधार होना शुरु हो जाने तथा जीवन की प्रक्रियाएँ सामान्य हो जाने के बाद भी रक्त में काफी समय तक कुछ घटकों में स्थिति सामान्य नहीं होती है। साथ ही यह भी पाया गया है कि उपयुक्त चिकित्सा से रोगी के स्वस्थ हो जाने के बाद कुछ समय तक प्रतीक्षा करने पर ऐसे घटक स्वतः सामान्य हुए पाए गये।

डा0 कैण्ट ने बैराइटा कार्ब0 का वर्णन करते हुए कहा है:

''जो चिकित्सक उपयुक्त चिकित्सा करता है वह जीवन की प्रक्रिया में व्यवस्था स्थापित कर देता है। वह रोगी को निरोग कर देता है, और रोगी की दशा में व्यवस्था आ जाने से शरीर में मरम्मत शुरु हो जाती है जिससे शरीर के सभी कोषों में सामान्य सफाई का काम होने लगता है और जिसकी जरूरत नहीं होती वह विसर्जित हो जाता है (अर्थात् रोगी पूरी तरह स्वस्थ हो जाता है) तथा उक्त चिकित्सक को आश्चर्यजनक व्यक्ति माना जाता है।''

9वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने पूर्ण स्वास्थ्य की दशा को इस प्रकार परिभाषित किया है:

''मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा में आध्यात्मिक जीवनीशक्ति (स्वेच्छाचारी शक्ति - ऑटोक्रेसी), गतिशक्ति - डायनामिस, जो भौतिक शरीर को जीवन्त करती है, इसे असीमित उत्साह से शासित करती है और शरीर के सभी अंगों को प्रशंसनीय,

Dr. S. K. Mangain Email drmangain@gmail.com

सामंजस्यपूर्ण ढंग से इसकी अनुभूतियों और प्रक्रियाओं, दोनों का सशक्त संचालन करती है, ताकि हमारा आन्तरिक, तर्कयुक्त मन इस जीवित, स्वस्थ यन्त्र (शरीर) को जीवन के उच्च आदर्शों के लिए उपयोग कर सके।''

पूर्ण स्वास्थ्य की दशा में न केवल मनुष्य बल्कि किसी भी जीव का शरीर जन्म के समय से लेकर वृद्धावस्था तक बिना किसी प्रकार का कष्ट अनुभव किए सामान्य भोजन से ही बढ़ता भी है और परिश्रमजन्य थकान केवल आराम करने के बाद स्वतः ठीक होती है और चोटें लगने पर घाव और पेशियों और अस्थियों की टूट, फूट पुनः जुड़ कर यथावत् हो जाती है। किसी अस्थि के टूट जाने पर बस इतना करना पड़ता है कि टूटी अस्थि के दोनों सिरों को ठीक से बिठा कर स्थिर कर दिया जाए। घावों के मामले में उनको गन्दगी और बाहरी प्रभावों से बचा कर रखने मात्र की जरूरत होती है। स्वस्थ दशा में यह जीवनीशक्ति कुछ इस प्रकार कार्य करती है कि व्यक्ति सर्वदा प्रफुल्ल और उत्साह से भरा रहता है। ऐसा केवल मनुष्य ही नहीं सभी जीवों के साथ होता है। मनुष्य परिश्रम करते समय मस्ती से गाता भी रहता है।

भौतिक शरीर तो एक यन्त्र मात्र है जिसे जीवनीशक्ति जीवित और क्रियाशील रखती है, इस जीवनीशक्ति को उर्दू में रूह, हिन्दी में प्राण या आत्मा तथा अंग्रेजी में सोल (soul) कहा जाता है।

10वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने आगे स्पष्ट किया है कि:

''जीवनीशक्ति के बिना इस भौतिक शरीर को न कोई अनुभूति होती है, न कोई प्रक्रिया और न ही स्व-रक्षण का कार्य हो सकता है। इस शरीर को सब प्रकार की अनुभूतियाँ और सब प्रकार की प्रक्रियाएँ करने की सम्पूर्ण क्षमता इसी जीवनीशक्ति से प्राप्त होती है।''

इस जीवनीशक्ति के बिना शरीर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता है, यह मृत हो जाता है मृत्यु के थोड़े समय बाद ही सड़ने गलने लगता है और प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत विघटित होकर अपने मूल तत्वों में समाहित हो जाता है। जब तक शरीर में प्राण (जीवनीशक्ति) स्थित रहते है नासूर, गैंग्रीन, कैन्सर आदि जैसे गम्भीर रोगों में भी रोग से प्रभावित अंग की मृत्यु तक हो जाने पर भी जीवनीशक्ति अन्य पूरे शरीर का परिरक्षण करती रहती है। रोगी को जीवन की सब बातों का ज्ञान रहता है, जीवन की सब प्रक्रियाएँ यथावत् चलती रहती हैं। परन्तु जीवनीशक्ति के शरीर छोड़ते ही भले ही वह व्यक्ति स्वस्थ रहा हो उसकी अचानक मृत्यु हो जाने के बाद उसके पूरे शरीर के विघटन की प्रक्रिया शुरु हो जाती है।

Dr S.K. Mangalik, Email: drmamgain@gmail.com

11वें अनुच्छेद में उन्हों ने स्पष्ट किया है कि:

''जब कोई व्यक्ति रोग ग्रस्त हो जाता है तब यही आध्यात्मिक, स्वचालित जीवनीशक्ति जो उस व्यक्ति के शरीर में सब ओर और सब कोषों में व्याप्त है, मूलत: किसी जीवन विरोधी रोगकारक शक्ति से प्रभावित हो कर असामान्यरूप से उस सीमा तक अव्यवस्थित हो जाती है कि शरीर इसके द्वारा अव्यवस्थित असुखकर अनुभूतियों और अनियमित प्रक्रियाओं को प्रगट करने लगता है, जिन्हें हम रोग कहते हैं। यह रोगकारकशक्ति भी अमूर्त होती है, परन्तु इसके द्वारा प्रभावित उन अंगों में रोग की अनुभूतियों और क्रियाओं को यह प्रत्यक्षकर्ता और चिकित्सक के समक्ष केवल रोगलक्षणों के माध्यम से ही अपने आप को प्रकट करती है अन्य किसी प्रकार से नहीं।''

तात्पर्य यह है कि किसी रोगकारकशक्ति के प्रभाव में आकर व्यक्ति की जीवनीशक्ति अव्यवस्थित हो जाती है जिसके कारण उसकी प्राकृतिक जीवन की सामान्य प्रक्रियाएँ तदनुरूप बदल जाती हैं और व्यक्ति रोगी हो जाता है। इस रोग के स्वरूप को जीवनीशक्ति कष्टकर अनुभूतियों और शरीर के असुखकर क्रिया कलाप तथा स्वभाव में परिवर्तनों के माध्यम से प्रकट करने लगती है जिन्हें रोगी स्वयं अनुभव करता है और रोगी के साथ रहने वाले तथा चिकित्सक भी जाँच करके जान पाते हैं। इस प्रकार संकलित समस्त लक्षणों से रोग के वास्तविक स्वरूप का पता चल जाता है। जब उपयुक्त चिकित्सा के द्वारा समस्त अनुभूतियाँ और असुखकर क्रिया कलाप तथा स्वभाव में आए परिवर्तन समाप्त होकर सामान्य हो जाते हैं तो जीवनीशक्ति पुन: अपनी प्राकृतिक स्वस्थ दशा में आ जाती है और स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है।

12वें अनुच्छेद में इसी बात को महर्षि हैनिमैन ने और स्पष्ट करते हुए लिखा है:

''विकृतरूप से प्रभावित जीवनीशक्ति ही एकमात्र वह है जो रोगों को प्रकट करती है ताकि रोग का प्रतिभास और सम्पूर्ण आंतरिक परिवर्तन हमारी इन्द्रियों द्वारा प्रकट हो सके; कहने का तात्पर्य यह है कि आंतरिक शक्ति की सम्पूर्ण रोग विकृति को अर्थात् सम्पूर्ण रोग को प्रकट वही करती है; इसी प्रकार चिकित्सा के अन्तर्गत रोग के सम्पूर्ण प्रतिभास और रोगजनित सभी परिवर्तन जो जीवन की स्वस्थ प्रक्रियाओ से भिन्न होते हैं, की समाप्ति निश्चितरूप से और आवश्यकरूप से जीवनीशक्ति की सम्पूर्ण पुनर्स्थापना को व्यक्त करती है, अत: पूरे शरीर के स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है।''

Dr. S.K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

वास्तव में रोगकारकशक्ति से प्रभावित हो कर जीवनीशक्ति ही स्वयं शरीर के माध्यम से रोग की अनुभूतियों और रोगजनित परिवर्तनों के रूप में रोग को प्रकट करती है और उचित चिकित्सा के द्वारा जब ये विकृत अनुभूतियाँ और परिवर्तन पुनः सामान्य हो जाते हैं तो स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है अर्थात् रोगी पुनः स्वस्थ हो जाता है और जीवनीशक्ति पुनः अपनी प्राकृतिक सामान्य स्वस्थ दशा की तरह शरीर का संचालन करने लगती है। व्यक्ति पुनः सामान्य स्वस्थ जीवन बिताने लगता है।

13वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''अतः रोग (जो शल्यचिकित्सा के क्षेत्र में नहीं आता) जैसा कि एलोपैथिक चिकित्सकों द्वारा पूर्ण जीवित व्यक्ति के शरीर और उसकी जीवनीशक्ति से अलग अन्तस् में छुपा हुआ समझा जाता है, यह विचार भले ही कितना व्यापक चरित्र का क्यों न हो, एक बेहूदा विचार है, जो केवल भौतिकता पूर्ण मस्तिष्क ही अनुमान कर सकता है और यह हजारों वर्षों से प्रचलित चिकित्सा पद्धति में उन अनिष्टकारी मानसिक संवेगों द्वारा एक सच्ची अनिष्टकारी (स्वस्थ न करने वाली) कला बना दी गई है।''

यद्यपि महर्षि हैनिमैन के समय में चिकित्सा के क्षेत्र में माइक्रोस्कोप का उपयोग भी शुरु नहीं हुआ था परन्तु आज के युग में रोग के निदान के लिए अनेक क्रान्तिकारी यन्त्रों का आविष्कार हो चुका है जिनसे रक्त के सभी घटकों का परीक्षण डिजिटल यन्त्रों के द्वारा रोग के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को बारीकी से जाना जा सकता है, अल्ट्रासाउण्ड, एम0 आर0 आई0, इत्यादि कम्प्यूटरसंचालित मशीनों द्वारा शरीर के अन्दर रोग के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को भली प्रकार जाना जा सकता है, इतना ही नहीं न्यूक्लियर तकनीक द्वारा भी शरीर के आन्तरिक परिवर्तनों को जाना जा सकता है। परन्तु क्या इन सब परीक्षणों द्वारा यह जाना जा सकता है कि रोग में क्या आरोग्य करना है? क्योंकि रोगी एक जीवित व्यक्ति होता है, प्रत्येक रोगी को रोग द्वारा उत्पन्न अनेक अनुभूतियाँ अनुभव होती हैं क्या सब रोगियों की अनुभूतियाँ एक जैसी होती हैं? क्या प्रत्येक रोगी पर ठण्डे, गरम का प्रभाव एक समान होता है? क्या प्रत्येक रोगी के रोग के बढ़ने या घटने की परिस्थितियाँ, समय और मौसम के परिवर्तन का प्रभाव एक समान होता है? क्या प्रत्येक रोगी की इच्छाएँ या अनिच्छाएँ एक समान होती हैं? क्या रोग के द्वारा स्वभाव में उत्पन्न परिवर्तन हर रोगी में एक समान होते हैं? वास्तव में ऐसा नहीं होता है। अतः ऐसी दशा में उपरोक्त परीक्षणों के द्वारा किये गये रोग के नामकरण, जो परीक्षणों के आधार पर एक समान समूह के परिणाम के लिए एक ही होता है, क्या

Dr S.K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

प्रत्येक रोगी का एक ही चिकित्सा से निरोग होना सम्भव हो सकता है? कभी भी नहीं। इसलिए महर्षि हैनिमैन का लगभग दो सदी पूर्व का कथन आज भी उतना ही सत्य है।

14वें अनुच्छेद में, 13वें अनुच्छेद को और स्पष्ट करते हुए महर्षि हैनिमैन लिखते हैं:

''मनुष्य के अन्तरतम में जो कोई भी ऐसी विकृति नहीं है जो आरोग्यकारक है और न ही कोई ऐसी विकृति है जो स्वयं को सही ढंग से अवलोकन करने वाले चिकित्सक के समक्ष विकृत लक्षणों और संकेतों द्वारा अपने आप को प्रकट न करें - यह मनुष्य जीवन के असीमित अच्छाई से रक्षक प्रभु द्वारा पूर्ण प्रबन्ध हैं।''

तात्पर्य यह कि सबके रक्षक प्रभु ने ऐसे नियम का प्रबन्ध रचा हुआ है कि जीवनीशक्ति शरीर के अन्दर स्थित किसी भी रोग जनित विकृति को विभिन्न अनुभूतियों, लक्षणों और संकेतों के द्वारा ही प्रकट करती है जिन्हें रोगी तो अनुभव करता ही है, कुशल चिकित्सक भी सही अवलोकनों द्वारा जान लेता है और उचित चिकित्सा द्वारा उनका निवारण करके रोगी को आरोग्य प्रदान कर देता है। शरीर के अन्तरतम में ऐसा कुछ भी छिपा हुआ नहीं रह सकता जिसे आरोग्य नहीं किया जा सके और जीवनीशक्ति प्रच्छन्न कर सके।

15वें अनुच्छेद में इसी बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि:

''शक्तिस्वरूप (जीवनीशक्ति) जो हमारे शरीर को अदृश्य अन्तरतम में जीवन प्रदान करती है के द्वारा व्याधिजनित विकार और रोग द्वारा प्रत्यक्ष समझने योग्य प्रकट लक्षण जो वर्तमान रोग को दर्शाते हैं एक ही चीज हैं। वास्तव में शरीर तो जीवन का भौतिक यन्त्र मात्र है परन्तु नैसर्गिक जीवनीशक्ति के बिना यह सब सम्भव नहीं होता है।''

शरीर में जीवन का संचार करने वाली शक्ति अर्थात् जीवनीशक्ति ही एकमात्र वह शक्ति है जो शरीर की स्वस्थ और रोग ग्रस्त दोनों अवस्थाओं को शरीर के माध्यम से लक्षणों और संकेतों द्वारा प्रदर्शित करने के लिए जिम्मेदार होती है, शरीर तो एक भौतिक यन्त्र मात्र है जिसे जीवनीशक्ति ही जीवन प्रदान करती है। लेकिन मात्र जीवनीशक्ति की उपस्थिति में ही शरीर जीवन की समस्त अनुभूतियों को प्रदर्शित करने में समर्थ होता है।

16वें अनुच्छेद में अब महर्षि हैनिमैन स्पष्ट करते हैं कि:

''हमारी जीवनीशक्ति, क्योंकि वह प्राणस्वरूप शक्ति है, उसके सामन्जस्यपूर्ण जीवन के क्रिया कलापों को शक्तिस्वरूप तरीके के अतिरिक्त स्वस्थ शरीर पर बाहरी

Dr S.K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

शत्रुभावात्मक शक्तियों के हानिकारक प्रभावों से न तो प्रभावित किया जा सकता है और न ही उसको आक्रान्त किया जा सकता है, इसी प्रकार उसके सभी रोगजनित विकारों को चिकित्सक द्वारा हमारे सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त संवेदनशील स्नायुतन्त्र के माध्यम से जीवनीशक्ति पर यथार्थ शक्तिस्वरूप दूसरी कार्यकारी औषधियों की शक्ति की क्रिया द्वारा ही प्रभावित किया जा सकता है ताकि उनकी शक्ति स्वरूप क्रिया द्वारा जीवनीशक्ति पर स्वास्थ्य और शक्ति स्वरूप सामन्जस्य पुनर्स्थापित हो सकें, जो वे पुनर्स्थापित करती भी हैं, रोगी के स्वास्थ्य में परिवर्तन के बाद जो हमारे संवेदनों द्वारा (सम्पूर्ण लक्षणावली) जो कि सावधानीपूर्वक अवलोकनकर्ता और खोजकर्ता चिकित्सक के समक्ष प्रकट हुई थीं आवश्यकतानुसार पूरी तरह समाप्त हो कर आरोग्य करने में समर्थ होती हैं अन्य किसी प्रकार से नहीं।''

इस अनुच्छेद के अन्त में उन्होंने छठवें संस्करण में निम्नलिखित एक पाद टिप्पणी जोड़ी थी:

''कल्पनामात्र से जीवनीशक्ति में प्रचुर अशान्ति के द्वारा बहुत गम्भीर रोग उत्पन्न किया जा सकता है और इसी प्रकार आरोग्य भी किया जा सकता है।''

इसका अर्थ यह हुआ कि स्वस्थ दशा में शरीर पर किसी बाहरी प्रभाव सर्दी, गरमी, हवा, पानी आदि के प्रभाव से जीवनीशक्ति की प्रक्रियाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता और व्यक्ति रोग ग्रस्त नहीं होता। लेकिन किसी रोगकारक शक्ति के प्रभाव से व्यक्ति रोगी हो जाता है जो जीवनीशक्ति के द्वारा शरीर के माध्यम से असुखकर लक्षणों और संकेतों के द्वारा रोग के स्वरूप में प्रकट किया जाता है। कुशल चिकित्सक रोग के इस स्वरूप को अवलोकन और अन्वेषण के द्वारा सावधानीपूर्वक समझ कर रोग के स्वरूप के अनुसार प्रतिक्रिया कर सकने वाली औषधियों के प्रयोग से रोगी की जीवनीशक्ति को उद्दीपित कर के रोग के सम्पूर्ण स्वरूप को स्वयं जीवनीशक्ति की प्रतिक्रिया द्वारा दूर करके अर्थात् रोग के समस्त असुखकर लक्षण और संकेतों का निवारण करके, जिसे रोगी की जीवनीशक्ति औषधि की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वयं सम्पन्न करती है; आरोग्य की पुनर्स्थापना करता है।

17वें अनुच्छेद में वे पुनः स्पष्ट करते हैं कि:

''अब जब रोग के समस्त बोधगम्य लक्षण और संकेत जो कि रोगजनित आन्तरिक जीवनीशक्ति में परिवर्तन थे, जो रोग के कारण थे – उनके निवारण के बाद फलतः सम्पूर्ण रोग ही समाप्त हो जाता है, अतः चिकित्सक को आन्तरिक परिवर्तनों को, कहने का तात्पर्य यह है कि जीवनीक्ति के रोग जनित विकार, समाप्त करने के लिए

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

केवल सम्पूर्ण लक्षणों को, फलतः पूरे रोग को यानि स्वयं रोग को समाप्त करना होता है, जब रोग समाप्त हो जाता है तो स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है और यह सब ज्ञानी प्रतीत होने वाली बकवाद न हो कर, रोगी की उपयुक्त सहायता करना होता है और जो अपने सच्चे उद्देश्य को जानता है, यही चिकित्सक का सर्वोच्च और एकमात्र लक्ष्य होता है।''

अब तक के विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि रोग वास्तव में केवल वह है जिसे रोगकारक शक्ति से विकृत हो गई जीवनीशक्ति शरीर के संवेदन तन्त्र द्वारा रोगजनित कष्टकर लक्षणों और संकेतों के रूप में प्रकट करती है और इन कष्टकर लक्षणों और संकेतों को अपनी आरोग्य कला द्वारा निराकरण करके रोगी के स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना करना ही चिकित्सक के जीवन का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य होता है। आज के चिकित्सा विज्ञान में रोग निदान के अत्यधिक उन्नत उपायों से निश्चित रूप से शरीर तन्त्र में रोग के द्वारा उत्पन्न छोटे से छोटे परिवर्तन का पता लगाया जा सकता है परन्तु जीवनीशक्ति में रोग द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों अर्थात् लक्षणों और संकेतों की इन आधुनिक उपायों से लेशमात्र भी जानकारी नहीं मिल सकती क्योंकि जीवित शरीर मात्र एक यन्त्र नहीं है बल्कि वह भावनाओं, अनुभूतियों और अनेकों संवेगों का एक संगम है। 3रे अनुच्छेद में वर्णित ''यदि चिकित्सक भली प्रकार समझता है कि रोगों में क्या आरोग्य करना है अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिगत रोग के मामले में (रोग का ज्ञान, रोग के इंगित)'', का तात्पर्य अब तक के विवेचन से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। होम्योपैथी के प्रत्येक चिकित्सक को इस विवेचन को पूरी तरह हृदयंगम करना बहुत ही जरूरी है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, किसी भी आधुनिक उपाय या परीक्षण द्वारा अन्य अनुभूतियों की बात तो दूर, दर्द तक का भी पता नहीं चलता। अतः चिकित्सक आधुनिक उपायों से कैसे जान सकता है कि किस रोगी के रोग में क्या आरोग्य करना है? यह ज्ञान तो केवल कुशल चिकित्सक के द्वारा अवलोकन और अन्वेषण द्वारा ही जाना जा सकता है।

18वें अनुच्छेद में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि:

''इस असंदिग्ध सत्य से कि रोगजनित सम्पूर्ण लक्षणों के अतिरिक्त रोग में किसी भी तरीके से कुछ भी नहीं खोजा जा सकता है, जिसके द्वारा वे अपनी आवश्यकता को प्रदर्शित कर सकें, अतः यह निर्विवाद है कि रोग के प्रत्येक मामले में सम्पूर्ण लक्षणों का योग और दशाओं तथा रोग की वृद्धि या शमन की दशाओं पर विचार सहित, ही एकमात्र इंगित होता है, जो किसी औषधि के चुनाव के लिए हमारा एकमात्र मार्गदर्शक होता है।''

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

हैनिमैन कहते हैं कि रोग में जो कुछ आरोग्य करना होता है उसे चिकित्सक केवल रोग के लक्षणों (मानसिक अनुभूतियों, रोग जनित शारीरिक लक्षणों, रोग की वृद्धि और शमन की परिस्थियों तथा रोग से संलग्न अन्य विकारों) तथा रोग के मूल में कारण विशेष के द्वारा ही जान सकते हैं अन्य किसी तरीके से उसे नहीं जा सकता। यही लक्षण समूह वास्तविक रोग का वह स्वरूप होता है जिसे आरोग्य करना होता है। मूल कारण विशेष के सम्बन्ध में उदाहरण के लिए आम बोलचाल में स्लिप डिस्क एवं एवस्कुलर (avascular) नैक्रोसिस जैसे रोगों में रेडियोलॉजिकल परीक्षणों से रोग के शारीरिक परिवर्तन तो बिलकुल सही रूप में पता चल जाते हैं परन्तु उनके मूल कारण को जाने बिना जो अक्सर किसी दुर्घटना में लगने वाली चोट या मोच या अचानक लगा भारी झटका होता है और उसकी उचित चिकित्सा किए बिना रोगी शल्यचिकित्सा या अन्य चिकित्सा से आरोग्य नहीं हो सकता है। ऐसा लेखक को अनेक मामलों में प्रत्यक्ष अनुभव है, ऐसे जो रोगी शल्यचिकित्सा के बाद भी निरन्तर कष्ट में थे मूल कारण की होम्यो चिकित्सा से पुनः सामान्य रूप से स्वस्थ हो गए। रोगी की जीवनीशक्ति को स्वस्थ करने के लिए वास्तविक रोग को असंधिग्ध रूप से जानने का एकमात्र यही तरीका है और आरोग्यकारक औषधि का चुनाव करने के लिए भी मात्र यही सर्वोत्तम तरीका है।

19वें एवं 20वें अनुच्छेदों में हैनिमैन ने औषधि की आरोग्यकारक शक्ति का स्पष्टीकरण किया है:

''अब, जैसे रोग स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य में परिवर्तनों से अधिक कुछ नहीं है जो अपने को रोग के लक्षणों के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं, उसी प्रकार आरोग्य भी रोगी व्यक्ति के स्वास्थ्य को स्वस्थ दशा में परिवर्तित करना मात्र है, यह बहुत स्पष्ट है कि औषधियों में यदि मनुष्य के स्वास्थ्य में परिवर्तन उत्पन्न करने की शक्ति नहीं होती, जो अनुभूतियों और प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है, तो वे कभी आरोग्य नहीं कर पातीं; उनकी आरोग्य करने की शक्ति वास्तव में उनमें पूरी तरह निहित मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा में परिवर्तन उत्पन्न कर सकने की शक्ति में होती है।'' (अनुच्छेद 19)

''मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा को बदलने के लिए (अतः रोगों को आरोग्य करने के लिए) इस प्राण स्वरूप शक्ति को, जो औषधियों की आन्तरिक प्रकृति में छुपी हुई रहती है, उसको हम कभी भी मात्र किसी तर्क के प्रयास द्वारा नहीं खोज सकते,

Dr. S.K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

उसके प्रतिभास को तो हम स्पष्ट रूप से केवल तब ही जान सकते हैं जब वह मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा पर कार्य कर रही होती है।'' (अनुच्छेद 20)

जिस प्रकार रोग के वास्तविक स्वरूप को, जिसे आरोग्य करना है केवल उसके लक्षणों, अनुभूतियों, रोग जनित परिवर्तनों, रोग की घटने या बढ़ने की परिस्थितियों आदि घटकों के समूह के माध्यम से ही जान सकते हैं, जो रोगी की जीवनीशक्ति पर रोग के प्रभाव के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए होते हैं और यही वास्तविक रोग होता है जिसे अन्य किसी भी तरीके से नहीं जान सकते। उसी प्रकार औषधीय पदार्थ में प्रच्छन्न औषधीय शक्ति को, जो मनुष्य की जीवनीशक्ति को अपने प्रभाव से किस प्रकार परिवर्तित कर सकती है इस तथ्य को केवल तब ही जान सकते हैं जब वह किसी मनुष्य की जीवनीशक्ति पर कार्य कर रही होती है और अपनी क्षमता को जीवनीशक्ति के माध्यम से लक्षणों, अनुभूतियों और उनके घटने बढ़ने की परिस्थितियों आदि घटकों के समूह के रूप में प्रकट करती है, उक्त औषधीय पदार्थ की यही प्राणस्वरूप शक्ति ही रोग को आरोग्य कर सकने की क्षमता रखती है। औषधीय पदार्थ की मनुष्य की जीवनीशक्ति को परिवर्तित करने की इस प्रच्छन्नशक्ति को इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी तरीके नहीं जाना जा सकता।

21वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''जिस प्रकार यह निर्विवाद है कि औषधियों में आरोग्यकारक तत्त्व स्वत: उस प्रकार व्यक्त नहीं होता जिस प्रकार सही तरीके से अवलोकनकर्ता द्वारा औषधियों के शुद्ध परीक्षणों द्वारा मिलते हैं, जो मनुष्य शरीर पर उनके स्वास्थ्य में, खासतौर से स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य में, स्पष्ट परिवर्तन उत्पन्न करने और उसमें सुनिश्चित विभिन्न रोग लक्षण जगा सकने की शक्ति के द्वारा मिलते हैं, इसके अतिरिक्त उनमें कुछ भी ऐसा नहीं अनुभव किया जा सकता जो उन्हें औषधि या आरोग्यकर्ता प्रकट करे; अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि जब औषधियाँ आरोग्यकर्ता का काम करती हैं तब वे केवल अपने आरोग्यकारक गुण को मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा को विशिष्ट लक्षण उत्पन्न करने की शक्ति के द्वारा परिवर्तित करती हैं; और इसलिए, यह जानने के लिए कि प्रत्येक अकेली औषधि में क्या रोगकारक शक्ति है और साथ ही क्या आरोग्यकारक क्षमता है, हमें केवल औषधियों के रोगकारक प्रतिभास पर, जिसे औषधियाँ स्वस्थ शरीर पर उत्पन्न करती हैं, उनकी पूरी तरह सम्भावित आन्तरिक आरोग्यकारक शक्ति मान कर ही भरोसा करना होगा।''

Dr S.K. Mondal, Email: drmangal@gmail.com

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अकेले औषधीय पदार्थ में उसकी प्रच्छन्न औषधीयशक्ति को, कि वह स्वस्थ शरीर की जीवनीशक्ति पर क्या विकृति या रोग लक्षण पैदा कर सकती है, ज्ञात करने का केवल मात्र एक तरीका है, उस पदार्थ का स्वस्थ व्यक्ति पर उचित तरीके से समुचित अवलोकन द्वारा परीक्षण। इस प्रकार जो लक्षण प्राप्त होते हैं उन सबका योग ही उस पदार्थ की आरोग्यकारक शक्ति को प्रकट करता है। अन्य किसी भी तरीके से उस पदार्थ की उक्त प्रच्छन्न औषधीयशक्ति को नहीं जाना जा सकता है। अनेक पदार्थ ऐसे हैं जो अपनी प्राकृतिक अवस्था में औषधि के रूप में उपयोग नहीं हो सकते यथा लोहा, चाँदी, सोना आदि धातुएँ, रेत (सिलिका), कैल्शियम कार्बोनेट, लकड़ी का कोयला, आदि रासायनिक पदार्थ। परन्तु ऐसे सभी पदार्थ उचित तरीके से परीक्षणों के बाद जीवन रक्षक औषधीय गुणों से सम्पन्न पाये गए हैं। पिछली लगभग दो सदी में होम्योपैथिक चिकित्सकों द्वारा इनके उपयोग से असंख्य रोगियों को यहाँ तक कि निराश रोगियों को भी स्वास्थ्य लाभ मिला है। पचास वर्षों के मेरे अपने अनुभव में मुझे भी अनेक बार तो इनसे चमत्कारी परिणाम मिले हैं। यह तरीका औषधीय पदार्थों का स्वस्थ परीक्षण कहलाता है और होम्योपैथिक मेटीरिया मेडिका का निर्माण इसी तरीके के आधार पर किया गया है।

22वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि:

''रोग में रोग के लक्षणों और संकेतों के समूह के अतिरिक्त अवलोकन करने लायक ऐसा कुछ भी नहीं होता है जिसके दूर करने से स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो सके और इसी तरह औषधियाँ स्वस्थ व्यक्तियों में विकृत लक्षण उत्पन्न करने की अपनी प्रवणता के अतिरिक्त रोगियों में कुछ भी आरोग्यकारक और दूर करने योग्य प्रदर्शित नहीं करतीं; अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि एक ओर, दवाई केवल इसलिए ही आरोग्यकारक औषधि बन पाती है और रोगों को दूर करने में समर्थ बन पाती है क्योंकि औषधीय पदार्थ कतिपय विशेष प्रभाव और लक्षण उत्पन्न करते हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि एक विशेष कृत्रिम रोग की दशा उत्पन्न करके पहले से उपस्थित लक्षणों यानि प्राकृतिक रोग को जिसे हम आरोग्य करना चाहते हैं को दूर या निराकरण करती है। दूसरी ओर तात्पर्य यह है कि रोग के लक्षणों के समूह के लिए जिसे आरोग्य करना है, एक ऐसी औषधि खोजनी है जो अनुभव के आधार पर द्रुत गति से, भरोसे के साथ और स्थायी रूप से रोग लक्षणों को समान या विषम औषधीय लक्षण उत्पन्न कर सकने की प्रवणता के आधार पर दूर करके स्वास्थ्य में परिवर्तित कर सके।''

Dr. S. K. Mangalam Email: drmangalam@gmail.com

हैनिमैन ने आर्गेनन मूल रूप से जर्मन भाषा में लिखा था जिसका पुरानी अंग्रेजी में लगभग सौ वर्ष पहले अनुवाद किया गया था अत: इसकी अंग्रेजी थोड़ी क्लिष्ट है इसीलिए इसके अनुच्छेदों का अनुवाद भी थोड़ा क्लिष्ट ही बन पा रहा है। इस 22वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि जिस प्रकार हम रोग में जो कुछ आरोग्य करना है उसे किसी भौतिक तरीके से नहीं जान सकते बल्कि उसे तो केवल रोग के संकेतों और अनुभूतियों आदि लक्षणों द्वारा ही जान सकते हैं, उसी प्रकार औषधीय पदार्थ में छुपी हुई उसकी रोगकारक और आरोग्यकारक शक्ति को भी किसी भौतिक तरीके से नहीं जान सकते। उक्त शक्ति को तो केवल उस पदार्थ को समुचित तरीके से स्वस्थ व्यक्तियों पर परीक्षण करके ही जाना जा सकता है। यदि किसी पदार्थ में स्वस्थ व्यक्ति को रोगी करने की क्षमता नहीं होती है तो वह रोगी व्यक्ति को आरोग्य भी नहीं कर सकता। औषधीय पदार्थ की इस क्षमता को भी केवल उन संकेतों और अनुभूतियों आदि लक्षणों के द्वारा ही जाना जा सकता है जिन्हें उक्त पदार्थ स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य में रोग जैसे परिवर्तन उत्पन्न करके प्रकट करता है। दूसरी ओर वास्तव में रोगजनित विकृत लक्षणों को आरोग्य करने के लिए ऐसी औषधि की खोज करने की आवश्यकता होती है जो इन लक्षणो को दूर करके स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना कर सके, अनुभव यह बतलाएगा कि यह आरोग्य समान लक्षणों के आधार पर हो सकेगा या कि विषम लक्षणों के आधार पर।

23वें अनुच्छेद में 22वें अनुच्छेद की बात को आगे बढ़ाते हुए महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

> ''लेकिन सभी शुद्ध अनुभव और सभी अन्वेषण हमें विश्वास दिलाते हैं कि रोग के लक्षण विषम लक्षणों वाली औषधि से स्थायी समाप्त और दूर होना तो दूर की बात है (जैसा कि विपरीत लक्षणों वाली औषधियों से, विषम चिकित्सा से या शामक तरीके में होता है) बल्कि इसके विपरीत प्रकटत: क्षणिक राहत के बाद, वे पुन: और अधिक बढ़ी हुई उग्रता के साथ प्रकट हो जाते हैं और बढ़े हुए प्रतीत होते हैं। (अनुच्छेद 58-63 और 69)।''

सभी परीक्षणों, अन्वेषणों और अनुभवों से यही सिद्ध हुआ है कि विषम लक्षणों वाली आषधियों से भले ही क्षणिक और अस्थायी लाभ मिलता हो, परन्तु जल्दी ही ये लक्षण पुन: अधिक उग्रता से लौट आते हैं और रोग में वृद्धि हो जाती है। जिस काल में महर्षि हैनिमैन ने यह बात लिखी थी उस काल में केवल प्राकृतिक स्रोत से उपलब्ध पदार्थ ही औषधियों के रूप में उपयोग होते थे लेकिन आज के समय में तो पेन किलर,

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

एण्टि स्पैज्मोडिक्स, एटिबॉयोटिक्स, स्टेरॉयड्स आदि अनेक औषधियाँ सिन्थेटिक पदार्थों से निर्मित की जाती हैं, जिनसे विभिन्न रोगों के अधिकांश मामलों में रोगियों को बड़ी जल्दी राहत तो मिलती है परन्तु जब भी रोगी उनको छोड़ना चाहता है तो रोग अधिक उग्रता के साथ लौट आता है, अनेक रोगों में चिकित्सक रोगी को पहले दिन ही कह देते हैं कि यह दवा तुमको जीवन भर खानी पड़ेगी। जिसके कारण रोगियों को मूल रोग के साथ साथ औषधि के अन्य कुपरिणाम भी भुगतने पड़ते हैं और रोगी कभी निरोग नहीं होता। एक प्राकृतिक नियम है कि भोजन से मनुष्य को पोषण मिलता है उसका बल बढ़ता है परन्तु यदि कोई बिना आवश्यकता या भूख के खा लेता है तो उसे अजीर्ण हो जाता है वही भोजन जो पोषण करता है, विष का काम कर देता है, जबकि प्रत्येक औषधि तो होती ही विष है, क्योंकि औषधि स्वास्थ्य में परिवर्तन करती है पोषण नहीं करती। अतः किसी भी औषधि के अनुचित सेवन का परिणाम दुखदायी तो होगा ही। प्रत्यक्ष रूप में ऐसा नित्य देखने को मिलता है।

24वें अनुच्छेद में, अतः, वे कहते हैं कि:

''होम्योपैथिक तरीके के अतिरिक्त रोगों में कार्यकारी अन्य कोई तरीका नहीं बचता है जिसके माध्यम से रोग के लक्षणों के पूर्ण समूह को, जिसे हम दूर करना चाहते हैं, केवल ऐसी औषधि से दूर कर सकते हैं जिसमें सब औषधियों के बीच तत्समान लक्षण समूह और रोग के समान सब दशाएँ उत्पन्न करने की क्षमता हो।''

तात्पर्य यह है कि जो औषधि स्वस्थ व्यक्ति में उसके रोग के सम्पूर्ण लक्षण समूह के समान जिसे आरोग्य करना है, लक्षण समूह उत्पन्न कर सकती है केवल वही औषधि लक्षण समूह की समानता के आधार पर उपयुक्त मात्रा में उक्त रोग को निरोग कर सकेगी; किसी भी रोग को निरोग करने का यही एकमात्र होम्योपैथिक तरीका है।

25वें अनुच्छेद में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि:

''सावधानीपूर्वक परीक्षणों और शुद्ध अनुभव से आरोग्य कला की यह अमोघ विधा हमें यही सिखाती है कि जिस औषधि ने स्वस्थ व्यक्ति के शरीर पर पर्यवेक्षण योग्य अधिकतम रोगी लक्षण उस रोगी के लक्षणों के समान प्रदर्शित किए हैं, जिसकी चिकित्सा करनी है, उसी औषधि को उचित मात्रा और पोटेन्सी में उपयोग करने से वह रोग के सम्पूर्ण लक्षणों सहित द्रुत गति से स्थायी रूप से पूरी रोग विकृति को समाप्त कर देती है, अर्थात् विद्यमान रोग को समाप्त करके स्वास्थ्य की दशा में

Dr S.K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

बदल देती है। यह सीख भी मिलती है कि सभी औषधियाँ उन रोगों को जिनके लक्षण उनके अपने लक्षणों से समानता रखते हों बिना अपवाद आरोग्य करती हैं।''

26वें अनुच्छेद में हैनिमैन कहते हैं:

''यह निम्नलिखित प्रकृति के होम्योपैथिक नियम पर निर्भर है, 'जीवित शरीर में कोई एक गतिशील प्रभाव उससे अधिक शक्तिशाली प्रभाव से स्थायी रूप से समाप्त (बुझ) हो जाता है (जबकि प्रकृति में भिन्न) लेकिन पहले वाले से आत्म प्रकाश (अभिव्यक्ति) में बहुत समान हो', वास्तव में इस सिद्धान्त पर कभी कभी अस्पष्ट रूप से कल्पना तो की गई परन्तु इसको अब से पहले कभी भी मान्यता नहीं दी गई थी जिसके कारण कभी कोई वास्तविक आरोग्य सम्पन्न हुआ है।''

यहाँ पर उदाहरण के रूप में मैं आप बीती कहानी प्रस्तुत करना चाहूँगा जो 1962 से 1998 के बीच की है, होम्योपैथी का अध्ययन मैंने 1962 के कई साल बाद शुरु किया था:

'1962 अगस्त से मुझे दाहिनी कोख में बहुत तेज दर्द होना शुरु हुआ था। तब से 1978 तक विशेष कर सर्दी की मौसम में जिला अस्पतालों से लेकर राष्ट्रीय स्तर के अस्पतालों तक में लम्बे लम्बे समय तक रहना पड़ा था। जहाँ एन्किलोस्टोमा, एपेन्डिसाइटिस, एब्डॉमिनल टी0 बी0, मानसिक रोग आदि अनेक नाम के रोगों का निदान किया गया। लेकिन पेट का दर्द यथावत् बना रहा। अन्ततः 1978 में एक मेडिकल कालेज में ड्योडेनम का एन्किलोसिस निदान किया गया और ड्योडेनम बाइपास कर दिया गया जिसके बाद दर्द तो ठीक हो गया परन्तु एक नई समस्या शुरु हो गई। लौकी की जरा सी सब्जी खाने से भी आँत में भारी रक्तस्राव होना शुरु हो गया। गलती से लेशमात्र लौकी की सब्जी से भी रात भर में ही मेरा हीमोग्लाबिन 5 मिग्राम प्रतिशत हो जाता था जिसके कारण का कुछ निदान नहीं हो पाया। जब भी रक्तस्राव होता तो पानी से कुल्ला करते समय उबकाई आ जाती थी, कई बार उलटी भी हो जाती थी जिसमें केवल म्यूकस आता था। इस लक्षण के आधार पर रेपर्टरी और मेटीरिया मेडिका की सहायता से खोज करने पर समानता के आधार पर कॉक्कस कैक्टाइ औषधि मेरे सामने आई। इसकी पहली मात्रा से ही आराम मिलना शुरु हो गया। कुछ ही मात्रा के बाद सन् 1998 के बाद आज 2019 के अक्टूबर मास तक कभी आँतों का रक्तस्राव नहीं हुआ। असमान चिकित्सा के दौरान मैंनें कितना कष्ट सहा उसका वर्णन करना भी मुश्किल है।' इसी उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि समानता का होम्योपैथिक सिद्धान्त कितना सत्य है, होम्योपैथिक

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmamgain@gmail.com

औषधि यद्यपि प्रकृति में भिन्न थी परन्तु आत्मप्रकाश में समान थी। पहले वाली चिकित्सा की औषधियों के कुप्रभाव, जो लक्षणों की समानता पर नहीं थी, मुझे सम्भवत: जीवन भर भुगतने पड़ेंगे।

27वें अनुच्छेद में वे कहते है कि:

''अत: औषधियों की आरोग्यकारक शक्ति उनकी रोग के समान परन्तु रोग से अधिक शक्तिशाली लक्षणों पर निर्भर करती है (अनुच्छेद 12 से 26), ताकि प्रत्येक व्यक्तिगत रोग निश्चित रूप से, स्वाभाविक तरीके से, द्रुत गति से और स्थायी रूप से पूरी तरह समाप्त हो जाए और वह भी केवल अकेली औषधि से जो (मनुष्य के शरीर में) रोग के अत्यधिक समान सम्पूर्ण, परन्तु रोग से अधिक शक्तिशाली लक्षण उत्पन्न कर सके।''

अगले 28वें अनुच्छेद में हैनिमैन ने स्पष्ट किया है कि:

''क्योंकि आरोग्य का यह प्राकृतिक नियम प्रत्येक शुद्ध परीक्षण में और विश्व के प्रत्येक वास्तविक अवलोकन में स्वयं को प्रकट करता है, फलत: यह तथ्य (*27वें अनुच्छेद में वर्णित तथ्य*) प्रस्थापित हुआ है; यह क्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है और इस बात का वैज्ञानिक स्पष्टिकरण क्या है, इन प्रश्नों का कोई महत्व नहीं है और इनको स्पष्ट करने के लिए क्या प्रयत्न किया गया मैं इसको भी अधिक महत्व नहीं देता। लेकिन निम्नलिखित दृष्टिकोण स्वयं इसकी अत्यधिक सम्भावित संस्तुति करता प्रतीत होता है, क्योंकि यह पूर्वोक्त अनुभव पर आधारित है।''

29वें अनुच्छेद में ऑर्गेनन के पाँचवें संस्करण के उपरोक्त तथ्य को कि 'इस प्रकार शारीरिक और नैतिक व्याधियाँ आरोग्य हो जाती हैं' सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरण दिए हैं, लेकिन छठे संस्करण में उन्होंने इस अनुच्छेद को पूरी तरह पुन: लिखा। जो इस प्रकार है:

''क्योंकि प्रत्येक (पूरी तरह शल्यचिकित्सीय नहीं) रोग हमारी जीवनीशक्ति (जीवन के तत्व) के एक विशिष्ट विकृत (*रोगी*), गतिशील परिवर्तन के कारण होता है, जो अनुभूति और गति द्वारा प्रकट होता है, इसी प्रकार प्रत्येक होम्योपैथिक आरोग्य में जीवन का तत्व जो प्राकृतिक रोग से गत्यात्मक ढंग से बदला हुआ था सही ढंग से लक्षणों की समानता पर चुनी गई, परन्तु कुछ अधिक शक्तिशाली, समान कृत्रिम रोग-अभिव्यक्ति वाली शक्तिकृत औषधि के द्वारा रुक जाता है। इसके द्वारा प्राकृतिक (कमजोर) गतिशील रोग-अभिव्यक्ति रुक जाती है और समाप्त हो जाती है। यह

Dr S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

औषधीय कृत्रिम रोग-अभिव्यक्ति जीवन तत्व के ऊपर से स्वत: क्षीण होकर समाप्त हो जाती है जो अब तक मात्र उसी औषधीय कृत्रिम रोग-अभिव्यक्ति से प्रभावित और संचालित हो रही थी। यह कृत्रिम रोग-अभिव्यक्ति जल्दी ही अपनी शक्ति खो देती है और रोगी को रोग से मुक्त, आरोग्य, करके छोड़ जाती है। इस प्रकार जीवनीशक्ति स्वतन्त्र हो कर स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकती है। यह उच्चतम सम्भावित प्रक्रिया निम्नलिखित उक्तियों पर आधारित है।''

जीवनीशक्ति स्वस्थ हो जाने पर औषधि की शक्ति से उत्पन्न रोग पर, जो प्राकृतिक रोग से शक्तिशाली था, आसानी से विजय पा लेती है। यद्यपि जीवनीशक्ति प्राकृतिक रोग से ग्रसित होने पर, जो सामान्यत: (सोरा, सिफिलिस, साइकोसिस के कारण) आजीवन चलते हैं, स्वत: उन पर विजय पाने में असमर्थ रहती है, जब तक कि चिकित्सक जीवनीशक्ति को अधिक शक्तिशाली कारक से (होम्योपैथिक औषधि देकर या सुँघा कर) उद्दीपित नहीं करता है। इस प्रकार कुछ अधिक शक्ति वाला औषधिजनित रोग जीवनीशक्ति के पूर्व प्राकृतिक रोग पर हावी हो जाता है जिससे जीवनीशक्ति इस औषधीय रोग से प्रभावित हो जाती है, लेकिन यह औषधीय रोग औषधि की मात्रा अति अल्प होने के कारण कुछ ही समय में क्षीण हो कर स्वत: समाप्त हो जाता है।

30वें अनुच्छेद में का कहना है कि:

''मनुष्य का शरीर स्वास्थ्य के समय प्राकृतिक रोग उद्दीपक की अपेक्षा औषधियों से अधिक शक्तिशाली रूप में प्रभावित होता प्रतीत होता है (क्योंकि औषधि की मात्रा का नियन्त्रण पूरी तरह हमारे अपने वश में है) - इसलिए प्राकृतिक रोग उपयुक्त औषधि से निष्प्रभावित हो जाते हैं और आरोग्य हो जाते हैं।''

यह अनुच्छेद स्वत: स्पष्ट है, तथापि, हमें नित्यप्रति देखने को मिलता है कि विभिन्न नशीले पदार्थों से उनका सेवन करने वाले किस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकार ग्रस्त होते हैं और उनका स्वास्थ्य किस प्रकार बिगड़ जाता है। लेकिन ऐसे ही पदार्थों के होम्योपैथी के सिद्धान्तों के आधार पर उपयुक्त उपयोग से होम्योपैथी के सभी चिकित्सक तत्समान लक्षणों वाले रोगियों को चमत्कारिक रूप से आरोग्य होते देखते हैं। मैंने स्वयं अपने अनुभव में अनेक चमत्कारिक परिणाम पाए हैं और इस प्रकार स्वस्थ हो चुके रोगियों से अत्यधिक सम्मान मिला है।

31वें अनुच्छेद में हैनिमैन नें स्पष्ट किया है कि:

Dr. S. K. Mangalani Email: drmangalan@gmail.com

''आंशिक मानसिक, आंशिक भौतिक हानिकारक शक्तियाँ जिन जिनके लिए हमारा भौतिक अस्तित्व अनावृत्त रहता है, जो विकृत हानिकारक तत्व कहलाते हैं, मनुष्य के स्वास्थ्य को बिना शर्त रोग से अव्यवस्थित करने की शक्ति नहीं रखते, परन्तु उनके द्वारा हम तभी रोगी बनाए जा सकते हैं जब किसी विद्यमान रोगकारक के आक्रमण की ओर हमारे शरीर का काफी झुकाव हो और उनके प्रति संवेदनशीलता हो जिससे हमारे स्वास्थ्य में परिवर्तन होकर अनुभूतियों और प्रक्रियाओं में असामान्य अव्यवस्था उत्पन्न हो सके - अत: वे प्रत्येक व्यक्ति में हर समय और हर परिस्थिति में रोग उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।''

इस अनुच्छेद का तात्पर्य यह है कि कोई भी रोग भौतिक कारणों से उत्पन्न नहीं होता है और न ही वह शरीर की किसी यान्त्रिक या रासायनिक आदि भौतिक विकृति पर निर्भर होता है बल्कि वह तो जीवनीशक्ति की गतिशील आत्मिकशक्ति की अव्यवस्था होता है। अर्थात् रोग किसी अमूर्त रोगकारक जीवन विरोधी शक्ति के प्रभाव के फल स्वरूप जीवनीशक्ति की अव्यवस्था मात्र होता है। ऐसा केवल तब ही हो सकता है जब हमारी जीवनीशक्ति जीवन विरोधी रोगकारक से प्रभावित होने की प्रवणतायुक्त हो। इस अव्यवस्था को हम अपनी इच्छानुसार हर परिस्थिति में, हरेक व्यक्ति में उत्पन्न नहीं कर सकते। प्राकृतिक रोग का होना तो अनेक परिस्थितियों के प्रति जीवनीशक्ति के प्रभावित हो सकने की, और उनके प्रति संवेदनशीलता की प्रवणता पर निर्भर होता है।

32वें अनुच्छेद में, अत:, औषधीय शक्तियों के बारे में वे स्पष्ट करते हैं कि:

''परन्तु कृत्रिम रोग उत्पन्न कर सकने वाले कारकों, जिन्हें हम औषधियाँ कहते हैं, के विषय में यह बात बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक वास्तविक औषधि, सभी समय, हर परिस्थिति में, प्रत्येक जीवित मनुष्य पर प्रभाव करती है और उसके शरीर पर अपने विशिष्ट (यदि मात्रा काफी बड़ी हो तो स्पष्ट रूप से अनुभव किए जा सकने वाले) लक्षण उत्पन्न करती है, ताकि प्रत्येक जीवित मनुष्य का शरीर प्रभावित हो सके और इस प्रकार हर काल में औषधीय रोग से पूरी तरह (बिना शर्त) संरोपित (inoculate) हो जाता है, जबकि जैसा पहले कहा गया है ऐसा प्राकृतिक रोगों से किसी भी तरह नहीं होता है।''

औषधियों की मात्रा का नियन्त्रण हमारे वश में है अत: हर व्यक्ति की संवेदनशीलता के अनुसार औषधि की मात्रा को नियन्त्रित करके किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी परिस्थिति में इच्छानुसार हर व्यक्ति को औषधीय रोग से रोगी बनाया जा

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

सकता है, जबकि प्राकृतिक रोगों पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण न होने के कारण उनको इच्छानुसार उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

33वें अनुच्छेद में वे इसी तथ्य की अनुभव के आधार पर पुष्टि प्रस्तुत करते हुए कहते हैं:

''सभी अनुभवों से प्रत्यक्ष इस निर्विवाद तथ्य के अनुसार, कि जीवित मानव शरीर अनिष्टकर रोग कारक और संक्रामक धातुदोषों की अपेक्षा औषधीय शक्तियों से बहुत अधिक प्रभावित होने के प्रति प्रवृत्त होता है जिससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, या दूसरे शब्दों में अनिष्टकारी रोग कारकों में मनुष्य के स्वास्थ्य को विकृत करने की शक्ति तो होती है परन्तु निम्न कोटि की और सनियम होती है, जबकि औषधीय कारकों में पूरी तरह निरपेक्ष रूप से अत्यधिक उच्चतम शक्ति रहती है।''

34वें अनुच्छेद में उन्होंने उद्घाटित किया है कि:

''तथापि औषधियों की कृत्रिम रोग उत्पन्न करने की केवल अधिक शक्ति ही प्राकृतिक रोगों को निरोग करने का एकमात्र कारण नहीं होता है। आरोग्य सम्पन्न करने के लिए यह भी नितान्त वाञ्छित है कि उक्त औषधि मनुष्य के शरीर में जिस रोग को आरोग्य करना है यथासम्भव उसके समान कृत्रिम रोग उत्पन्न करने में समर्थ हो।''

महर्षि हैनिमैन के समय से आज तक के अनुभवों से हमेशा इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि प्राकृतिक कारणों से होने वाले रोग, चाहे वे संक्रामक धातुदोषों के कारण हों अथवा अन्य करणों से हों, इतने शक्तिशाली नहीं होते कि वे हर परिस्थिति में हर व्यक्ति को प्रभावित कर सकें और उन पर किसी व्यक्ति का कोई ऐसा नियन्त्रण भी नहीं होता कि जब चाहें जिस व्यक्ति पर चाहें उसे उनसे प्रभावित कर सकें, परन्तु इसके विपरीत औषधियों की शक्ति का उनकी मात्रा के नियन्त्रण द्वारा किसी भी परिस्थिति में हर व्यक्ति के शरीर में, चाहे वह स्वस्थ हो अथवा रोगी हो, इच्छानुसार वाञ्छित लक्षणों वाला रोग उत्पन्न किया जा सकता है। यह औषधीय कृत्रिम रोग निश्चित रूप से पूरी तरह प्राकृतिक रोग के समस्त लक्षणों के समान लक्षण उत्पन्न कर सकने में समर्थ होना चाहिए तब ही आरोग्य मिलना सम्भव होता है। प्राकृतिक रोग पर विजय पाने के लिए यह भी आवश्यक है कि औषधीय कृत्रिम रोग पूववर्ती प्राकृतिक रोग से थोड़ा अधिक शक्तिशाली होना चाहिए, तब ही वाञ्छित परिणाम मिलना सम्भव होता है। इसी गुण का लाभ उठाते हुए महर्षि हैनिमैन से लेकर आज तक कुशल होम्योपैथिक

Dr. S. K. Mangairi Email: drmamgairi@gmail.com

चिकित्सकों द्वारा असंख्य रोगी, यहाँ तक कि तथाकथित निराश (लाइलाज) रोगी भी पुन: स्वस्थ हुए हैं और 21वीं सदी में आज भी हो रहे हैं।

35वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि इस तथ्य को प्रदर्शित करने के लिए हम तीन भिन्न मामलों पर विचार करेंगे और साथ ही प्रकृति में जब दो असमान रोग एक ही व्यक्ति में मिलते हैं तो क्या होता है, और साथ ही अनुपयुक्त ऐलोपैथिक औषधियों द्वारा सामान्य चिकित्सा से क्या परिणाम मिलते हैं, जो हस्तगत रोग के समान कृत्रिम रोग उत्पन्न करने लायक नहीं होतीं, जिससे यह भी सिद्ध होगा कि प्रकृति स्वयं भी असमान रोग को निरोग करने में असफल रहती है भले ही वह पूर्व रोग से शक्तिशाली हो, इसी प्रकार अहोम्योपैथिक (असमान) औषधि भले ही कितनी ही शक्तिशाली हो किसी भी रोग को आरोग्य नहीं करेगी।

36वें से 38वें अनुच्छेदों में उन्होंने पुराने अभिलेखों से असमान प्राकृतिक रोगों द्वारा एक ही व्यक्ति पर आक्रमण से तथा असमान ऐलोपैथिक चिकित्सा से प्राप्त परिणामों का विवरण दिया है। हम आज भी प्रचलित तथाकथित अहोम्योपैथिक (असमान) उन्नत ऐलोपैथिक चिकित्सा के कुप्रभाव अनेकों रोगियों में प्रत्यक्ष देखते हैं।

महर्षि हैनिमैन नें ऐलोपैथिक चिकित्सा को 'ऑर्डिनरी स्कूल ऑफ मेडिसिन' कहा है।

39वें अनूच्छेद में उनका कहना है कि इस 'ऑर्डिनरी स्कूल ऑफ मेडिसिन' के अनुयायी यह सब अनेक सदियों से देखते रहे हैं, वे देखते हैं कि प्रकृति पहले से उपस्थित रोग को अपने आप किसी दूसरे रोग के आक्रमण से निरोग नहीं कर सकती, भले ही वह कितना भी शक्तिशाली हो। फिर भी वे क्रॉनिक रोगों की ऐलापैथिक औषधियों से चिकित्सा करते जाते हैं अर्थात् औषधियों और नुस्खों से जिन्हें भगवान ही जानता है कि वे कैसी विकृत दशा उत्पन्न करने में समर्थ होते है - लगभग निरपवाद रूप से आरोग्य किए जाने वाले रोग के एकदम असमान? क्या वे प्रकृति का ध्यानपूर्वक अवलोकन नहीं करते ताकि उसी प्रकार उनकी चिकित्सा से मिलने वाले दयनीय परिणामों से सीख मिलती कि वे अनुचित और झूठी राह पर चल रहे हैं। जब वे अपनी रीति के अनुसार क्रॉनिक रोग में आक्रामक ऐलोपैथिक चिकित्सा का उपयोग करते हैं तो क्या वे यह नहीं समझते कि इस प्रकार उन्होंने मूल रोग के असमान एक कृत्रिम रोग उत्पन्न कर दिया, जो जब तक चिकित्सा जारी रहती है मूल रोग को केवल प्रसुप्त (स्थगित) रखती है, केवल अवदमित (suppressed) रखती है, तथापि जो बाद में जैसे ही रोगी की

Dr. S.K. Mangairi Email: drmangain@gmail.com

शक्ति क्षीण हो जाने के कारण जीवन एलोपैथिक औषधियों के आक्रमणों को और अधिक सहन करने योग्य नहीं रहता है तब क्या मूल रोग हमेशा अवश्य नहीं लौट आता है? महर्षि हैनिमैन ने तत्कालीन ऐलापैथिक चिकित्सा से होने वाले परिणामों के द्वारा उपरोक्त तथ्य को सिद्ध करने के लिए यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए हैं जो आज की तथाकथित उन्नत ऐलोपैथिक चिकित्सा के संदर्भ में सम्भवत: पूरी तरह उचित प्रतीत न लगें, परन्तु उक्त आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा के परिणाम आज भी पुरानी चिकित्सा से अधिक भिन्न नहीं हैं बल्कि पुरानी ऐलोपेथिक चिकित्सा की अपेक्षा अनेक मामलों में आज की चिकित्सा के परिणाम अधिक गम्भीर ही होते देखे गए हैं। उदाहरण के लिए कैन्सर की चिकित्सा में सबसे पहले कैन्सर से प्रभावित अंग को शल्य क्रिया द्वारा निकाल दिया जाता है जिसके बाद पहले वाले प्रभावित अंग से दूर दूसरे अंगों में कैन्सर का प्रभाव प्रगट हो जाता है जिसे सेकेण्डरीज कहते है दूसरे अंगों में कैन्सर का प्रभाव न हो अत: सुरक्षा के लिए जो केमोथेरेपी और रेडियोथेरेपी की जाती है उसके परिणाम उस स्थिति की अपेक्षा कहीं अधिक दुखदायी होते हैं जिस स्थिति में रोगी बिना कोई चिकित्सा कराए रहता। कैन्सर वास्तव में जीवनीशक्ति की धातुदोषों के मिश्रित प्रभाव के कारण विकृत दशा का परिणाम होता है, जो शरीर के किसी एक अंग में जीवनीशक्ति द्वारा सहायता के लिए एक लक्षण स्वरूप प्रकट किया जाता है, किसी बाहरी कारण से नहीं होता अत: मूल रूप से जिस अंग में प्रकट हुआ था उसके कट जाने पर पूर्व अंग से अन्य प्रभावित हो सकने वाले अंग में जीवनीशक्ति उक्त विकृति को प्रकट करने को बाध्य हो जाती है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त चिकित्सा के वैज्ञानिक रोग के प्रकट रूप (लक्षण) को ही वास्तविक रोग मान कर यह सारी चिकित्सा करते है उसके मूल कारण की खोज का प्रयत्न नहीं करते। परिणामत: रोगी मूल रोग की अपेक्षा चिकित्सा से ही और अधिक रोगी हो जाता है।

40वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि नये प्राकृतिक रोग द्वारा शरीर पर लम्बे समय तक क्रिया करने के बाद वह पुराने वाले रोग के साथ मिल कर एक और जटिल रोग पैदा कर देता है, इस प्रकार प्रत्येक रोग से शरीर के भिन्न भिन्न अंग इनसे प्रभावित हो सकने वाले विशिष्ट अंग में डेरा जमा लेता है और दूसरे असमान रोग को वहाँ अपना कार्य करने के लिए छोड़ देता है। इस प्रकार अदल बदल कर एक सिफिलिटिक रोगी सोरिक रोगी बन सकता है। क्योंकि दो असमान रोग एक दूसरे को आरोग्य या समाप्त नहीं कर सकते। अत: जब एक रोग क्रियाशील होता है तो दूसरा स्थगित रहता है और जब दूसरा क्रियाशील होने लगता है तो पहला स्थगित हो जाता है। अन्तत: कुछ समय

Dr S K. Mangairi Email:drmangairi@gmail.com

बाद दोनों एक साथ मिल जाते हैं और प्रवणता के अनुसार अलग अलग अंगों में एक साथ चलने लगते हैं और परिणामत: रोगी और अधिक रोगी हो जाता है और तब आरोग्य करना दुष्कर हो जाता है।

41वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने स्पष्ट किया है कि प्राकृतिक रोगों की अपेक्षा (ऐलोपैथिक तरीके से) असमान और अनुपयुक्त औषधियों के बार बार लम्बे समय लगातार उपयोग से, आरोग्य करने के उपक्रम में मूल रोग को किस प्रकार अधिक जटिल बना दिया जाता है और एक अधिक असमान, जटिल क्रॉनिक रूप वाला रोग बना दिया जाता है और इस प्रकार रोगी एक मूल रोग के साथ ही इस चिकित्सा के द्वारा उत्पन्न नये क्रॉनिक रोग से भी पीड़ित हो जाता है जिन्हें आरोग्य करना और कठिन हो जाता है यहाँ तक कि वे असाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार ऐसे अनेक रोग जिनके लिए मेडिकल पत्रिकाओं में राय माँगी जाती है और अन्य अभिलेखों में जिनका विवरण मिलता है उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार गनोरियल और सोरिक मूल के क्रॉनिक रोग मर्करी आदि से बनी दवाओं के लम्बी अवधि तक चिकित्सा से अधिक जटिल अन्य असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिनको स्वस्थ करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ध्यान रहे जिस युग में ऑर्गेनन की रचना की गई थी उस युग में ऐलोपैथिक चिकित्सा में केवल वनस्पति स्रोत से और रसायनों आदि से उपलब्ध पदार्थों का जीवित शरीर पर उनके भौतिक प्रभाव उत्पन्न कर सकने की शक्ति के आधार पर उपयोग होता था यथा कब्ज दूर करने के लिए रेचक के रूप में क्रोटोन टिग्लियम, पीड़ा शामक के रूप में ओपियम आदि का तथा गनोरिया जैसे रोगों में मर्करी आदि का भौतिक मात्राओं में लम्बे समय तक उपयोग होता था जिनके कारण रोगियों पर इतना अधिक कुप्रभाव होता था, जबकि आज के युग में ऐलौथिक चिकित्सा में अधिकांश औषधियाँ संश्लेशित (synthetc) पदार्थों के सम्मिश्रण से बनती हैं जिनके उपयोग से भिन्न व्यक्तियों के जीवित शरीर पर होने वाले प्रभावों के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं होता ओर जिनका उपयोग केवल क्लीनिकल प्रूविंग के आधार पर किया जाता है, उनके उपयोग से भिन्न भिन्न रोगियों पर कितना हानिकर प्रभाव हो सकता है केवल भगवान ही जानता है। यहाँ एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। ऐलोपैथिक पद्धति में 60 साल से पहले पेन्सिलीन नामक एक तथाकथित जीवनरक्षक चमत्कारिक दवा का आविष्कार हुआ था, इसके आविष्कारक को नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। साधारण जुकाम से लेकर टी0 बी0 तक लगभग हर बीमारी के लिए इसका उपयोग किया गया। फिर वह समय आया कि इसके टेस्ट डोज के लगते ही अनेक रोगी काल कलवित हो गए। आज

Dr. S. K. Mangalini Email: drmangalin@gmail.com

चिकित्सक इसके नाम से ही डरते हैं। क्योंकि इसका परीक्षण और उपयोग समता के प्राकृतिक नियमों के आधार पर नहीं हुआ था। इसी प्रकार थोड़े समय के उपयोग के बाद ऐलोपैथी की लगभग प्रत्येक दवा लुप्त होती रहती है। सदियों से ऐसा होने पर भी ऐलोपैथी के चिकित्सा वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया कि 'जो दवा क्लीनिकल प्रूविंग में कुछ व्यक्तियों के लिए जीवन रक्षक का काम करती है वही अन्य व्यक्तियों के लिए मारक क्यों हो जाती है? जबकि महर्षि हैनिमैन ने इस प्रश्न को समझा और होम्योपैथी का आविष्कार किया। इसीलिए प्राकृतिक नियमों के अनुसार परीक्षित प्रत्येक होम्योपैथिक औषधि हैनिमैन के समय से आज तक निरस्त नहीं हुई बल्कि उसके गुणों का विस्तार ही हुआ है और उसका उपयोग और अधिक विश्वास के साथ किया जा रहा है।

42वें अनुच्छेद में हैनिमैन नें एक ही व्यक्ति पर असमान एकाधिक प्राकृतिक रोगों का आक्रमण हो जाने पर क्या होता है इस बारे में लिखा है कि जैसा कहा गया है प्रकृति स्वयं एकाधिक प्राकृतिक रोग एक ही शरीर में एक साथ हो जाने पर साथ साथ चलने देती है। तथापि इस प्रकार की जटिलता केवल उसी दशा में होती है जब वे रोग असमान हों उस दशा में वे प्रकृति के शाश्वत नियम के अनुसार न तो एक दूसरे को दूर कर सकते हैं न ही आरोग्य कर सकते हैं, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वे शरीर में अपने अपने अनुरूप अंगों में डेरा जमा लेते हैं, इन रोगों में एक दूसरे से समरूपता न होने के कारण वे बिना शरीर की एकात्मता को नुकसान पहुँचाए एक ही शरीर में रह सकते हैं।

43वें अनुच्छेद में उन्होंने शिक्षाप्रद प्राकृतिक नियम का उल्लेख करते हुए कहा है कि:

''तथापि जब दो समान रोग एक ही शरीर में हो जाते हैं तो परिणाम एकदम भिन्न होता है, कहने का तात्पर्य यह है कि जब शरीर में विद्यमान रोग से अधिक शक्ति वाला समान लक्षणों वाला अन्य रोग हो जाता है तो ऐसे मामलों में हम देखते हैं कि प्रकृति किस प्रकार आरोग्य कर देती है, इससे हमें सीख मिलती है कि मनुष्य किस प्रकार आरोग्य सम्पन्न कर सकता है।''

जब कभी प्रकृति में एक रोग से पीड़ित व्यक्ति को पहले रोग के समान परन्तु उससे कुछ शक्तिशाली दूसरा रोग प्रभावित कर देता है तो पहले वाला रोग पूरी तरह समाप्त हो जाता है, इस प्राकृतिक नियम से हमें यह सीख मिलती है कि मनुष्य भी इस नियम का लाभ उठाते हुए रोगी शरीर में स्थित रोग के समान परन्तु उससे कुछ अधिक

Dr. S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

शक्ति वाला कृत्रिम रोग उत्पन्न करके आरोग्य सम्पन्न कर सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि औषधीय पदार्थ से यदि मनुष्य को उसकी औषधीय शक्ति का ज्ञान है तो उचित मात्रा से जब चाहे किसी भी व्यक्ति में इच्छानुसार तत्समान रोग उत्पन्न कर सकता है।

44वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने असमान रोगों के बारे में उनके परिणामों का उल्लेख करते हुए कहा है कि:

''आपस में समान दो रोग न तो एक दूसरे का विरोघ करते हैं और न ही एक दूसरे को निलम्बित करते हैं, इसलिए नए वाले रोग का कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद पहला रोग पुन: वापस आ जाता है, या दोनों रोग साथ साथ एक ही शरीर में चलते रहते हैं अथवा दोनों मिल कर एक जटिल रोग बन जाते हैं।''

45वें अनुच्छेद में वे कहते हैं:

''नहीं! यह सत्य है कि प्रकृति में भिन्न परन्तु अपने प्रतिभास में, प्रभाव में और कष्टों में तथा लक्षणों में जो वे उग्रता से उत्पन्न करते हैं दो बहुत समान रोग जब भी एक ही शरीर में मिलते हैं तो निरपवाद रूप से एक दूसरे को समाप्त कर देते हैं; अघिक शक्तिशाली रोग कम शक्तिशाली रोग को समाप्त कर देता है, इसका सीधा सा कारण यह है कि अधिक शक्ति वाला रोग जब शरीर पर आक्रमण करता है तो इसकी क्रिया की समानता के कारण यह उन्हीं अंगों को प्रभावित करता है जो कम शक्ति वाले रोग से पीड़ित थे, अत: वह उन अंगों पर और क्रिया नहीं कर पाता और शांत हो जाता है; दूसरे शब्दों में, क्योकि प्राथमिक रोग से प्रभावित जीवनीशक्ति जब भी नये और बहुत समान अधिक डायनामिक शक्ति वाले रोग से आक्रांत हो जाती है तो वह इस बाद वाले से ही आक्रांत रहती है, जबकि मूल समान परन्तु कमजोर रोग, बिना किसी भौतिक धरातल के केवल डायनामिक शक्ति होने के कारण जीवनीशक्ति पर कुछ भी रोग क्रिया करने लायक नहीं रहता, परिणामत: इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।''

उपरोक्त तथ्य को सिद्ध करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण दिया है 'जैसे सूर्य का तेज प्रकाश आँख पर पड़ने से दीपक की लौ का प्रभाव समाप्त हो जाता है' उसी प्रकार कमजोर रोग अधिक शक्ति वाले समान रोग से निष्प्रभावी हो जाता है।

Dr. S. K. Mangaim Email: drmamgaim@gmail.com

46वें अनुच्छद में महर्षि हैनिमैन ने एक ही शरीर में समान लक्षणों वाले दो भिन्न प्राकृतिक रोगों के हो जाने पर जिस प्रकार अधिक शक्ति वाले रोग से कम शक्ति वाला रोग समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार पशुओं के विभिन्न रोगों के वैक्सीन द्वारा कम शक्ति वाले तत्समान रोग पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं इसके अनेक तथ्यपरक उदाहरण दिए हैं। इन सब उदाहरणों से उनका मन्तव्य केवल यही प्रदर्शित करना है कि होम्योपैथी का लक्षण समानता के आधार पर आरोग्य करने का तरीका कितना अधिक प्राकृतिक और विश्वसनीय है।

47वें अनुच्छेद में उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि चिकित्सक को यह सिखाने के लिए कि प्रकृति की प्रक्रिया के अनुरूप, निश्चित रूप से, द्रुत और स्थायी आरोग्य करने के लिए किस प्रकार के रोगकारक (औषधि) का उसे चुनाव करना चाहिए। उपरोक्त उदाहरणों से अधिक सरल कोई और विश्वसनीय तरीका नहीं हो सकता

48वें अनुच्छेद में उन्होंने पुनः जोर देते हुए कहा है कि जैसा हम उपरोक्त उदाहरणों से देखते हैं कि न तो प्रकृति में और न ही चिकित्सक की कला द्वारा कोई भी रोग कभी भी असमान रोग कारक द्वारा दूर नहीं किया जा सकता, भले ही वह कितना भी सशक्त हो, जबकि लक्षणों की समानता वाले मूल रोग से थोड़ा अधिक शक्ति वाले रोग कारक द्वारा प्रकृति के अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत नियम के अनुसार आरोग्य किया जा सकता है, जिसे अभी तक मान्यता नहीं मिली है।

वास्तव में होम्योपैथी के इस प्राकृतिक और शाश्वत नियम को आज 21वीं सदी तक भी ऐलोपैथिक पद्धति द्वारा मान्यता नहीं मिली है।

49वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि एक ओर, यदि अवलोकनकर्ताओं का ध्यान इस ओर केन्द्रित होता; दूसरी ओर, यदि प्रकृति का हाथ होम्योपैथिक रोगो में इतना कम सहायक न होता तो इस प्रकार के प्रकृति द्वारा होम्योपैथिक आरोग्य के और भी अनेक उदाहरण मिल सकते थे,

50वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन यह भी स्पष्ट करते हैं कि, यद्यपि शक्तिमान प्रकृति का होम्योपैथिक आरोग्य करना अपने वश में है परन्तु प्राकृतिक रोगकारकों की मात्रा पर वश न होने के कारण वे अधिक खतरनाक हो सकते हैं, क्योंकि वे पूर्व रोग को तो निरोग कर देते हैं परन्तु उनको दूर करने के लिए उनकी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmamgam@gmail.com

है क्योंकि वे कठिन, अनियमित और घातक होते हैं। प्रकृति में ऐसे बहुत कम रोग होते हैं जो इन समान प्राकृतिक अनिश्चित, खतरनाक, होम्योपैथिक औषधियों से आरोग्य हो सकते हैं। इनसे मूल रोग के आरोग्य हो जाने के बाद इन संकटकारक रोगों की अलग से चिकित्सा करने की आवश्यकता पड़ती है जो कठिन और संकटपूर्ण होती है, क्योंकि प्राकृतिक समरूप रोगों की संकटकारक उग्रता पर औषधियों की मात्रा की तरह कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। फिर भी, जैसा देखा गया है, हम कुछ सौभाग्यवश होम्योपैथिक आरोग्य की अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं में प्रकृति के लक्षणों की समानता पर आरोग्य के नियम के इस महान निरपवाद तथ्य को पाते हैं।

51वें अनुच्छेद में, अत:, महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''इन घटनाओं के द्वारा चिकित्सा का यह (होम्योपैथिक) नियम सभी बुद्धिमान व्यक्तियों के मस्तिष्क के सामने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत होता है। लेकिन, देखिए दूसरी ओर प्रकृति की मनमानी अपरिष्कृत प्रक्रियाओं के विपरीत मनुष्य को क्या सुविधाएँ प्राप्त हैं। क्या मनुष्य के पास अपने पीड़ित सजातीय व्यक्तियों की सहायता के लिए हजारों होम्योपैथिक रोग कारक औषधीय पदार्थ सारे विश्व में समान रूप से फैले हुए उपलब्ध नहीं हैं! जिनमें मनुष्य के पास सभी प्रकार के सम्भव असंख्य प्रकार के कल्पनीय और अकल्पनीय प्राकृतिक रोगों को उत्पन्न करने वाले पदार्थ उपलब्ध हैं और जिनसे उनके लिए होम्योपैथिक सहायता प्रदान की जा सकती हैं। इन आरोग्यकारक पदार्थों की शक्ति आरोग्य क्रिया पूर्ण होने के बाद खुजली की तरह, बिना किसी प्रकार की चिकित्सा किए जीवनीशक्ति द्वारा स्वत: समाप्त कर दी जाती है। चिकित्सक इन कृत्रिम रोगकारक पदार्थों को तरलीकृत करते हुए असीमित सीमा तक पोटेन्टाइज कर सकता है और इनकी मात्रा इतनी सीमा तक कम कर सकता है कि मूल रोग से तनिक अधिक शक्ति में इनके समान रोग को आरोग्य करने में उपयोग कर सकता है, इस प्रकार इस अतुलनीय आरोग्यकारक तरीके से, यहाँ तक कि लम्बे समय से उपस्थित बहुत जिद्दी रोग को भी, दूर करने के लिए उपयोग का सकता है। इस प्रकार, किसी उग्र आक्रमण की आवश्यकता के बिना ही इस तरीके से रोग सौम्यता के साथ, अगोचर रूप से, तथापि द्रुत गति से, बिना कष्ट समाप्त हो जाता है और सामान्य स्वास्थ्य की स्थापना हो जाती है।''

18वीं शताब्दी में महर्षि हैनिमैन के समय से आज 21वीं शताब्दी तक जिस किसी चिकित्सक ने भी होम्योपैथी के सिद्धान्तों का पालन करते हुए चिकित्सा की है उपरोक्त कथन को सर्वदा सत्य पाया है क्योंकि यह एक प्राकृतिक शाश्वत नियम है। इस नियम

Dr. S.K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

के आधार पर लेखक को पिछले पचास वर्षों के अनुभव से पूरा विश्वास हो गया है कि हाम्योपैथी वास्तविक संजीवनी विद्या है, यदि चिकित्सक को होम्योपैथी की सभी औषधियों का पूर्ण ज्ञान हो जाये तो कोई भी रोग इस पद्धति के द्वारा आरोग्य किया जा सकता है।

52वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट इन उदाहरणों को देखने के बाद कोई भी बुद्धिमान चिकित्सक पुरानी सामान्य चिकित्सा पद्धति की ओर नहीं जाएगा। आगे उन्होंने एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति की अज्ञात प्रभाव वाली औषधियों से रोगियों को होने वाले अपूरणीय नुकसान और कुप्रभावों का विवरण दिया है जबकि उनके युग में आज जैसी संश्लेषित पदार्थों के सम्मिश्रण से तैयार औषधियों का उपयोग नहीं होता था, जिनके लम्बे समय तक उपयोग से होने वाले कुप्रभाव उस समय उपयोग होने वाली औषधियों की अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक, जटिल और असाध्य होते हैं। आज के युग में कुछ कठिन किस्म के रोगों की चिकित्सा में उपयोग की जाने वाली स्टेरॉयड ग्रुप की दवाएँ इस तथ्य की ज्वलंत उदाहरण हैं।

53 वें अनुच्छेद में उन्होंने स्पष्ट किया है कि:

इसके विपरीत हम देखते हैं कि वास्तविक और सौम्य आरोग्य केवल होम्योपैथिक तरीके से ही होते हैं जैसा कि हमने (7वें से 25वें) अनुच्छेदों में बतलाया है। होम्योपैथी के आविष्कार के समय से आज तक के अनुभवों से यही परिणाम मिलता है कि यही एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा निश्चित रूप से, द्रुत गति से रोग स्थायी तौर पर समाप्त हो जाते हैं; क्योंकि आरोग्य की यह कला प्रकृति के शाश्वत और निरपवाद नियम पर आधारित है।

54वें अनुच्छेद में इन्होंने कहा है कि:

''जैसा कि 43वें से 49वें अनुच्छेदों में औषधियों के उपयोग से चिकित्सा के तीन विभिन्न तरीकों का विवरण दिया गया है इनमें यह होम्योपैथिक तरीका ही एकमात्र ऐसा सरल तरीका है जिसके द्वारा किसी भी दशा में रोगी को कोई हानि पहुँचाए और कमजोर किए बिना सौम्य, द्रुत और स्थायी आरोग्य सम्भव है। शुद्ध होम्योपैथिक तरीका ही उचित और एकमात्र इतना सरल तरीका है कि जितना दो बिन्दुओं के बीच

Dr. S. K. Mangalani Email: drmangan@gmail.com

केवल एक ही सरल रेखा खींची जा सकती है, और मानव की निपुणता के लिए सरलतम सम्भव राह है।''

55वें अनुच्छेद में उन्होंने स्पष्ट किया है कि:

''रोग में औषधियों के उपयोग का दूसरा तरीका एलोपैथिक या विषमचिकित्सा का तरीका है जिसमें शरीर में वास्तव रोगी कौन है, के साथ बिना किसी पैथोलॉजिकल सम्बन्ध को स्थापित किए कल्पना के आधार पर रोग रहित अंगों पर रोग को बाहर निकालने के लिए आक्रमण किया जाता है।''

56वें अनुच्छेद में चिकित्सा के अन्य तरीके का उल्लेख करते हुए उनका कहना है कि:

''चिकित्सा का तीसरा तरीका है शान्तिदायक चिकित्सा (प्रतिकूल चिकित्सा, विषम चिकित्सा), जो सत्रह शताब्दियों से प्रचलित गैलेन की शिक्षा ''कॉन्ट्रैरिया कॉन्ट्रेरिस'' पर आधारित है, जिसके द्वारा चिकित्सक लगभग त्वरित राहत का भ्रम पैदा करके भरोसा जीतना चाहते हैं। लेकिन चिकित्सा का यह तरीका उन रोगों में जो लम्बे समय तक चलते हैं मूलत: कितना अनुपयुक्त और हानिकारक है हम देखेंगे कि आगे क्या होता है। ऐलोपैथिक चिकित्सकों द्वारा अपनाया गया निश्चित रूप से चिकित्सा का यही एकमात्र तरीका है जो प्राकृतिक रोग से उत्पन्न कष्टों के साथ कुछ अंशों में सम्बन्ध प्रदर्शित करता है, लेकिन कैसा तरीका? यदि हम भ्रम में न हों और क्रॉनिक रोग से पीड़ित व्यक्ति का उपहास न करना चाहें तो वास्तव में इसे एकदम (उपयुक्त तरीके से बिल्कुल विपरीत) अस्वीकार करना चाहिए।''

(जिस पदार्थ से रोग उत्पन्न हुआ उसी संक्रामक पदार्थ को औषधि के रूप में उपयोग द्वारा रोगों की चिकित्सा भी एक तरीका है जिसे आइसोपैथी कहा जाता है। लेकिन ऐसा करने की यदि अनुमति दी भी जाए तो उस दशा में उस संक्रामक पदार्थ को बहुत उच्च पोटेन्सी में देना होगा, जिससे फलत: आरोग्य एक बदली हुई दशा में समान से समान का विरोध करते हुए होगा।

उसी रोग कारक पोटेन्सी में आरोग्य करने का प्रयास विरोधाभासी और पूरी मानवी समझदारी के विपरीत होगा, अत: अनुभव के भी विपरीत होगा। जिन्होंने आइसोपैथी की ओर पहली बार ध्यान दिलाया शायद उन्होंने सोचा होगा कि जैसे मानवता को काउपॉक्स के वैक्सीनेशन से लाभ मिला जिससे वैक्सीनेशन लगा हुआ व्यक्ति भविष्य में होने वाले स्मॉलपॉक्स के संक्रमण के प्रति सुरक्षित हो गया मानो वह पहले ही आरोग्य हो गया।

Dr. S K Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

लेकिन काउपॉक्स और स्मॉलपॉक्स दोनों केवल समान रोग हैं, किसी भी तरह से एक रोग नहीं हैं। उनमें अनेक तरह से भिन्नता है, यथा काउपॉक्स की द्रुत गति और सौम्यता, खासतौर से इस बात में है कि यह मनुष्य की मात्र निकटता से ही संक्रमित नहीं होती। विश्वव्यापी वैक्सीनेशन से उक्त भयानक घातक स्मॉलपाक्स की सब महामारियों का उस सीमा तक अन्त हो गया कि आज की पीढ़ियों को उस पूर्व भयंकर स्मॉलपॉक्स महामारी की स्पष्ट अवधारणा तक नहीं रही।

तथापि, इस प्रकार, निश्चय ही, पशुओं के कुछ विशिष्ट रोग मानव के बहुत समान कुछ प्रमुख रोगों के लिए हमें औषधियाँ और मेडिकल पोटेन्सियाँ उपलब्ध करा सकती हैं, और इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक हमारे होम्योपैथिक औषध भण्डार को बढ़ा सकती हैं।

लेकिन मानव के रोग के पदार्थ (मनुष्य की खुजली से लिया गया सोरिन) मनुष्य की उसी प्रकार की खुजली के लिए औषधि के रूप में या अन्य रोगों से प्राप्त ऐसा ही करने में क्या है? इससे केवल कष्ट और रोग वृद्धि ही मिलेगी।)

महर्षि हैनिमैन नें पिछले तीन अनुच्छेदों में चिकित्सा के विभिन्न तरीकों का तुलनात्मक विवेचन करके होम्योंपैथिक चिकित्सा विधि की श्रेष्ठता सिद्ध की है जिसके द्वारा रोग निर्मूल हो करके पुनः प्राकृतिक सामान्य स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है और रोगी पुनः सामान्य तरीके से जीवन व्यतीत करने लगता है, यह तथ्य वास्तव में अनेक होम्यापैथिक चिकित्सकों के अनुभवों से सत्य ही सिद्ध हुआ है। साथ ही उन्होंने 56वें अनुच्छेद की पादटिप्पणी में पशुओं के रोगों से लिए गए रोग विष से मनुष्य के तत्समान लक्षणों वाले रोगों के लिए उच्च सीमा तक पोटेन्टाइज करके तैयार की गई पोटेन्सियों से होम्योपैथिक औषध भण्डार की अभिवृद्धि की भी संस्तुति की है, ताकि जैसे काउपॉक्स वैक्सीन के उपयोग से चेचक (स्मॉलपॉक्स) के पूरे विश्व से लगभग पूरी तरह उन्मूलन हुआ है उसी तरह पशुओं के अन्य रोगों के रोग विष द्वारा मनुष्य के तत्समान रोगों पर भी विजय प्राप्त की जा सके।

57वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन बतलाते हैं कि सामान्य (ऐलोपैथी के) चिकित्सक इस विषम चिकित्सा को कार्य रूप में जारी रखने के लिए रोग के अन्य बहुत से लक्षणों को नजर अन्दाज करके किसी एक कष्टकारी लक्षण को शान्त करने के लिए उसके एकदम विपरीत लक्षण उत्पन्न करने वाली औषधि चुनता है जिससे पन्द्रह सदी पुराने चिकित्सा शिक्षा के पारम्परिक पुरातन नियम (कॉन्ट्रैरिया कॉन्ट्रैरीस – विषम चिकित्सा) के अनुसार वह त्वरित (शामक) राहत की आशा करता है। वह सब प्रकार के दर्दो में ओपियम की बड़ी मात्राएँ देता है, क्योंकि इस दवा से जल्दी ही संवेदनाएँ सुन्न पड़

Dr. S. K. Mangalik. Email: drmangalik@gmail.com

जाती हैं, अतिसार के लिए इसी दवा का उपयोग करता है जिससे आतों की धमनक्रिया (पेरिस्टैल्टिक मोशन) एकदम रुक जाती है और उसे सुन्न कर देती है और अनिद्रा के लिए भी, क्योंकि ओपियम तेजी से अचेत और संज्ञाशून्य निद्रा उत्पन्न करती है। उन्होंने इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण देकर कहा है कि इसी प्रकार वह अन्य विषम चिकित्सकीय तरीके उपयोग करता है, क्योंकि सामान्य चिकित्सा शिक्षा वालों को ऐसी विशिष्ट (प्राथमिक) क्रिया वाले केवल थोड़े से पदार्थों का ही ज्ञान है। आज भी उक्त चिकित्सा पद्धति में चिकित्सा के तरीके में कोई अन्तर नहीं आया है, रोगी को इसी पुराने सिद्धान्त पर त्वरित राहत पहुँचाने के लिए बस इतना अन्तर हुआ है कि अशोधित पदार्थों के स्थान पर इसी प्रकार संश्लेशित (synthetic) पदार्थों का उपयोग होने लगा है या कुछ कृत्रिम उपाय अपनाए जाते हैं। फिर भी जहाँ तक परिणाम का प्रश्न है वह ज्यों का त्यों ही होता है।

58वें अनुच्छेद में 57वें अनुच्छेद में वर्णित शामक चिकित्सा के विषय का विवेचन करते हुए आगे कहते हैं कि:

> ''यदि औषधियों के उपयोग के इस तरीके के मूल्य का अनुमान करने में, कि यह अत्यधिक दोषपूर्ण लाक्षणिक चिकित्सा है, यदि इस परिस्थिति को छोड़ भी दें, तो भी चिकित्सक मात्र अकेले लक्षण पर, परिणामत: पूरे रोग के केवल एक छोटे से भाग पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है, जबकि रोगी चाहता है कि उसका पूरा रोग दूर हो, जो कि प्रकटत: नहीं हो सकता - दूसरी ओर, अनुभव की माँग है कि यदि किसी अकेले मामले में जहाँ विषम लक्षणों के आधार पर दी गई औषधि से कुछ समय के लिए राहत मिल भी जाय तो क्या वास्तव में क्रॉनिक या लगातार बने रहने वाले रोग में इस प्रकार की अस्थायी राहत से लक्षणों में और अधिक उग्रता से पूरे रोग में वृद्धि नहीं हुई है? प्रत्येक सावधान अवलोकनकर्ता इस बात से पूरी तरह सहमत होगा कि इस प्रकार की विषम चिकित्सा से थोड़े समय की राहत के बाद निश्चितरूप से हर एक मामले में रोग वृद्धि होती है; यद्यपि अपने रोगी को बाद की रोग वृद्धि के लिए आम चिकित्सक को दूसरा ही स्पष्टीकरण देने की आदत होती है, वे इस रोगवृद्धि को मूल रोग की विषालुता (poisoning) का परिणाम बतलाते हैं या कहते हैं कि अब एक नया रोग हो गया है।''

ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी प्रचलित शामक या विषम चिकित्सा के वैज्ञानिक प्राचीन चिकित्सा सिद्धान्तों (कॉन्ट्रैरिया कॉन्ट्रैरीस) को ही अन्तिम उपलब्धि मानते हैं अत: उससे आगे विचार नहीं करते कि ऐसा क्या कारण है कि उनकी दवा से बार बार

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

त्वरित या अस्थायी राहत के बाद रोग फिर से क्यों पुनः वृद्धि के साथ लौट आता है या अन्य अनेक रोगों में शल्य चिकित्सा के बाद भी फिर से रोग या तो उसी स्थान पर (जैसा कि बवासीर, फिस्चुला आदि में होता है) या किसी दूसरे स्थान में (सेकेण्डरीज के रूप में कैन्सर जैसे रोगों में) अधिक उग्रता से प्रकट हो जाता है? ऐसा होने के मूल में क्या कारण हो सकता है? महर्षि हैनिमैन नें तत्कालीन चिकित्सा के परिणामों पर गहन चिंतन के बाद उक्त चिकित्सा को तिलाञ्जली दे दी थी और मन में ठान लिया था कि जब तक सही और स्थायी चिकित्सा विधि का विकास नहीं होता वे चिकित्सा कार्य नहीं करेंगे और अन्ततः उन्हें ही ब्रिटिश डा0 कलेन की मेटीरिया मेडिका से सिनकोना का जर्मन भाषा में अनुवाद करते समय सूत्र मिल गया और इसी सूत्र पर मनन, चिंतन, अवलोकन और परीक्षण से होम्योपैथी का उदय हुआ जो आरोग्य के सभी पहलुओं पर शतशः सही सिद्ध हुई है। चिकित्सक को सफलता प्राप्त करने के लिए पूरा परिश्रम तो करना ही पड़ता है।

59वें एवं 60वें अनुच्छेदों में महर्षि हैनिमैन शमन करने वाली तथा विषम चिकित्सा की औषधियों द्वारा बिना पूरे रोग पर ध्यान दिए ही किसी एक लक्षण में त्वरित परन्तु थोड़े समय के लिए रोगी को राहत मिलने के बाद, जिसको उन्होंने औषधि का प्राथमिक प्रभाव कहा है, किस प्रकार से रोग पुनः अधिक उग्रता के साथ लौट आता है, जिसे उन्होंने औषधि का द्वितीयक प्रभाव कहा है, इस तथ्य को उन्होंने अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया है। इस शामक या विषम चिकित्सा द्वारा जो कुछ समय के लिए राहत मिलती है उससे चिकित्सक प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है कि थोड़े समय के लिए ही सही उसने रोगी को राहत तो पहुँचाई है। याद रहे उस काल में प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त औषधियाँ ही चिकित्सा में उपयोग होती थीं, जबकि आज इसी उद्देश्य के लिए विभिन्न प्रकार की संश्लेषित औषधियाँ उपयोग की जाती हैं जो प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त औषधियों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली होती हैं और उनसे भविष्य में होने वाले प्रभावों के बारे में कोई भी नहीं जानता, इतना अवश्य है कि वे रोगी को अधिक प्रभावशाली ढंग से अपना आदि बना देती हैं और बहुत जल्दी ही इनका प्रभाव घटने के साथ इनको जल्दी जल्दी लेने की आवश्यकता पड़ती है। इनके अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं जैसे श्वास कष्ट में ऐस्थेलीन इनहेलर, एण्टि-एलर्जिक दवाएँ और स्टेरॉयड ग्रुप की दवाएँ आदि। इन दवाओं के उपयोग में एक सबसे बड़ा अवगुण है कि इनके लगातार उपयोग के बाद एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब रोगी इनके प्रभाव के प्रति मुक्त हो जाता है अर्थात् रोगी पर इनका प्रभाव होना बन्द हो जाता है। उस दशा में चिकित्सक या तो असहाय

Dr. S. K. Mangairi. Email: drmamgain@gmail.com

हो जाता है या फिर उसको किसी और अधिक शक्तिशाली दवा का उपयोग करना पड़ता है। जैसा कि महर्षि हैनिमैन ने प्राकृतिक दवाओं की शामक या विषम चिकित्सा के द्वितीयक प्रभाव के कारण या तो रोग और अधिक बढ़ जाता है या अन्य कुछ अति गम्भीर स्थिति पैदा हो जाती है, जैसा देखा भी गया है संश्लेषित दवाओं के द्वितीयक प्रभाव में तो अन्त में रोगी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है और रोगी के जीवन का दुखद अन्त तक हो जाता है। इसी प्रकार कैन्सर जैसे रोग में रेडियोथेरेपी और कैमोथेरेपी जैसी चिकित्सा ऐसा मान करके की जाती है कि इस प्रकार रोगग्रस्त कोष समाप्त हो जायेंगे लेकिन चिकित्सा से रोगी किस दशा में पहुँच जाता है, जिन्होंने देखा है वे इनके परिणाम को जानते हैं।

61वें अनुच्छेद में हैनिमैन ने स्पष्ट किया है कि:

''प्रत्येक कारक, प्रत्येक औषधि जो जीवन पर क्रिया करती है जीवनीशक्ति को कम या अधिक विकृत कर देती है और इस प्रकार व्यक्ति के स्वास्थ्य में थोड़े या अधिक समय के लिए परिवर्तन पैदा कर देती है। इसे प्राथमिक क्रिया कहा जाता है। यद्यपि ऐसा औषधि और जीवनीशक्ति दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से होता है फिर भी ऐसा मुख्यत: औषधि की शक्ति द्वारा होता ही है। इसकी क्रिया के प्रति जीवनीशक्ति अपनी ही शक्ति का विरोध करने का प्रयत्न करती है। यह अवरोधी क्रिया जीवनीशक्ति का गुण है, वास्तव में जीवन-रक्षक शक्ति की स्वचालित क्रिया है, जिसे द्वितीयक क्रिया या प्रतिकारी क्रिया का नाम दिया गया है।''

तात्पर्य यह है कि कोई भी औषधि या अन्य पदार्थ जो स्वास्थ्य पर थोड़े या अधिक समय के लिए प्रभाव डाल कर स्वास्थ्य में थोड़े या अधिक समय के लिए परिवर्तन पैदा कर देता है इस परिवर्तन को उस औषधि या पदार्थ की प्राथमिक क्रिया कहा जाता है। इस क्रिया से वास्तव में जीवनीशक्ति ही प्रभावित होती है अत: यह प्रभाव उक्त पदार्थ और जीवनीशक्ति दोनों के संयुक्त प्रभाव के कारण होता है फिर भी ऐसा खासतौर से औषधीय शक्ति के कारण ही होता है। यह परिवर्तन क्योंकि व्यक्ति की जीवनीशक्ति में होता है और इसका प्रतिकार करने का प्रयास स्वयं जीवनीशक्ति ही करती है जोकि जीवनीशक्ति का अपना गुण है और जीवन-रक्षण की स्वचालित क्रिया है अत: परिणाम स्वरूप जो बाद की प्रतिक्रिया होती है उसे द्वितीयक क्रिया नाम दिया गया है।

Dr. S. K. Mangain Email: drmangain@gmail.com

62वें अनुच्छेद में वे कहते है कि शामक या विषम चिकित्सा के जो घातक परिणाम होते हैं उनके विपरीत होम्योपैथिक चिकित्सा से मिलने वाले परिणाम निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित हैं जो कि अनेकों अवलोकनों पर आधारित हैं जिन्हें मुझ से पहले किसी ने नहीं समझा था, यद्यपि वे बहुत अधिक सुस्पष्ट और बहुत अधिक प्रकट हैं और आरोग्य कला के लिए असीमितरूप से महत्वपूर्ण हैं।

63वें अनुच्छेद में परिभाषित प्राथमिक और द्वितीयक क्रियाओं का स्पष्टिकरण 61वें अनुच्छेद के विवरण में दे दिया गया है।

64वें अनुच्छेद में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि जीवनीशक्ति पर औषधि की क्रिया से उत्पन्न कृत्रिम प्रभाव के प्रतिरोध में जीवनीशक्ति पुनः अधिक शक्ति के साथ जाग उठती है और उक्त कृत्रिम प्रभाव को समाप्त करके पुनः स्वास्थ्य को सामान्य करने का प्रयास करती है (द्वितीयक क्रिया, आरोग्यकारक क्रिया)।

65वें अनुच्छेद में उन्होंने आम जीवन की अनेक घटनाओ के उदाहरणों द्वारा प्राथमिक और द्वितीयक क्रियाओं का अन्तर समझाया है यथा, यदि एक हाथ को गरम पानी में भिगोएँ तो शुरु में यह दूसरे हाथ से अधिक गरम अनुभव होगा परन्तु शीघ्र ही दूसरे हाथ की अपेक्षा अधिक ठण्डा अनुभव होने लगेगा इत्यादि विभिन्न उदाहरण। ऐसा हमेशा होता है, औषधि बड़ी, भौतिक मात्रा में स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य में भारी परिवर्तन कर देती है, जैसा कि देखा गया है कि द्वितीयक क्रिया में हमारी जीवनीशक्ति प्राथमिक क्रिया के एकदम विपरीत प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है।

66वें अनुच्छेद में प्राथमिक और द्वितीयक क्रियाओं के स्पष्टिकरण के बाद महर्षि हैनिमैन ने स्पष्ट किया कि होम्योपैथी की अति सूक्ष्म मात्राओं से रोगकारकों द्वारा स्वस्थ शरीर पर स्पष्ट विरोधी द्वितीयक क्रिया के प्रभाव को आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। प्रत्येक औषधि की क्षुद्र मात्रा निश्चय ही प्राथमिक क्रिया करती है जिसे बहुत सावधान अवलोकनकर्ता ही अनुभव कर पाता है; परन्तु जीवित शरीर इसके विपरीत इतनी प्रतिक्रिया (द्वितीयक क्रिया) करता है जितनी सामान्य स्वास्थ्य की प्रस्थापना के लिए आवश्यक होती है।

Dr S. K. Mamgain Email: drmamgain@gmail.com

67वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि होम्योपैथिक चिकित्सा के अन्तर्गत जो लाभदायक क्रिया होती है वह स्वत: अपने आप को हमारे समक्ष स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करती है और इस बात का स्पष्टिकरण करती है कि प्रकृति और अनुभव में प्राप्त ये तथ्य अकाट्य हैं; जबकि दूसरी ओर वे रोगों की विपरीत क्रियाकारी औषधियों द्वारा विषम चिकित्सा और शामक चिकित्सा की कुटिलता को ही प्रदर्शित करती हैं।

यहाँ महर्षि हैनिमैन ने एक पादटिप्पणी में कहा है कि अत्यधिक आग्रही (urgent) मामलों में जहाँ स्वस्थ व्यक्ति के साथ अचानक दुर्घटना होने पर उदाहरण के लिए आकाशीय बिजली से बेहोशी और श्वासावरोध हो जाना, दम घुट जाना, ठण्ड से जम जाना, पानी में डूब जाना इत्यादि के कारण जीवन संकट में हो और मृत्यु आसन्न हो और उस स्थिति में होम्योपैथिक औषधि की क्रिया के लिए, घण्टों की बात तो छोड़िए कुछ मिनट का भी समय प्रतीक्षा करने का नहीं होता है वहाँ ऐसे सभी मामलों में बिजली के हल्के झटके, तेज कॉफी का एनीमा, उद्दीपक गंध, गरम सेक आदि से संवेदनशीलता और चेतना (भौतिक जीवन) को जगाने के लिए प्राथमिक चिकित्सा के रूप में प्रशामक चिकित्सा न्यायसंगत और स्वीकार योग्य है। ऐसी दशा में जब उद्दीपन हो जाता है तो सभी अंग पहले की तरह अपनी सामान्य क्रिया करने लगते हैं, क्योंकि ऐसे में दूर करने के लिए कोई रोग तो था नहीं बल्कि जीवनीशक्ति में केवल अवरोध और अवदमन ही था। इस श्रेणी में अचानक विषाक्तता के लिए अनेक प्रतिविष (antidotes) विद्यमान हैं।

किसी रोगी मामले में यदि कुछ औषधीय लक्षण रोग के अप्रमुख और गौण लक्षणों के विषम भी हों तो भी यदि रोग के दूसरे सशक्त, चारित्रिक और विशिष्ट लक्षण औषधि के लक्षणों से मेल खाते हों तो उक्त औषधि से वे समान लक्षण समाप्त हो जाते हैं और गौण विषम लक्षण औषधि की क्रिया समाप्त होने के बाद आरोग्य की राह में कोंई रुकावट पैदा किए बिना स्वत: समाप्त हो जाते हैं।

68वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि:

''होम्योपैथिक आरोग्य में हमें देखने को मिलता है कि औषधि की असामान्य छोटी मात्राएँ ही, जिनकी इस विधि में आवश्यकता पड़ती है, लक्षणों की समानता के आधार पर समान प्रकृति के रोग को जीवनीशक्ति की अनुभूतियों से दूर करने के लिए काफी होती हैं, रोग दूर होने के बाद शरीर में औषधीय रोग का कुछ अंश निश्चित रूप से शेष रहता है, लेकिन औषधि की मात्रा असामान्य रूप से अल्प होने के कारण इतनी अस्थिर और हल्की होती है कि स्वयं ही बहुत तेजी से गायब हो

Dr. S. K. Mangain: Email: drmangain@gmail.com

जाती है, जीवनीशक्ति को स्वास्थ्य की इस कृत्रिम विकृति को दूर करने के लिए कोई प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है – अत: होम्योपैथिक औषधि की अत्यल्प मात्रा से ही पूर्व रोगकारक विकृति दूर हो जाने के बाद जीवनीशक्ति को कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता।''

तात्पर्य यह है कि रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाली होम्योपैथिक औषधि की अत्यल्प मात्राओं से ही सम्पूर्ण रोग निरोग हो जाता है और यदि औषधि की मात्राओं का कोई प्रभाव जीवनीशक्ति पर शेष रह भी गया हो तो औषधि की मात्रा अत्यल्प और अस्थिर होने के कारण यह प्रभाव स्वत: ही समाप्त हो जाता है और रोग की अनुभूतियों से स्वतन्त्र हो कर जीवनीशक्ति में पुन: स्वस्थ जीवन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अर्थात् सामान्य स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है।

महर्षि हैनिमैन एक महान चिंतक एवं उच्च कोटि के अन्वेषक और विश्लेषक थे साथ ही उन्होंने अपने समय की एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में विशेष योग्यता के साथ एम0 डी0 की डिग्री प्राप्त की थी। अत: एलोपैथिक चिकित्सा पर उनकी टिप्पणियाँ बहुत महत्वपूर्ण और सार्थक हैं। यद्यपि उनके समय के चिकित्सा के तरीकों में आज बहुत भिन्नता आ गयी है लेकिन चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। आज भी लगभग उसी तरह विषम चिकित्सा और प्रशामक औषधियों का भौतिक मात्राओं में पूरी तरह उपयोग होता है। नित्य नई नई तथाकथित चमत्कारिक औषधियों का आविष्कार होता है और जब रोगियों पर उनके कुप्रभाव सामने आते हैं तो वे प्राय: अनुपलब्ध हो जाती हैं। होम्योपैथिक औषधियों की तरह एलोपैथी की एक भी दवा कभी चिरस्थायी नहीं हो पायी है।

69वें अनुच्छेद में उन्होंने तर्क पूर्ण उदाहरणों के साथ यही विवेचन किया है कि होम्योपैथिक औषधियों के विपरीत विषम चिकित्सा और प्रशामक औषधियों से रोग निरोग होने के बजाए इन एलोपैथिक दवाओं से और अधिक वृद्धि को क्यों प्राप्त हो जाता है, निरोग क्यों नहीं होता।

70वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''अब तक जो कुछ भी सामने आया है उससे हम यह निष्कर्ष निकालने में असफल नहीं हो सकते:

कि रोगों में सब कुछ जो भी विकृत किस्म का है जिसे चिकित्सक आरोग्य करना चाहता है वह पूरी तरह रोगी के कष्ट और उसके स्वास्थ्य में अनुभव योग्य परिवर्तन,

Dr. S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

एक शब्द में पूरी तरह समग्र लक्षण, मात्र होते हैं जिनके माध्यम से रोग इन परिवर्तनों से राहत के लिए माँग करता है; जबकि दूसरी ओर इसके लिए कोई भी आन्तरिक कारण निर्धारित करना, प्रत्येक गुप्त गुण या काल्पनिक भौतिक विकृति सिद्धान्त प्रस्तुत करना, निराधार स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं है;

कि स्वास्थ्य की दशा में यह विकृति, जिसे हम रोग कहते हैं, इसको स्वास्थ्य की दशा में केवल उन औषधियों के द्वारा, जिनकी आरोग्यकारक शक्ति परिणामस्वरूप पूरी तरह मनुष्य के स्वास्थ्य में तत्समान परिवर्तन कर सकती हो, कहने का तात्पर्य यह है कि जो औषधि मनुष्य के स्वास्थ्य में रोग विशेष के लक्षणों के समान लक्षण उद्दीपित (stimulate) कर सके, जिन्हें स्पष्ट रूप से स्वस्थ शरीर पर शुद्ध परीक्षणों द्वारा जाना गया हो, दूसरी क्रान्ति पैदा करके ही स्वास्थ्य में बदला जा सकता है;

कि सब प्रकार के अनुभव के अनुसार, प्राकृतिक रोग ऐसी औषधियों से कभी भी आरोग्य नहीं किया जा सकता जो स्वस्थ व्यक्ति में असम्बद्ध रोग की दशा (विषम रोग लक्षण) आरोग्य किए जाने वाले रोग लक्षणों से भिन्न रोग लक्षण उत्पन्न करने की शक्ति रखती हो (अतः एलोपैथिक विधि से कभी भी नहीं); और कि प्रकृति में भी दूसरे विषम रोग के हो जाने से भी स्वाभाविक रोग कभी भी दूर या आरोग्य नहीं हो सकता भले ही नया वाला रोग कितना भी सशक्त क्यों न हो;

कि, इसके अतिरिक्त, सभी अनुभवों से सिद्ध हो गया है कि जिन औषधियों की प्रवणता स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में जिस अकेले लक्षण को आरोग्य करना है उसका विपरीत कृत्रिम रोग लक्षण उत्पन्न करने की हो उससें लम्बी अवधि से चला आ रहा रोग कभी भी आरोग्य नहीं होगा, लेकिन क्षणिक राहत ही मिलेगी, बाद में इसमें हमेशा रोग वृद्धि होगी, थोड़े शब्दों में यह विषम और शामक चिकित्सा गम्भीर किस्म के लम्बे समय से चले आ रहे रोगों में पूरी तरह निष्प्रभावी होती है;

कि तथापि, चिकित्सा का तीसरा और एकमात्र सम्भव तरीका (होम्योपैथिक), जिसमें प्राकृतिक रोग के समग्र लक्षणों के आधार पर कोई एक ऐसी औषधि जो स्वस्थ व्यक्ति में तत्समान सर्वाधिक लक्षण उत्पन्न करने में समर्थ हो, उचित मात्रा में दी जाए, तो यही एकमात्र उपचार का उपाय है, जिससे रोगों को दूर किया जा सकता है, रोग जो कि, जीवनीशक्ति के गतिज (dynamic) विकृति कारक क्षोभक (irritatants) होते हैं, और इस प्रकार आसानी से, पूरी तरह और स्थायी रूप से समाप्त किया जा सकता है, (उन्होंने छठे संस्करण इस प्रकार कहा है – ऐसा जीवनीशक्ति की अनुभूतियों में होम्योपैथिक औषधि से कुछ शक्तिशाली समान क्षोभ उत्पन्न करके किया जाता है) – इस प्रक्रिया के लिए हमारे पास स्वयं मुक्त प्रकृति

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangairi@gmail.com

का उदाहरण है, जब किसी पुराने रोग के समान कोई नया रोग हो जाता है, जिससे पूर्व रोग तेजी से हमेशा के लिए समाप्त हो कर आरोग्य हो जाता है।''

इस 70वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन तथ्यपरक अन्वेषणों, गम्भीर अवलोकनों और तर्कसंगत अनुभव के आधार पर इस यह निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी भी रोग को आरोग्य करने के लिए चिकित्सक को रोग के कारण रोगी के स्वास्थ्य में अनुभव योग्य पैदा हुए नैतिक, मानसिक और शारीरिक परिवर्तनों को अर्थात् रोग के कारण उत्पन्न समस्त लक्षणों को तत्समान लक्षण उत्पन्न कर सकने वाली उपयुक्त औषधि के द्वारा सहजता से, सौम्यता के साथ अपेक्षाकृत द्रुत गति से हमेशा के लिए समाप्त करने की जरूरत होती है ताकि सामान्य स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाए। उन्होंने पाश्चात्य देशों में प्रचलित तत्कालीन चिकित्सा प्रणाली ऐलोपैथी द्वारा प्रयुक्त विषम चिकित्सा तथा प्रशामक चिकित्सा का विवेचन करते हुए सिद्ध किया कि उक्त चिकित्सा से थोड़े समय के लिए रोगी को राहत अवश्य मिलती है लेकिन बाद में रोग और अधिक उग्रता के साथ बढ़ जाता है, अथवा रोगी को राहत पहुँचाने के लिए दवा की मात्रा लगातार बढ़ाते जाना पड़ता है। आज भी उनका निष्कर्ष उतना ही सत्य है। अनेक मामलों में तो उक्त चिकित्सा के परिणाम मूल रोग की अपेक्षा अत्यधिक कष्टकारी होते हैं यहाँ तक कि रोगी का जीवन ही संकट में पड़ जाता है। इसलिए अन्ततः उन्होंने प्रकृति के द्वारा आरोग्य के सनातन नियम का उदाहरण देकर सिद्ध किया कि रोग और औषधि के लक्षणों की समानता के आधार पर अर्थात् रोगी की जीवनीशक्ति में प्राकृतिक रोग के क्षोभ के समान किन्तु शक्ति में थोड़ा अधिक कृत्रिम क्षोभ समान लक्षणों वाली औषधि की उपयुक्त मात्रा में उपयोग द्वारा उत्पन्न करके अर्थात् एकमात्र होम्योपैथिक के सिद्धान्त पर चिकित्सा करके ही सहज और स्थायी आरोग्य की पुनर्स्थापना की जा सकती है।

71वें अनुच्छेद में कहा है कि:

''अब इस बात में कोई शंका नहीं रही है कि मानवता के रोग केवल कुछ विशेष लक्षणों का समूह भर होते हैं और केवल ऐसे औषधीय पदार्थों से समाप्त करके स्वास्थ्य में बदले जा सकते हैं, जो स्वस्थ शरीर में कृत्रिम रूप से तत्समान रोग लक्षण उत्पन्न करने में समर्थ हों (और यही सभी वास्तविक आरोग्यों की प्रक्रिया होती है), अतः आरोग्य करने की क्रिया निम्नलिखित तीन बिन्दुओं में समाविष्ट है:

1. चिकित्सक किस प्रकार निश्चय करे कि रोग को आरोग्य करने के लिए क्या जानना आवश्यक है?

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangair@gmail.com

2. प्राकृतिक रोग को आरोग्य करने के लिए औषधियों की रोग कारक शक्तियों को जानने के लिए किन यन्त्रों को अपनाए?
3. प्राकृतिक रोग को आरोग्य करने के लिए इन कृत्रिम रोग कारकों (औषधियों) का उपयोग करने के लिए सबसे उपयुक्त तरीका क्या हो?''

यह अनुच्छेद स्वत: स्पष्ट है।

72वें अनुच्छेद में अब उन्होंने पूर्वोक्त प्रथम बिन्दु का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया है कि प्रथम बिन्दु के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिचयात्मक विचार होगा। जो रोग जीवनीशक्ति को तेजी के साथ असामान्य रूप से विकृत करते हैं ओर जिनकी प्रवणता कमोवेश शीघ्रता के साथ हमेशा सीमित समय में समाप्त हो जाने की होती है - इनको एक्यूट रोग कहा जाता है - या फिर वे रोग होते हैं जो अक्सर अव्यक्त रूप से शुरु हो कर प्रत्येक जीवित शरीर को अपने ढंग से डायनामिक रूप से विकृत करता है और शरीर के स्वास्थ्य को धीरे धीरे कुछ इस प्रकार बिगाड़ देता है कि स्वस्फूर्त जीवनीशक्ति जिसका कार्य स्वास्थ्य का रक्षण करना होता है, शुरु में और रोग वृद्धि के दौरान इसका विरोध तो करती है, परन्तु अधूरे, अनुपयुक्त और निरर्थक प्रतिरोध द्वारा और इस प्रकार वह उनको दूर करने में असमर्थ रहती है अत: स्वयं अधिकाधिक असामान्य रूप से विकृत होते हुए असहाय होकर भुगतती रहती है जिसके कारण अन्तत: शरीर नष्ट हो जाता है, ये क्रॉनिक रोग कहे जाते हैं। ये रोग किसी क्रॉनिक धातुदोष (मियेज्म) के संक्रमण के कारण होते हैं।

73वें अनुच्छेद में उन्होंने एक्यूट रोगों की उत्पत्ति और प्रकार आदि का स्पष्टीकरण का विवेचन किया है:

''जहाँ तक एक्यूट रोगों का सम्बन्ध है, या तो इस किस्म के होते हैं जो मानवों पर व्यक्तिगत रूप से हानिकरक उत्तेजक प्रभाव के कारण, जिनके लिए वे विशेष करके अनावृत्त (expose) हो जाते हैं, आक्रमण करते हैं। भोजन में अतिरेक अथवा भोजन की बहुत कमी, अत्यधिक श्रम के प्रभाव, सर्दी लग जाना, अधिक खा लेना, दुर्व्यसन करना, अधिक जोर लगाना, ... इत्यादि, या शारीरिक क्षोभ (irritations), मनोवेग, और इसी प्रकार के अन्य प्रभाव ऐसे एक्यूट ज्वर आदि कष्टों के उत्तेजक कारण होते हैं; तथापि वे वास्तव में सामान्यत: प्रसुप्त सोरा के क्षणिक विस्फोट होते हैं, जो कि एक्यूट रोगों में यदि वे बहुत उग्र न हों और जल्दी ही समाप्त कर दिए जाएँ तो वे तुरत ही अपनी प्रसुप्त अवस्था में चले जाते हैं।

Dr S.K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

अथवा वे इस प्रकार के होते हैं जो एक ही समय में मौसम सम्बन्धी और भौतिक तथा अन्य हानिकारकों आदि के कारण से अनेक लोगों को यहाँ वहाँ (sporadically) आक्रान्त कर देते हैं, जिनसे एक समय में केवल वे लोग ही रोगाक्रान्त होते हैं जिन लागों की इन कारणों से प्रभावित होने की प्रवणता होती है। इन्हीं से सम्बद्ध वे रोग हैं जिनसे एक ही कारण (संक्रामकरूप) से बहुत समान कष्टों से बहुत से लोग आक्रान्त हो जाते हैं और जब ये रोग घनी बस्तियों मे हो जाते हैं तब ये सामान्यरूप से संक्रामक बन जाते है। हर विशिष्ट प्रकार के मामले में इनसे ज्वर हो जाते है, क्योंकि इन रोगों का मूल समान होने से सभी प्रभावितों में ये एक समान रोग प्रक्रिया स्थापित करते हैं, इन्हें जब इन्हीं के भरोसे छोड़ दें तब ये सीमित समय में आरोग्य या मृत्यु में परिसमाप्त हो जाते हैं। अक्सर युद्ध, बाढ़, अकाल आदि कारण इन रोगों के उत्पादक या उत्तेजक कारण होते हैं - कभी कभी वे विशिष्ट एक्यूट धातुदोष होते है जिनकी एक ही प्रकार से पुनरावृत्ति होती है (अतः किसी पारम्परिक नाम से जाने जाते हैं), वे या तो लोगों को जीवन में एक बार आक्रान्त करते हैं यथा चेचक, खसरा, हूपिंग खाँसी, मम्प्स ... इत्यादि या वे जो बार बार एक ही तरीके से होते हैं जैसे प्लेग, समुद्री किनारे का यलो ज्वर, हैजा, इत्यादि।''

रोगों के निश्चित नामों के संदर्भ में महर्षि हैनिमैन नें एक टिप्पणी दी है - होम्योपैथिक चिकित्सक पुरातन पद्धति के चिकित्सकों की तरह काल्पनिक निष्कर्षों की परिकल्पना नहीं करते (जिन्होंने ऐसे ज्वरों के कुछ नाम निश्चित कर दिए हैं, जैसे कि इनके अतिरिक्त सामर्थ्यवान प्रकृति अन्य उत्पन्न करने की हिम्मत नहीं कर सकती, ताकि उनकी किसी निर्धारित तरीके से चिकित्सा की जा सके) और वे गोल (goal) ज्वर, बिलियस ज्वर, टाफस ज्वर, प्युट्रिड ज्वर, नर्वस ज्वर या म्यूकस ज्वर आदि नामों का मान्यता नहीं देते, बल्कि उनकी विशिष्टताओं के आधार पर चिकित्सा करते हैं।

तात्पर्य यह है कि होम्योपैथिक चिकित्सक विभिन्न रोगों के नामकरण करके किसी निर्धारित तरीके से चिकित्सा न करके उन रोगों के विशिष्ट चरित्र अर्थात् उनके सम्पूर्ण लक्षणों के आधार पर चिकित्सा करते हैं।

इसी अनुच्छेद की दूसरी पाद टिप्पणी में वे लिखते हैं कि - 1801 के बाद एक प्रकार का पुरपुरा मिलियारिस रोग जो पश्चिम से आया था, जिसे चिकित्सकों ने बिना समझे कि ये बिल्कुल भिन्न लक्षण प्रदर्शित करते हैं स्कालेट ज्वर के साथ मिला दिया, जबकि पहले वाले की प्रतिषेधक और आरोग्यकारक औषधि एकोनाइट है और दूसरे वाले की बेलेडोना, औ पहले वाला रोग मात्र यत्र-तत्र होने वाला (sporadic) रोग है और

Dr. S.K. Mangain Email: drmangain@gmail.com

दूसरा वाला निरपवाद रूप से संक्रामक (epidemic) रोग है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद के वर्षों में दोनों रोगों के आपस में मिल जाने से एक विशेष प्रकार का इरप्टिव ज्वर उत्पन्न हो गया जिसके लिए दोनों औषधियों में से कोई सी भी अकेली औषधि बिलकुल आरोग्यकर होम्योपैथिक नहीं रही। आज के संदर्भ में जब अनेक प्रकार की संश्लेषित औषधियों का उपयोग केवल पैथोलॉजी के आधार पर बिना लक्षणों पर ध्यान दिए किया जाता है, तो इस प्रकार के भिन्न लक्षण वाले रोगों के घालमेल का क्या परिणाम होगा? इसके लिए तर्क तो कुछ भी दिया जा सकता है जो वास्तव में एक कुतर्क ही होगा।

74वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन नें 73वें अनुच्छेद में वर्णित एक्यूट रोगों में पुरातन पद्धति के चिकित्सकों द्वारा उग्र चिकित्सा के परिणाम स्वरूप उत्पन्न घालमेल का स्पष्टीकरण दिया है, उसी प्रकार उन्होने दु:ख के साथ! क्रॉनिक रोगों में उस काल की औषधियों के लम्बे समय तक बड़ी और लगातार बढ़ती मात्राओं के दुरुपयोग के माध्यम से उत्पन्न कृत्रिम रोगों के परिणामों का वर्णन करते हुए कहा है कि कभी कभी इससे जीवनीशक्ति एक क्रूर सीमा तक कमजोर हो जाती है, कभी कभी यदि मृत्यु न हो जाए तो धीरे धीरे असामान्यरूप से (प्रत्येक पदार्थ से विशिष्ट प्रकार से) कुछ इस प्रकार विकृत हो जाती है कि इन शत्रुतापूर्ण और घातक आक्रमणों के विपरीत जीवन बचाए रखने के लिए जीवनीशक्ति को शरीर में एक आन्दोलन शुरु कर देना पड़ जाता है; जिसके कारण कुछ अंग अपनी संवेदशीलता और उत्तेजनशीलता से वंचित हो जाते हैं या फिर वे अत्यधिक उत्तेजित होकर उनमे फैलाव या सिकुड़ाव आ जाता है; या वे ढीले पड़ जाते हैं अथवा उनमें कड़ापन आ जाता है, यहाँ तक कि कुछ अंग पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं और यहाँ वहाँ आन्तरिक या बाह्य दोषपूर्ण शारीरिक परिवर्तन पैदा हो जाते हैं (शरीर के भीतरी या बाहरी अंग अपंग हो जाते हैं)।

इस अनुच्छेद के अंत में आर्गेनन के छठवें संस्करण में रक्ताधिक्य (plethora) की खून निकाल कर चिकित्सा के सम्बन्ध में एक लम्बी टिप्पणी दी है क्योंकि उस काल में नस काट कर या जोंक आदि के द्वारा रोगी का खून निकालने की प्रथा थी परन्तु आज उसके विपरीत रोगी को दूसरे व्यक्ति का खून चढ़ा कर या आवश्यकतानुसार अन्य तरल चढ़ा कर चिकित्सा की जाती है और अनेक बार जाँच की प्रक्रिया में कहीं भी जरा सी मानवीय चूक रोगी के लिए घातक सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार प्रशामक औषधियों एवं विषम औषधियों के लगातार बढ़ाई जाने वाली मात्राओं के उपयोग से रोगियों को तात्कालिक राहत अवश्य मिलती है परन्तु रोगी निरोग नहीं हो पाते हैं बल्कि ऐसी

Dr. G. K. Mangalam Email: drmangalam@gmail.com

औषधियों के लम्बे समय तक उपयोग से अनेक प्रकार के कुप्रभाव (side effects) और कष्टकारी जटिलताएँ रोगियों को अवश्य भुगतने पड़ते हैं। नए युग की ऐलोपैथिक चिकित्सा में एक और प्रथा चली हुई है कि अनेक क्रॉनिक रोगों में चिकित्सक पहले दिन ही रोगी को दी जाने वाली औषधि के लिए निर्देशित कर देते हैं कि उसको यह औषधि जीवनभर खाते रहना पड़ेगा, अर्थात् रोगी जीवन में अब कभी निरोग नहीं हो सकेगा। इसके विपरीत अनुभव में पाया गया है कि होम्योपैथिक सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा से उक्त प्रकार के क्रॉनिक रोगों से पीड़ित अनेक रोगी थोड़े समय के बाद निरोग होकर सामान्य जीवन बिता रहे हैं।

75वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने ऐलोपैथिक चिकित्सा के दुष्परिणामों पर दु:ख प्रकट करते हुए कहा है कि:

''मानव स्वास्थ्य पर ऐलोपैथिक (विशेष करके आधुनिक युग की) आरोग्य न करने वाली चिकित्सा कला का इस प्रकार का सभी क्रॉनिक रोगों पर अतिक्रमण अत्यधिक खेदजनक है, अत्यधिक असाध्य और मुझे यह कहते हुए खेद है कि इन रोगों को निरोग करने किए जब वे विचारणीय सीमा तक बढ़ चुके हों किन्हीं (होम्योपैथिक) औषधियों का खोज पाना स्पष्टत: असम्भव हो जाता है।''

इस अनुच्छेद के अन्त में उन्होंने पादटिप्पणी में कहा है कि इस प्रकार की चिकित्सा से यदि रोगी की मृत्यु हो जाती है तो चिकित्सक की शोकाकुल सम्बन्धियों को पोस्टमार्टम के समय यह कहने की आदत आदत होती है कि यह आन्तरिक विकृतियाँ ही इसके रोग के असाध्य होने का कारण रही हैं, जबकि वे उसी की छद्म चिकित्सा का परिणाम होती हैं। वे छलयुक्त अभिलेख, पैथोलॉजिकल एनॉटमी पर उदाहरण सहित पुस्तकें इस प्रकार के शोचनीय गोलमाल को प्रदर्शित करते हैं।

यहाँ पर मैं (डा0 ममगाई) पुन: याद दिलाना चाहूँगा कि महर्षि हैनिमैन वास्तव में बहुत दूरदर्शी व्यक्ति थे। वर्तमान युग में उनके युग की अपेक्षा नित्य नई नई औषधियाँ बड़ी चमक के साथ ऐलोपैथिक चिकित्सा के आकाश पर उभरती हैं, यद्यपि वे निम्न जीवों पर क्लीनिकल परीक्षणों के बाद मानव रोगियों पर उपयोग की जाती हैं और चिकित्सक रोगियों को जीवन भर अनेक क्रॉनिक रोगों में क्लीनिकल आधार पर उनके उपयोग की सलाह देते हैं, फिर भी मनुष्यों पर उपयोग से जब उनके कुप्रभाव प्रकट हाने लगते हैं तो वे सुबह के तारे की तरह बाजार से गायब हो जाती हैं। इसका विशेष कारण है औषधियों का मात्र क्लीनिकल आधार पर उपयोग, इस तथ्य पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है कि प्रत्येक मनुष्य का अपना अपना व्यक्तित्व होता है जो एक दूसरे

Dr. G. K. Mamgain, Email: drmangain@gmail.com

से बहुत भिन्न होता है, हर व्यक्ति की अपनी मानसिकता होती है, कष्ट की भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ होती हैं, रोग के घटने बढ़ने की परिस्थितियाँ अलग अलग होती है, हर रोगी की इच्छाएँ एवं अनिच्छाएँ भिन्न होती हैं, उसी प्रकार हर व्यक्ति एक दूसरे से बहुत भिन्न हो सकता है भले ही क्लीनिकल रोग एक ही हो, अत: एक ही औषधि सबके लिए एक समान लाभकारी कैसे हो सकती है? होम्योपैथी में इस व्यक्ति वैशिष्ट्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है रोगी के भी और औषधि के भी, इसीलिए होम्योपैथिक चिकित्सा में रोग का प्रकटत: एक ही नाम होने पर भी दो रोगियों की अलग औषधि होती है। यही कारण है कि विषम चिकित्सा की अपेक्षा होम्योपैथिक चिकित्सा से रोगी निरोग हो जाते हैं।

76वें अनुच्छेद में वे कहते हैं:

''कृपालु प्रभु ने हमें केवल प्राकृतिक रोगों में राहत पहुँचाने के लिए होम्योपैथी के रूप में साधन उपलब्ध कराया है, लेकिन मिथ्या (false) कला की दु:खदायी औषधियों से चिकित्सा के कई वर्षों तक बार-बार क्रूर उपयोग से मानव शरीर के वे बाहरी और भीतरी अंगों को विध्वंस और विकृत कर देते हैं जिनका स्वयं जीवनीशक्ति द्वारा उपचार होना चाहिए (कोई क्रॉनिक धातुदोष नेपथ्य में छुपा हो तो उसके उन्मूलन के लिए उपयुक्त सहायता देनी होगी), यदि जीवनीशक्ति इस प्रकार के अहितकर कर्म से बहुत अधिक कमजोर न हो गई हो तो भी बिना किसी रुकावट आए इस भारी भरकम कार्य में अनेक वर्ष लग सकते हैं। ऐसी अनेक असामान्य दशाओं को जो आरोग्य न कर सकने वाली एलोपैथिक चिकित्सा कला से अक्सर उत्पन्न हो जाती हैं मनुष्य की आरोग्य कला से कभी भी निरोग नहीं हो सकती है।''

इस 76वें अनुच्छेद का तात्पर्य यह है कि एलोपैथिक चिकित्सा की विषम औषधियों की बड़ी मात्राओं के बार बार और लम्बे समय तक उपयोग से रोगी के बाहरी और भीतरी अंग अत्यधिक सीमा तक विकृत हो जाते हैं यदि रोगी के शरीर में कोई धातुदोष छुप कर कार्य रहा हो और उसके उन्मूलन का समुचित उपाय कर दिया जाए और बीच में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो तो जीवनीशक्ति स्वयं उक्त विकृति को दूर करने का प्रयास करती है जिसमें वर्षों का समय लग सकता है। यदि जीवनीशक्ति ऐसी अनुपयुक्त चिकित्सा से अत्यधिक कमजोर (क्षीण)हो चुकी हो तो मनुष्य द्वारा आविष्कृत किसी भी चिकित्सा से पुन: सामान्य नहीं हो सकती। जबकि प्राकृतिक रोगों से मुक्ति दिलाने के लिए दयानिधि प्रभु ने मनुष्य को होम्योपैथी का उपहार स्वयं दे दिया है।

Dr. S.K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

77वें अनुच्छेद में बतलाया है कि किस प्रकार के रोगों को क्रॉनिक रोगों की संज्ञा नहीं दी जा सकती:

''जो रोग टालने लायक हानिकारक प्रभावों के प्रति लगातार अनावृत्त रहने से, हानिकारक पेयों या पदार्थों के सेवन की आदत हो जाने से, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों के आदी हो जाने से, लम्बे समय तक जीवन को पोषित करने वाले पदार्थों से वंचित रहने से, अस्वास्थ्यकर स्थानों में रहने से, विशेषरूप से दलदली इलाकों मे, तहखानों या दूसरे तंग निवासों में, व्यायाम या ताजी हवा से वंचित रहने से, शरीर और मस्तिष्क के अत्यधिक श्रम के कारण स्वास्थ्य खराब कर लेने से, निरन्तर चिन्ताओं से घिरे रहने से, ... इत्यादि कारणों से हो जाते हैं उनको क्रॉनिक रोग नहीं कहा जा सकता।''

इस 77वें अनुच्छेद का तात्पर्य तो स्वयं ही स्पष्ट है कि जो रोग अस्वास्थ्यकर स्थानों में रहने से, असंयत जीवन यापन करने से, बुरी आदतों, कुपोषण और व्यायाम तथा खुली हवा की कमी आदि कारणों से होते है उनको क्रॉनिक रोग नहीं कहा जा सकता।

78वें अनुच्छेद में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वास्तविक क्रॉनिक रोग कौन से होते हैं:

''वास्तविक प्राकृतिक क्रॉनिक रोग वे होते हैं जो किसी क्रॉनिक धातुदोष (मिएज्म) के कारण उत्पन्न होते हैं, जिन्हें उनकी उपयुक्त औषधियों के उपयोग से नियन्त्रित किए बिना, उन्हीं के भरोसे छोड़ दें तो वे श्रेष्ठ मानसिक और शारीरिक नियमों का पालन करने के बावजूद भी बद से बदतर होते हुए बढ़ते ही जाते हैं और सर्वदा बढ़ते हुए कष्टों के साथ रोगी को उसके जीवन के अन्त तक संतप्त करते हैं। (चिकित्सीय कदाचार से उत्पन्न रोगों को छोड़ कर (अनुच्छेद 74)) ये रोग बहुत प्रकार के होते हैं और मानव जाति के लिए अत्यधिक पीड़ादायक होते हैं, क्योंकि अत्यधिक सुगठित शरीर, श्रेष्ठ एवं नियमित जीवन यापन का तरीका और अत्यधिक प्रबल जीवनीशक्ति उनके उन्मूलन के लिए अपर्याप्त होते हैं।''

इस अनुच्छेद में उन्होंने ऑर्गेनन के छठे संस्करण में निम्नलिखित टिप्पणी जोड़ी:

''जीवन के बढ़ते हुए यौवनकाल में तथा जब मासिक काल शुरु होता है, संयमित जीवन यापन के साथ ये क्रॉनिक रोग वर्षों तक प्रच्छन्न रहते हैं। जो व्यक्ति इन धातुदोषों से प्रभावित होते हैं वे रिश्तेदारों और परिचितों को पूर्ण स्वस्थ दिखलाई पड़ते हैं और जो रोग संक्रमण से अथवा वशांनुगत रूप में मिले थे पूरी तरह लुप्त हो गए लगते हैं। परन्तु बाद के वर्षों में जीवन की कठिनाईयों और विपरीत

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

परिस्थितियों के कारण वे पुनः निश्चितरूप से नए सिरे से शुरु हो जाते हैं और बहुत तेजी से बढ़ कर गम्भीर चरित्र के हो जाते हैं क्योंकि तब जीवनीशक्ति निर्बलकारक आवेगों (यौनाचार), चितांओं और जिम्मेदारियों के कारण, परन्तु खासतौर से अनुपयुक्त चिकित्सा से अव्यवस्थित हो चुकी होती है।''

इस अनुच्छेद और टिप्पणी का आशय स्वतः स्पष्ट है। यह एक तथ्य है कि जब व्यक्ति युवा होता है और खान, पान एवं आचार, विचार में उपयुक्त नियम संयम का पालन करते हुए तथा खुली हवा में नियमित व्यायाम आदि के साथ स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए जीवनयापन करता है तो यदि किसी कारणवश उसे किसी क्रॉनिक धातुदोष का संक्रमण हो भी गया हो या उसे कोई वशांनुगत क्रॉनिक रोग हो तो अच्छे स्वास्थ्य के कारण वह नेपथ्य में छुपा रहता है, परन्तु जीवन संघर्ष में आयु बढ़ने के साथ साथ चिंताओं आदि के कारण जैसे ही उसे दुर्बलता घेरती है तो अनुपयुक्त चिकित्सा और दुर्बलता के कारण वह रोग पुनः प्रकट होकर तेजी के साथ बढ़ जाता है।

79वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''अभी तक सिफिलिस ही कुछ सीमा तक ज्ञात एक ऐसा धातुदोष जनित रोग है जो आरोग्य न किए जाने पर जीवन के साथ ही समाप्त होता है। साइकोसिस (कॅन्डालोमेटस रोग), को भी समान रूप से बिना औषधीय चिकित्सा किए जीवनीशक्ति स्वयं निर्मूल नहीं कर सकती; यद्यपि इसे विशेष चरित्र का क्रॉनिक रोग नहीं माना गया था, जो कि वास्तव में बिना शंका के एक क्रॉनिक रोग है, चिकित्सकों द्वारा चर्म पर इसके उद्भेदों (मस्से) को समाप्त करने के बाद कल्पना कर ली जाती थी कि रोग निरोग हो गया, परन्तु बना रहने वाला धातुदोष वैषम्य उनके अवलोकन से वंचित ही रहा।''

महर्षि हैनिमैन के समय में सिफिलिस को तो कुछ सीमा तक एक धातुदोष के रूप में मान्यता प्राप्त थी परन्तु साइकोसिस को, जिसके परिणामस्वरूप चर्म पर मस्से जैसे उद्भेद निकलते हैं, क्रॉनिक धातुदोष के रूप में मान्यता नहीं दी जाती थी; चिकित्सक उक्त उद्भेदों को चर्म पर से नष्ट कर देने भर से कल्पना कर लेते थे कि रोग समाप्त हो गया। परन्तु ऐसा न हो कर साइकोसिस भी वास्तव में एक क्रॉनिक रोग है।

80वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmamgain@gmail.com

''तथापि अभी नामित किए गए दोनों धातुदाषों से कहीं असीम और अधिक प्रमुख धातुदोष है सोरा, जबकि पहले वाले दोनों अपनी विशेष आन्तरिक धातुदोष विषमता को, पहले वाला वेनेरियल शैन्कर के द्वारा और दूसरा गोभी के फूल के आकार की विवृद्धियों (growths) के द्वारा प्रकट करते हैं, सोरा भी सम्पूर्ण आन्तरिक संक्रमण पूरा हो जाने के बाद स्वयं को चर्म पर विशिष्ट उद्‌भेद के द्वारा उजागर करता है, यह कभी असहनीय गुदगुदीयुक्त कामुक खुजली (और एक विशेष गन्ध) के साथ और कभी मात्र थोड़े से दानों (vesicles) के रूप में अपने को प्रकट करता है, यह पैशाचिक आन्तरिक धातुदोष – सोरा, अनेक, मैं कह सकता हूँ कि असंख्य दूसरे रोगों का वास्तविक मूल कारण और उत्पादक तत्त्व है, यथा स्नायविक दुर्बलता, हिस्टिीरिया, भ्रमरोग (hypochondriasis), उन्माद, विषाद, बुद्धिदौर्बल्य, पागलपन, मृगी और सब प्रकार के आक्षेपक रोग, अस्थियों की कोमलता (मेरुदण्ड प्रदाह – रिकेट्स), पार्श्वकुब्जता (scoliosis) और साइफोसिस (cyphosis), अस्थिक्षय (caries), कैन्सर, फन्गस हीमोटोड्स, नियोप्लाज्म्स, गठिया, बवासीर, पीलिया, नीलिमा (cyanosis), शोथ (dropsy), अनार्तव (amenorrhoea), पेट, नाक, फेफड़ों, मूत्राशय और गर्भाशय से रक्तस्राव, दमा, फेफड़ों के व्रण, नपुंसकता और वन्ध्यापन, अर्धकपारी (megrim), बहरापन, मोतिया, अन्धापन, मूत्रपथरी, पक्षाघात, संवेदन तन्त्र के विकार और हजारों प्रकार के दर्द, इत्यादि जो पैथोलॉजी के क्रमबद्ध कार्य की पुस्तकों में विशिष्ट और स्वतन्त्र रोगों के रूप में मिलते हैं।''

वे 80वें अनुच्छेद की एक लम्बी टिप्पणी दी है (जिसे अनुवादक ने थोड़े शब्दों में यहाँ दिया है) में कहते हैं कि ''मैंने बड़ी संख्या में क्रॉनिक रोगों के मूल को ढूँढने और उनकी सत्यता की पुष्टि करने में और साथ ही प्रमुख एण्टिसोरिक औषधियाँ खोजने में 12 वर्ष लगाए, जो संयुक्त रूप से इस हजार सिर वाले दैत्य से इसके विभिन्न विकासों और किस्मों से समानता रखती हैं, ऐसा पहले किसी ने नहीं किया था। इन औषधियों की सहायता से लक्षणों की समानता के आधार पर (होम्योपैथिक तरीके से) सोरा जनित अनेक क्रॉनिक रोग आरोग्य किए जा सकते हैं।''

महर्षि हैनिमैन के समय से आज तक उनके अनेक अनुयायियों के परीक्षणों और अनुभवों में पाया गया है कि सोरा जनित अनेक रोग जो दूसरी पद्धति की चिकित्सा में असाध्य कहे जाते हैं उपयुक्त होम्योपैथिक औषधियों की अति अल्प मात्राओं से पूरी तरह निरोग हुए हैं। पिछले लगभग पचास वर्षों के अपने (डा0 ममगाई) अनुभव में मैंने पाया है कि उपरोक्त अनुच्छेद में नामित अनेक रोग जो एलोपैथिक चिकित्सा के अन्तर्गत

Dr. S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

जटिल ही हुए थे लक्षणों की समानता के आधार पर चुनी गई और उच्च पोटेसी की होम्योपैथिक औषधियों की अति अल्प मात्राओं के उपयोग से कुछ समय में पूरी तरह निरोग हो कर पूरी तरह स्वस्थ हो गए, ऐसे अनेक रोगी मामलों में विशेषकर चर्म रोगों में नारियल के तेल के अतिरिक्त किसी प्रकार की चर्म पर बाहर से उपयोग की किसी भी दवा का इस्तेमाल नहीं किया गया। महर्षि हैनिमैन का आविष्कार इतना अधिक सार्थक है।

81वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''यह तथ्य कि इस अत्यधिक प्राचीन संक्रामक कारक तत्त्व ने सैकड़ों पीढ़ियों में होते हुए धीरे धीरे करोड़ों मानवों के माध्यम से बढ़ते हुए अविश्वसनीय वृद्धि प्राप्त कर ली है इस प्रकार इसने कुछ सीमा तक यह समझने योग्य बना दिया है कि अब इसने मानव जाति के लिए कितने ही असंख्य रोगों का रूप धारण कर लिया है, खासतौर से जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि विभिन्न परिस्थियाँ इन बहुत विभिन्न प्रकार के क्रॉनिक रोगों (सोरा के द्वितीयक लक्षणों) को उत्पन्न करने में सहयोगी होती हैं, साथ ही लोगों की जन्मजात शारीरिक गठन की वर्णनातीत विभिन्नता होने से आश्चर्य नहीं यदि इतने भिन्न प्रकार के हानिकारक बाहर और भीतर से और कभी कभी लगातार क्रिया करते हुए, इतने भिन्न प्रकार के शरीरों पर सोरिक धातुदोष से मिल कर असंख्य प्रकार के विकार, हानि, विकृतियाँ और कष्ट पैदा किए हैं, जिनका अब तक पुराने पैथोलॉजिकल पुस्तकों में विभिन्न नामों के अतंर्गत इलाज हुआ है, मानों वे स्वतन्त्र चरित्र के रोग रहे हों।''

परिस्थितियों के बारे में टिप्पणी करते हुए वे कहते हैं'

''इन कारणों में कुछ ऐसे होते है जो सोरा के क्रॉनिक रोगों में रूपान्तरण पर संशोधन का प्रभाव डालते हैं जो स्पष्टत: कभी मौसम परिवर्तन और निवास के विशिष्ट भौतिक चरित्र, कभी युवाओं के उद्योग में या जीवन यापन की परिस्थितियों में, खान पान में, उत्साह में, व्यवहार में और विभिन्न प्रकार की आदतों और रिवाजों की बहुत भिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक प्रशिक्षण जिनकी उपेक्षा कर दी गई हो या विलम्बित किए गए हों अथवा अति की गई हो इत्यादि पर निर्भर करते हैं।''

इसी अनुच्छेद की एक अगली लम्बी टिप्पणी में उन्होंने कहा है कि पुरानी पैथोलॉजिकल पुस्तकों में सोरा धातुदोष से उत्पन्न असंख्य प्रकार के विकारों को अनेक अस्पष्ट और अनेकार्थक गोल मोल नामों से सम्बोधित किया गया है जिनके आधार पर आरोग्य कारक चिकित्सा सम्भव नहीं होती है। टिप्पणी के अन्त में उन्होंने इतना अवश्य

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

कहा है कि जब निदान के बारे में किसी को बतलाना हो तो आप रोगी को अथवा सामान्य जन को कह सकते हैं कि उसे एक प्रकार का शोथ या एक प्रकार का मलेरिया या एक प्रकार का यह या वह रोग है।

सोरा धातुदोष, प्राचीनतम धातुदोष है जो शरीर के पूरी तरह आन्तरिक संक्रमण के बाद अपने आरम्भिक काल में चर्म पर कामुक खुजली के साथ एक विशेष दानों (vecicles) वाले उद्‌भेद के रूप में (एक खास गन्ध के साथ) अपनी उपस्थिति को प्रकट किया करता था, परन्तु समय बीतने के साथ अनेक सदियों में मानव जाति में धीरे धीरे आनुवंशिक रूप में और संक्रमण के द्वारा मनुष्य की जीवन शैली, खान पान, शारीरिक गठन, रीति रिवाजों और बदलते मौसम आदि अनेक परिस्थियों के कारण इस सोरा धातु ने व्यापक रूप से अनेक रूप धारण कर लिए हैं और विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न रूपों में अपने को प्रकट करता है। इन विभिन्न रूपों के कारण पुरानी पैथोलॅजिकल पुस्तकों में इन रूपों को अनेक अपुष्ट और गोल मोल नामों से इनका वर्गीकरण कर दिया गया है जो परिपाटी एलोपैथी में आज भी मान्य है, और इन निश्चित नामों के अनुसार ही इन रोगों की चिकित्सा की जाती है; जबकि होम्योपैथी में हैनिमैन महोदय ने यह तो निर्देश दिया है कि चिकित्सा के समय रोगों के निदान के बारे में सामान्य जन द्वारा पूछे जाने पर उसको इस प्रकार संतुष्ट किया जा सकता है कि यह रोग एक प्रकार का अमुक या अमुक रोग है, परन्तु चिकित्सा के लिए प्रत्येक रोगी के व्यक्तिगत कष्टकर लक्षणों को ही आधार माना जाता है और उसी आधार पर उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि द्वारा रोगी को निरोग किया जाता है।

82वें अनुच्छेद में उनका कहना है:

''यद्यपि, क्रॉनिक रोगों के महान स्रोत का आविष्कार तथा सोरा की विशिष्ट होम्योपैथिक औषधियों के आविष्कार के साथ अधिकांश रोगों को आरोग्य करने के मामले में होम्योपैथी प्रकृति के काफी नजदीक पहुँच चुकी है फिर भी होम्योपैथिक चिकित्सक के लिए क्रॉनिक (सोरिक) रोग के प्रत्येक मामले में जिसे आरोग्य करने के लिए उसे कहा गया है उसके इंगितों को जानने योग्य लक्षणों और चरित्र का बोधगम्य निश्चय करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि इस आविष्कार से पहले था, क्योंकि प्रत्येक इस और अन्य रोगों का वास्तविक आरोग्य, प्रत्येक मामले की यथार्थ और विशिष्टिकरण (व्यक्तिगतकरण) के आधार पर चिकित्सा किए बगैर नहीं हो सकता – इस खोज में जब कष्ट तेजी से बढ़ा हुआ एक्यूट रोग हो उसमें और क्रॉनिक रोग में तब मात्र एक अन्तर हो सकता है, वह, यह कि एक्यूट रोग में

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

प्रमुख लक्षणों की अपेक्षाकृत तेजी से अनुभूति होने लगती है, अत: रोग का स्पष्ट चित्र जानने में काफी कम प्रश्न पूछने की आवश्यकता होती है और कम समय लगता है, क्योकि क्रॉनिक रोग की अपेक्षा सब कुछ स्वत: प्रकट हो जाता है, जबकि क्रॉनिक रोग को धीरे-धीरे बढ़ने में कई वर्षो का समय लगने के कारण उसके लक्षणों को निश्चित रूप से जानने में अधिक कठिनाई होती है।''

यहाँ पर उन्होंने यह टिप्पणी दी है:

''अत: लक्षणों की खोज बीन के लिए निम्नलिखित निर्देश एक्यूट रोगों के मामलों में आंशिक रूप से ही लागू होते हैं।''

प्रकृति स्वयं लक्षणों की समानता के अधार पर आरोग्य करती है इस तथ्य का स्पष्टिकरण पहले ही 26वें अनुच्छेद में किया जा चुका है और यही होम्योपैथिक नियम भी है अत: महर्षि हैनिमैन ने इस 81वें अनुच्छेद में कहा है कि क्रॉनिक रोगों के महान स्रोत सोरा और उसके आधार पर उत्पन्न अनेक रोगों की होम्योपैथिक औषधियों के आविष्कार हो जाने के साथ ही इनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में चिकित्सा कार्य प्रकृति के बहुत निकट पहुँच चुका है परन्तु प्रत्येक व्यक्तिगत रोग के मामले में निरोग करने के लिए विशेष करके क्रॉनिक रोग के मामले में औषधि के चुनाव के लिए सुनिश्ति लक्षणों की खोज भी आवश्यक है क्योंकि एक्यूट रोग के मामले में तो रोग के तेजी से बढ़ने के कारण प्रमुख लक्षण बहुत स्पष्ट होते हैं अत: उपयुक्त औषधि का चुनाव अपेक्षाकृत आसान हो जाता है, परन्तु क्रॉनिक रोग धीरे धीरे बढ़ता है और जब वह चिकित्सा के लिए आता है तो लम्बा समय बीत चुका होता है अत: उसके प्रमुख लक्षण अस्पष्ट हो चुके होते हैं जिनको उपयुक्त रूप से जान लेने में चिकित्सक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आगे के अनुच्छेदों में उन्होंने उस विधि का उल्लेख किया है जिसके आधार पर चिकित्सक हस्तगत रोगी के उन उपयुक्त लक्षणों को जान सके जिनके आधार पर वह रोगी की आरोग्यकारक चिकित्सा सम्पन्न कर सके। एक्यूट रोगों में ये निर्देश केवल आंशिक रूप से ही लागू होते हैं।

83वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''रोग के इस व्यक्तिगत परीक्षण के सम्बन्ध में यहाँ पर केवल सामान्य मार्गदर्शक निर्देश ही दूँगा जिनको चिकित्सक ध्यान में रखते हुए कि प्रत्येक व्यक्तिगत रोग के मामले में पूर्वाग्रहों से मुक्त स्वस्थ चित्तता के साथ, निष्ठापूर्वक उसका चित्र जानने के लिए क्या उपयुक्त है उस पर ध्यान देगा।''

Dr. S. K. Mangalm Email: drmangalm@gmail.com

यह अनुच्छेद स्वयं स्पष्ट है। अगले अनुच्छेदों में उन्होंने सुझाया है कि हस्तगत रोगी के रोग का स्पष्ट लक्षण चित्र आरोग्य करने वाला चिकित्सक किस प्रकार तैयार करेगा ताकि उसके आधार पर वह उपयुक्त होम्योपैथिक चिकित्सा सम्पन्न कर सके।

84वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''रोगी अपने कष्टों का विवरण बयान करता है, उसके साथ रहने वाले बतलाते हैं कि रोगी अपने कष्टों के बारे में क्या शिकायत करता है, वह कैसा व्यवहार करता है और उन्होंने उसमें क्या कुछ परिवर्तन देखा है, चिकित्सक स्वयं क्या सुनता, देखता और अवलोकन करता है कि रोगी में क्या बदला है या क्या असामान्य चरित्र है। वह उस सब को जो रोगी ने बतलाया है और रोगी के सम्बन्धियों ने बतलाया है उन्हीं के शब्दों में क्रमबद्ध तरीके से लिख ले। स्वयं चुप रहते हुए उनको जो वे कहते हैं जब तक वे विषय से इधर उधर न बहकें बिना रोके टोके उसे सुन ले। रोगी का परीक्षण करने से पहले ही चिकित्सक उन्हें धीरे धीरे बोलने की सलाह दे दे, ताकि वह उनके विवरण के मुख्य अंशों को लिख सके।''

बिना रोके टोके के सम्बन्ध में उन्होंने टिप्पणी की है कि ''रोकने टोकने से वक्ता के विचारों की श्रृखंला टूट जाती है और जो वह कहना चाह रहा था बाद में ठीक उसी प्रकार फिर नहीं कह सकता।''

85वें अनुच्छेद में रोग के लक्षणों को लिखने के तरीके का वर्णन है:

''वह (चिकित्सक) रोगी द्वारा या उसके मित्रों द्वारा बतलाई गई हर परिस्थिति को नई लाइन से लिखना शुरु करे, ताकि हरएक लक्षण को एक दूसरे के नीचे अलग अलग लिखा जाए। इस प्रकार वह प्रत्येक अस्पष्ट रूप से व्यक्त लक्षण के साथ बाद में अधिक स्पष्ट की गई बात को लिख सके।''

86वें अनुच्छेद में निर्देश दिया है कि उपरोक्त तरीके से लिखे गए लक्षणों को लक्षण बताने वालों की बात समाप्त हो जाने के बाद उन लक्षणों को पूरी तरह स्पष्ट रूप से जानने के लिए क्या करना है:

''जब लक्षण बतलाने वाले अपने तरीके से लक्षण बता चुकें तब चिकित्सक पुन: प्रत्येक विशिष्ट लक्षण के बारे में और अधिक सुस्पष्ट जानकरी प्राप्त करने के लिए जैसे बतलाए गये थे उस लक्षण पर निम्नलिखित तरीके से वापस आता है, वह एक-एक लक्षण को पढ़े और उनकी विशिष्टताओं के बारे में और अधिक स्पष्ट

Dr. S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

जानकारी पाने के लिए लक्षणों को जैसे वे बतलाए गए थे एक-एक करके पढ़े, और उनमें से प्रत्येक के बारे में और विशिष्ट जानकारी पूछे, यथा यह लक्षण कब शुरु हुआ? क्या यह लक्षण जो दवा रोगी ले रहा है उसके लेने से पहले शुरु हुआ था? दवा लेने के दौरान शुरु हुआ? या दवा छोड़ने के कुछ दिन बाद शुरु हुआ? किस तरह का दर्द है, उसकी वास्तविक अनुभूति क्या है, किस स्थान पर हुआ था? क्या इसी स्थान पर हुआ? वह निश्चित स्थान कहाँ पर है? क्या दर्द अक्सर अपने आप और दौरों में होता है या, निरन्तर बिना रुके होता रहता है? कितनी देर होता रहता है? दिन या रात के किस समय तथा शरीर की किस स्थिति में बढ़ता है? या पूरी तरह समाप्त हो जाता है? सामान्य शब्दों में व्यक्त उन बतलाई गई परिस्थितियों या घटना का वास्तविक चरित्र क्या है?''

87वें अनुच्छेद में पिछले निर्देश को आगे बढ़ाते हुए कहा:
''इस प्रकार चिकित्सक प्रत्येक लक्षण के बिवरण के बारे में और अधिक सही जानकारी प्राप्त करता है लेकिन प्रश्न इस प्रकार नहीं पूछना है कि रोगी द्वारा उत्तर हाँ या ना में मिले, नहीं तो रोगी किसी असत्य, अर्धसत्य या नितान्त सही बात के लिए अज्ञानवश या प्रश्नकर्ता को खुश करने के लिए हाँ या ना में उत्तर देने के भ्रम में पड़ जाएगा, जिससे रोग का मिथ्या चित्र बन जाएगा और परिणाम अनुपयुक्त चिकित्सा होगा।''
महर्षि हैनिमैन नें फिर यहाँ पर टिप्पणी दी है जो इस प्रकार है:
''उदाहरण के लिए चिकित्सक को ऐसे नहीं पूछना चाहिए कि क्या यह या वह परिस्थिति उपस्थित थी? उसको कभी भी ऐसे सुझाव देने का दोषी नहीं होना चाहिए जो रोगी को झूठा उत्तर और लक्षणों का झूठा विवरण देने के लिए भटका दे।''

88वें अनुच्छेद में उन्होंने कहा है कि:
''यदि स्वेच्छा से दिए गए इस विवरण में अनेक अंगों या शरीर की प्रक्रियाओं अथवा मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ नहीं बतलाया गया हो चिकित्सक इन अंगों और प्रक्रियाओं या स्वभाव या मानसिकता के बारे में और क्या होता है पूछे, परन्तु ऐसा करने के लिए ऐसे सामान्य भाव से पूछे कि उसकी इस जानकारी को उनके संदर्भ में विशेष विवरण के रूप में लिखा जा सके।''
यह जानकारी प्राप्त करने के संदर्भ में उन्होंने टिप्पणी दी है कि प्रश्न किस प्रकार करें:

Dr. S.K. Mangalik, Email: drmangain@gmail.com

''उदाहरण के लिए, उसके शौच का क्या चरित्र है? वह मूत्र किस प्रकार त्यागता है? उसकी दिन और रात की नींद के बारें में क्या होता है? उसका स्वभाव, उसकी विनोद प्रियता, उसकी याददाश्त कैसी है? प्यास कैसी है? उसके मुँह में स्वाद कैसा रहता है? भोजन और पेय किस प्रकार के पसन्द करता है? उसे काहे से वितृष्णा है? उसका स्वाद सामान्य रहता है या असामान्य कैसा रहता है? खाने या पीने के बाद वह कैसा अनुभव करता है? क्या वह अपने सिर, प्रत्यंगों या उदर आदि के बारे में कुछ बतलाना चाहता है?

इस प्रकार 84वें अनुच्छेद से 88वें अनुच्छेद तक वर्णित निर्देशों के अनुसार रोग का चित्र प्राप्त हो जाने के बाद यदि चिकित्सक को ऐसा लगे कि रोगी के द्वारा स्वत: और चिकित्सक द्वारा पूछे गए प्रश्नों के आधार पर प्राप्त यथार्थ विवरण और अनुभूतियों में कल्पित लक्षणों को छोड़ कर और स्पष्ट जानकारी की अभी और अधिक जरूरत है तो वह और सुनिश्चित तथा अधिक विशिष्ट प्रश्न पूछे। यही बात 89वें अनुच्छेद में कही गई है।

89वें अनुच्छेद के सुनिश्चित और सुस्पष्ट प्रश्नों के संदर्भ में हैनिमैन महोदय ने एक पाद टिप्पणी दी है कि चिकित्सक इस विषय में किस प्रकार से प्रश्न पूछे।

''उदाहरण के लिए, शौच कितनी बार जाना पड़ता है? मल का बास्तविक चरित्र कैसा है? सफेदी वाले मल में श्लेष्मा है या मल ही है? क्या मलत्याग के समय दर्द होता है या नहीं? दर्द का वास्तविक चरित्र कैसा है, और वह कहाँ कहाँ होता है? रोगी उलटी कैसी करता है? मुँह का खराब स्वाद सड़ान्ध वाला या कड़वा या खट्टा या कैसा है? खाने से पहले या खाने के बाद या खाते समय? दिन के कौन से समय यह बदतर होता है? उलटी के पदार्थ का स्वाद कैसा होता है? मूत्र रखा रहने के बाद या मूत्रत्याग करते समय गंदला होता है? मूत्रत्याग के समय इसका रंग कैसा होता है? मूत्रत्याग के समय इसकी तलछट का रंग कैसा था? सोते समय वह कैसा व्यवहार करता है? क्या सोते समय कुनकुनाता है, कराहता है, बोलता है या रोता है? क्या नींद में चौंकता है? क्या सोते समय खर्राटे लेता है, साँस लेते समय या छोड़ते समय? क्या वह केवल पीठ के बल लेटता है या कौनसी करवट? क्या सोते समय कपड़े अच्छी तरह ओढ़ता है या कुछ ओढ़ना नहीं चाहता? क्या वह बहुत गहरी नींद सोता है या आसानी से जाग जाता है? नींद से जागने के तुरत बाद वह कैसा अनुभव करता है? यह या वह लक्षण कब कब होता है? हर बार उक्त लक्षण किस कारण से होता है? उक्त लक्षण किस स्थिति में होता है बैठे समय,

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

लेटे समय, जब खड़ा हो या जब कोई गति कर रहा हो? उक्त लक्षण किस समय होता है खाली पेट, केवल सुबह के समय, केवल सायंकाल, केवल खाने के बाद या सामान्यत: कब? कँपकँपी किस समय होती है? क्या यह मात्र ठण्ड की अनुभूति होती है या वह वास्तव में ठण्डा हो जाता है? यदि ऐसा होता है तो किन अंगों मे? जब वह ठण्ड अनुभव कर रहा होता है तो क्या स्पर्श करने से गरम लगता है? क्या बिना कँपकँपी के ठण्डेपन की मात्र अनुभूति होती है? क्या चेहरे की लाली के बिना शरीर गरम होता है? शरीर के कौन से अंग स्पर्श के लिए गरम होते हैं? या वह स्पर्श के प्रति गरम न हो कर गरमी की शिकायत करता है? ठण्डापन कितनी देर रहता है? गरमी की दशा कितनी देर रहती है? प्यास किस स्थिति में लगती है – ठण्ड की स्थिति में? गरमी की दशा में? या उससे पहले? या उसके बाद? प्यास कितनी अधिक होती है और क्या पीने की इच्छा होती है? पसीना कब आता है – गरमी के शुरु में या गरमी के अन्त में? या गरमी के कितनी देर बाद? सोते समय या जब जगा हो? पसीना कितना अधिक होता है? क्या यह गरम होता है या ठण्डा? किन अंगों पर? इसकी गंध कैसी होती है? ठण्ड की दशा से पहले या बाद में वह क्या शिकायत करता है? गरमी की दशा में क्या शिकायत करता है? उसके बाद क्या? इत्यादि। महिलाओं के मामले में उनके मासिक एवं अन्य स्रावों के बारे में जानकारी आदि।''

इस प्रकार चिकित्सक सभी लक्षणों के बारें में बारीकी से जानकारी प्राप्त करके पूरी बात लिख ले ताकि वह उपयुक्त औषधि का चुनाव करने में सफल हो।

90वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''जब चिकित्सक इन सब विशिष्ट लक्षणों को लिखना समाप्त कर ले तब वह अपने अवलोकन की टिप्पणी लिखे, कि उसने रोगी की स्वस्थ दशा से भिन्न उसके स्वास्थ्य में क्या विशेष परिवर्तन पाया है।''

इस अनुच्छेद में चिकित्सक के द्वारा अवलोकन के सम्बन्ध में महर्षि हैनिमैन ने अपनी टिप्पणी में फिर उदाहरण दिया है कि चिकित्सक को रोगी के व्यवहार में किन बातों का अवलोकन करना चाहिए:

''उदाहरण के लिए, निरीक्षण के समय रोगी ने किस प्रकार का व्यवहार किया – क्या वह उदासीन, झगड़ालू, उतावला, बात बात पर रोने वाला, बेचैन, हताश या दु:खी, या आशावान या शान्त, आदि कैसा था। क्या वह तन्द्रिल दशा में था या एक प्रकार से समझने में सुस्त, क्या वह भारी आवाज में बोला था या धीमी

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

आवाज में या अभद्रता या वह किस प्रकार बोला था? उसके चेहरे, आँखों, और उसके चर्म का रंग सामान्यत: कैसा था? उसके चेहरे के भावों और आँखों में कितनी जीवन्तता और शक्ति अभिव्यक्त हो रही थी? उसकी जीभ की, उसके प्रश्वास, मुख की गन्ध और उसके सुनने की क्या दशा थी? क्या उसकी आँखों की पुतलियाँ फैली हुई थीं या सिकुड़ी हुई थीं? वे रोशनी या अन्धेरे में कितनी तेजी से फैलती या सिकुड़ती थीं? उसकी नब्ज कैसी थी? उदर का क्या हाल था? उसके इस या उस अंग अथवा शरीर की चर्म स्पर्श के लिए कितनी ठण्डी या गरम अथवा सूखी हुई या नम थी? वह किस स्थिति में लेटा था क्या सिर पीछे को झुका रखा था, मुख आधा या पूरा खुला हुआ था, बाँहें सिर के ऊपर थीं या पीछे की ओर या किसी अन्य स्थिति में? उठने के लिए उसने क्या प्रयास किया था? तथा अन्य कोई बात जो चिकित्सक को विलक्षण लगी हो। चिकित्सक सावधानी के साथ लिख ले।''

84वें अनुच्छेद से 90वें अनुच्छेद तक महर्षि हैनिमैन ने रोगी के लक्षण चित्र को स्पष्ट रूप से जानने के लिए अनेक प्रकार के प्रश्न सुझाए हैं इनके अतिरिक्त भी रोग के लक्षण चित्र को सुस्पष्ट करने के लिए रोग की प्रकृति और परिस्थिति के अनुसार अन्य अनेक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। क्योंकि 3रे अनुच्छेद में 'रोग में ऐसा क्या है जिसे आरोग्य करना है' के लिए इस प्रकार के लक्षण चित्र को जानना आवश्यक है अन्य किसी तरीके से आरोग्य करने के लिए कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। प्रचलित चिकित्सा पद्धति में मल, मूत्र, खून आदि तथा एक्स-रे, अल्ट्रासाउण्ड, एम आर आई इत्यादि अत्याधुनिक विकसित उपकरणों के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंगों की जाँच के द्वारा रोग के निदान का प्रयास किया जाता है लेकिन इस प्रकार की जाँच में औसत मानदण्डों (standard values) के संदर्भ में निश्चित अन्तर अवश्य मिल जाते हैं परन्तु हर व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति से शारीरिक एवं मानसिक गठन में बहुत भिन्न होता है अत: इस प्रकार प्राप्त परिणाम हर व्यक्ति के लिए समान रूप से सटीक होना सम्भव नहीं है। साथ ही संसार में अनेक व्यक्ति असाधारण चरित्र के भी होते हैं जिन पर ये मानदण्ड लागू नहीं होते अत: ऐसी जाँच के परिणाम भ्रामक भी हो सकते हैं। फिर यान्त्रिक जाँच में यान्त्रिक एवं मानवीय भूल चूक भी भ्रम पैदा कर सकती हैं। मुझे (अनुवादक) ऐसी अनेक चूक स्वयं देखने को मिली हैं। यदि चूक न भी हों तो भी ऐसी यान्त्रिक जाँच के आधार पर रोग का निदान सामान्यीकृत ही होता है। क्योंकि हर व्यक्ति अनेक बातों में किसी भी दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है सामान्यीकृत निदान के आधार पर एक समान चिकित्सा से प्रत्येक रोगी के निरोग होने की कोई सम्भावना ही

Dr. S.K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

नहीं बनती। लेकिन 84वें अनुच्छेद से 90वें अनुच्छेद में सुझाए गए तथा ऐसे ही विशेष प्रश्नों के आधार पर प्रत्येक रोगी के रोग का व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर व्यक्तिगत निदान सम्भव हो जाता है और होम्योपैथिक सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तिवैशिष्ट्य आधारित आरोग्य सम्भव होता है; जो कि महर्षि हेनिमैन के समय से आज तक व्यावहारिक रूप से बार-बार सही प्रमाणित हुआ है। मैं स्वयं पिछले लगभग पचास वर्षो से महर्षि हैनिमैन के बतलाए सिद्धान्तों के आधार पर चिकित्सा करने का प्रयास कर रहा हूँ और जहाँ भी मैं रोगी के लक्षणों और ऐसे ही प्रश्नों के आधार पर सही औषधि का चुनाव कर पाता हूँ एक्यूट रोगियों के मामले में चमत्कारिक गति से परिणाम मिलते हैं और खास बात यह है कि ये परिणाम चुनी गई उपयुक्त औषधि की 30वीं और उच्च पोटेन्सी की अत्यल्प मात्रा जो समय के काफी अन्तर पर देता हूँ, उससे मिलते हैं जिसके कारण होम्योपैथी के सिद्धान्तों में मेरा अटूट विश्वास हो गया है। और एक बात बतलाना चाहूँगा वह यह कि मेरे पास आने वाले रोगियों में अधिकांश रोगी प्रचलित चिकित्सा से निराश होने के बाद परीक्षणों की मोटी-मोटी फाइलें लेकर आते हैं, और अधिकांश मामलों में लक्षणों के व्यक्तिवैशिष्ट्य के आधार पर बहुत कम समय में रोगी के स्वास्थ्य में सुधार आना शुरु हो जाता है और फाइलों में अंकित परिणाम अक्सर किसी काम नहीं आते।

91वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि:

''पिछली औषधियों का सेवन करते समय रोगी के लक्षण और अनुभूतियाँ रोग के शुद्ध चित्र को प्रदर्शित नहीं करते, परन्तु दूसरी ओर वे लक्षण और कष्ट जिनसे वह पिछली दवाएँ खाने से पहले पीड़ित था या उनको काफी दिन तक खाना बन्द करने के बाद प्रकट हुए थे, मूल रोग के वास्तविक चित्र का सच्चा आधारभूत विचार प्रस्तुत करता है, चिकित्सक इन पर विशेष ध्यान दे। जब रोग क्रॉनिक चरित्र का हो और रोगी चिकित्सक के देखे जाने तक औषधियाँ ले रहा हो तो अच्छा हो कि चिकित्सक उसे कुछ दिन के लिए बिना दवा के रखे या फिर रोगी को कुछ दिन अनौषधीय पदार्थ पर रखे और रोग लक्षणों के अगले गहन परीक्षण तक टाले रखे ताकि पुराने रोग के स्थायी शुद्ध लक्षणों को उनकी शुद्धता के साथ जाना जा सके और रोग का विश्वसनीय चित्र तैयार किया जा सके।''

92वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

''लेकिन, रोग यदि तेजी से बढ़ने वाला हो और इसका गम्भीर चरित्र देरी की अनुमति न देता हो और यदि चिकित्सक यह सुनिश्चित न कर पाए कि औषधियों के सेवन से पहले क्या लक्षण थे तो चिकित्सक रोग के वर्तमान लक्षणों का अवलोकन करके ही सन्तुष्टी करले भले ही वे लक्षण ली गई औषधियों द्वारा ही प्रकट हुए हों, ताकि रोग का कम से कम वर्तमान स्थिति का पूरा चित्र तैयार कर सके, कहने का तात्पर्य है कि मूल रोग और औषधि जनित रोगों का सम्मिलित परिणाम जो कि मूल रोग की अपेक्षा अनुपयुक्त दवाओं के उपयोग से सामान्यत: कहीं अधिक गम्भीर और खतरनाक रोग बन गया है, अत: उसको त्वरित और अधिक गुणकारी मदद की जरूरत होती है, और इस प्रकार रोग का पूर्ण चित्र तैयार करके चिकित्सक उससे उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि के द्वारा भिड़ जाने में सफल हो सकेगा, ताकि रोगी जिसने हानिकारक दवाएँ निगली हैं उनकी बलि न चढ़ जाए।

93वें अनुच्छेद में इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वे गुप्त रोगों या जिन्हे वह सबके सामने नहीं बतलाना चाहे उसके सम्बन्ध में वे कहते हैं कि:

''यदि रोग हाल ही में हुआ है या क्रॉनिक रोग के मामले में जो बहुत पहले किसी सुस्पष्ट कारण से हुआ हो, तब रोगी से या उसके मित्रों से अकेले में रोग के बारे में जानकारी माँगी जाए - तो, या तो वे तुरत बतला देंगे या वे तब बतलाएँगे जब सावधानी पूर्वक पूछताछ की जाए।''

फिर उन्होंने इस सम्बन्ध में 93वें अनुच्छेद में टिप्पणी लिखी है कि:

''किसी लज्जास्पद चरित्र के कारण जिन्हें रोगी या उसके मित्र स्वेच्छा से स्वीकार नहीं करना चाहते हों उनको जानने के लिए चिकित्सक चतुराई पूर्ण प्रश्न पूछे या फिर निजी सूचना के द्वारा जाने। ऐसे कारण यथा विषाक्तता, आत्महत्या का प्रयास, हस्तमैथुन/आत्मव्यभिचार, सामान्य या अप्राकृतिक वासना में लिप्तता, वाइन, उद्दीपक, पन्च, और दूसरे उग्र पेय या कॉफी, आदि में लिप्त होना - सामान्यत: खाने में अति, या हानिकारक चरित्र के विशेष खाने में अति - यौन रोग या खुजली का संक्रमण, प्रेम प्रसंग की असफलता, ईर्ष्या, पारिवारिक दु:ख, चिन्ता, परिवार में किसी विशिष्ट दुर्भाग्य के कारण शोक, दुर्व्यवहार, प्रतिरोध, आहत स्वाभिमान, धन सम्बन्धी संकट, दैवी भय, - भूख, - या गुप्तांगों का अधूरापन, विदारण, किसी अंग की च्युति (prolapsus), इत्यादि विभिन्न कष्टों की जानकारी।''

94वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangain@gmail.com

''जब क्रॉनिक रोगों की जानकारी प्राप्त कर रहे हों, तो यह सुनिश्चित करने के लिए कि रोगी के सामान्य व्यवसाय के सम्बन्ध में उसकी विशेष परिस्थियाँ, उसके जीवनयापन का सामान्य तरीका और खान पान, पारिवारिक स्थिति इत्यादि पर पूरी तरह विचार और संविक्षा करनी चाहिए कि उनमें क्या कुछ ऐसा तो नहीं है कि जिससे रोग पैदा हो या बढ़ता हो ताकि उनके दूर करने से स्वास्थ्य पुनः प्राप्त करने में सहायता मिले।''

यहाँ फिर उन्होंने एक टिप्पणी लिखी है कि:

''महिलाओं के क्रॉनिक रोगों में यह खासतौर से उनके गर्भावस्था, वन्ध्यापन, यौन इच्छा, प्रसूति, गर्भपात, स्तनपान और मासिकस्राव की स्थिति आदि की जानकारी जरूरी है। खास तौर से मासिकस्राव की स्थिति के बारे में यह सुनिश्चित करना नहीं भूलें कि क्या वह जल्दी जल्दी होते है या लम्बे समय से होते हैं, कितने दिन तक होते हैं, क्या स्राव लगातार होता है या रुक-रुक कर होता है, इसकी सामान्य मात्रा कितनी होती है, इसका रंग कितना गाढ़ा होता है, श्वेत प्रदर होता है, मासिक से पहले या बाद में, इसकी प्रकृति कैसी होती है, स्राव के साथ में क्या अनुभूतियाँ होती हैं, यह कितनी मात्रा में होता है, किन परिस्थितियों में और किस समय होता है, लेकिन विशेष रूप से किन शारीरिक या मानसिक कष्टों से, इससे पहले, साथ में या बाद में क्या अनुभूतियाँ और दर्द होते हैं, इत्यादि की जानकारी प्राप्त करना जरूरी है।''

91वें अनुच्छेद से 94वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने पुरुषों और महिलाओं दोनों के क्रॉनिक रोगों के मामले में लक्षण संग्रह करने के लिए उनके निजी गुप्त लक्षण जानने के लिए चतुराईपूर्ण प्रश्न करने का सुझाव दिया है। क्रॉनिक रोगों के मामलों में क्योंकि अक्सर रोगी वास्तव में लम्बे समय से पीड़ित होता है और अनेक प्रकार की चिकित्सा करा चुकता है अतः रोग के मूल लक्षण उसके ध्यान से उतर जाते हैं या वह उनका इतना अभ्यस्त हो चुका होता है कि वह उन्हे नगण्य समझने लगता है, जबकि कई बार ऐसे लक्षण उपयुक्त औषधि के चुनाव के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। दूसरे अब तक की चिकित्सा में अधिक मात्रा में दवाईयाँ खा चुकने के कारण उन दवाईयों से उत्पन्न लक्षण भी मूल रोग के लक्षणों के साथ मिल कर मामला जटिल हो चुका होता हैं। ऐसे रोगों के मामले में हैनिमैन महोदय का कहना है कि ऐसे रोगियों को सब दवाएँ बन्द करके कुछ समय तक बिना कोई दवा खाए प्रतीक्षा करने को कहना चाहिए अथवा यदि रोगी की मानसिकता ऐसी है कि वह बिना दवा के नहीं रहना चाहता है, तो केवल अनौषधि (placebo) दे कर प्रतीक्षा कराना श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार रोग मे मूल

Dr S K Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

लक्षण फिर से उभर आते हैं और आरोग्यकर चिकित्सा सरल हो सकती है। कुछ क्रॉनिक मामले ऐसे हो सकते हैं जिनमें खायी जा रही दवाओं के कारण ऐसी स्थिति उपस्थित हो कि रोगी को वास्तव में बिना प्रतीक्षा कराए औषधि देना जरूरी हो। ऐसे मामलों में रोगी के विद्यमान सभी लक्षणों के आधार पर उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि के द्वारा रोगी को राहत दिलानी चाहिए। उसके बाद मूल क्रॉनिक रोग के जो लक्षण सामने आएँ उनके अनुसार आगे की चिकित्सा करनी चाहिए। यहाँ मैं कहना चाहूँगा कि रोगी से प्रश्न पूछने, विशेष रूप से रोगी के अंतरंग मामलों की जानकारी लेने के लिए प्रश्न पूछने से पहले चिकित्सक को रोगी के मन में यह विश्वास पैदा करना जरूरी है कि रोगी को यह भरोसा हो जाए कि चिकित्सक वास्तव में विश्वस्त व्यक्ति है।

95वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''पीछे लिखे गए क्रॉनिक रोगों के तथा अन्य रोगों के संकेतों के अन्वेषण करने में यथासम्भव पूरी सावधानी और परिस्थितियों का घ्यान रखते हुए, सूक्ष्मतम विशिष्टताओं को भी ग्रहण करना आवश्यक है, क्योकि आंशिकरूप से इन रोगों में ये सब बहुत चारीत्रिक होते हैं और एक्यूट रोगों से बहुत ही कम समानता रखते हैं, यदि आरोग्य सम्पन्न करना है तो वे बारीकी से लक्षित नहीं किए जा सकते, आंशिकरूप से, क्योंकि लम्बे समय से भुगतते रहने के कारण रोगी उनका अम्यस्त हो जाता है अत: वह इन गौण लक्षणों पर रोगी या तो थोड़ा ही या बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते, जोकि अक्सर बहुत सारगर्भित (चारीत्रिक) होते हैं - अक्सर औषधि के चुनाव के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते है - रोगी उन्हें अपनी दशा का लगभग आवश्यक अंग मान लेते हैं, लगभग स्वास्थ्य की तरह, जिसे वे पन्द्रह, बीस साल तक कष्ट भोगते रहने के कारण लगभग भूल चुके होते हैं और उन्हें मुश्किल से ही यकीन हो पाता है कि ये गौण लक्षण कमोवेश उनके स्वास्थ्य की दशा को बिगाड़ने में मुख्य रोग के साथ कोई सम्बन्ध रखते हैं।''

96वें अनुच्छेद में वे 95वें अनुच्छेद से सम्बन्धित अगली बात का वर्णन करते हुए कहते हैं कि:

''इसके साथ ही, विभिन्न रोगी स्वभाव में भी अत्यधिक भिन्न होते हैं, कुछ खासतौर से तथाकथित रोगभ्रमी (hypochondriacs) और दूसरे बहुत अधिक संवेदनशील और कष्टों के कारण उद्विग्न, राहत दिलाने के लिए चिकित्सक को बहकाने वालें, अपने लक्षणों को बहुत बढ़ा चढ़ा कर बतलाने वाले होते हैं।''

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

यहाँ पर उन्होंने एक टिप्पणी दी है कि:
''रोगभ्रमी यहाँ तक कि बहुत व्याकुल रोगियों में भी अपने लक्षणों और कष्टों को शुद्ध गढ़ कर बतलाने की बात कभी नहीं होगी, ऐसे लक्षणों की तब तुलना करने पर आसानी से वास्तविकता का पता चल जाएगा जब चिकित्सक या तो कोई भी औषधि नहीं दे या मात्र कुछ अनौषधि दे – परन्तु हम उनके इस अतिरंजन से कुछ परिणाम निकालें, सभी घटनाओं में इस प्रकार से गढ़ना उनके चरित्र की अति संवेदिता को व्यक्त करता है, ऐसे मामलों में अपने कष्टों को अभिव्यक्त करते समय उनका अतिरंजन उनके रोग के लक्षणों की तालिका में, जो रोग का चित्र प्रस्तुत करती है, एक महत्वपूर्ण लक्षण होता है। ऐसा मामला विक्षिप्त और धूर्त रोगभ्रमी मामलों से भिन्न होता है।''

97वें अनुच्छेद में महर्षि हेनिमैन कहते हैं कि:
''विपरीत चरित्र के दूसरे व्यक्ति, अंशत: आलस्य के कारण, अंशत: मिथ्या लज्जा के कारण, अंशत: एक प्रकार की स्वभावगत कोमलता या मानसिक कमजोरी के कारण अपने अनेक लक्षण बतलाने से बचते हैं या गोल मोल शब्दों में बतलाते हैं या उनको महत्वहीन बतलाते हैं।''

98वें अनुच्छेद में लक्षणों की खोज के सुझावों को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:
''अब, जहाँ तक भी सम्भव, हो हमें खासतौर से उसके सभी रोगों में, लेकिन खासतौर से क्रॉनिक रोगों में उसके कष्टों और अनुभूतियों का वर्णन रोगी के मुख से ही सुनना चाहिए जिससे वह अपने कष्टों को ठीक से समझा सके – क्योंकि उसके दोस्तों और सेवादारों द्वारा वे बदले हुए और त्रुटिपुण हो सकते हैं। रोग का सही ओर पूर्ण चित्र और उसकी विशिष्टताओं को जानने के लिए विशेष दक्षता, चतुराई, मानव के स्वभाव का ज्ञान, जानकारी प्राप्त करने में सावधानी और धैर्य की प्रमुखता से जरूरत होती है।''

99वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ में वे कहते हैं कि:
''पूरे रूप में, एक्यूट रोगों के या ऐसे रोग जो थोड़े समय से ही विद्यमान हों उनका अन्वेषण करना चिकित्सक के लिए सरलतम होता है, क्योंकि रोग के सभी प्रतिभास और स्वास्थ्य में परिवर्तन जो हाल ही में हुए थे अभी भी रोगी और उसके मित्रों को स्पष्टत: अच्छी तरह याद होते हैं। चिकित्सक निश्चय ही ऐसे रोगों में भी सब

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

कुछ जानना चाहता है, लेकिन उसे काफी कम पूछने की जरूरत पड़ती है क्योंकि वे उसके सामने स्वत: वर्णन कर दिए जाते है।''

100वें अनुच्छेद में अब महर्षि हैनिमैन संक्रामक रोगों की महामारियों (epidemcs) और छिट पुट रूप से होने वाले (sporadic) रोगों के पूरे लक्षणों के अन्वेषण के विषय में सुझाव देते हैं कि:

''महामारियों और छिट पुट रूप से होने वाले रोगों के समस्त लक्षणों की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह बात बिल्कुल भी महत्वपूर्ण नहीं है कि संसार में उक्त नाम से या किसी अन्य नाम से कोई रोग पहले हुआ था या नहीं। किसी रोग की असाधरणता या विशिष्टता से उसके परीक्षण या चिकित्सा करने पर रोग की किस्म से कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योकि चिकित्सक को तो हर हाल में प्रत्येक व्याप्त रोग के शुद्ध चित्र को ऐसा समझे मानों यह नया और अज्ञात रोग है और यदि वह वास्तविक और मौलिक चिकित्सा कार्य करने का इच्छुक है तो कभी भी वास्तविक अवलोकन के बदले कोई धारणा न बनाते हुए उस रोग की पूरी बारीकी से छानबीन करे, कभी भी ऐसा न मान ले कि हस्तगत रोग पूरी तरह या आंशिक रूप से पहले से ज्ञात है, बल्कि हमेशा सावधानीपूर्वक सभी पहलुओं से रोग का परीक्षण करे और यह विधि ऐसे मामलों में और भी अधिक वांछनीय है, क्योंकि सावधानीपूर्वक परीक्षण प्रदर्शित करेगा कि प्रत्येक व्याप्त रोग पूर्व सभी महामारियों से अत्यधिक भिन्न और अनेक प्रकार से एक अनूठे चरित्र का प्रतिभास है, जिन्हें अज्ञानवश कुछ खास नाम दे दिए गए हैं, अपवाद स्वरूप उन महामारियों को छोड़ कर जो किसी संक्रामक तत्त्व से उत्पन्न होते हैं और हमेशा वही रहते हैं, यथा चेचक (smallpox), खसरा (measles), आदि।''

101वें अनुच्छेद में अब वे किसी भी महामारी या संक्रामक रोग के विषय में सुझाव देते हुए कहते हैं कि:

''ऐसा हो सकता है कि किसी महामारी के पहले मामले में जो चिकित्सक के समक्ष आता है उसके बारे में चिकित्सक उसके पूरे चित्र के बारे में तुरत पूरा ज्ञान प्राप्त न कर सके, क्योंकि यह ज्ञान तो ऐसे सामूहिक रोग के अनेक मामलों के बारीकी से अवलोकन के बाद ही वह उस रोग के सम्पूर्ण संकेतों और लक्षणों से परिचित हो सकता है। फिर भी सावधानीपूर्वक अवलोकन करने वाला चिकित्सक पहले और दूसरे रोगियों के परीक्षण से ही अक्सर उसकी सही दशा के चित्र के चारित्रिक लक्षणों के

Dr. S. K. Mangalmi Email: drmangalm@gmail.com

मानसिक प्रतिरूप के ज्ञान के लगभग बहुत समीप पहुँच जाता है, यहाँ तक कि उसकी उपयुक्त होम्योपेथिक औषधि का चुनाव करने में भी सफल हो जाता है।''

102वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ को और आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''इसी प्रकार के अनेकों मामलों के लक्षण लिखते रहने से रोग के चित्र का शब्द चित्र और अधिकाधिक पूरा होता चला जाएगा, जो शब्दाडम्बरयुक्त नही, बल्कि उक्त सामुहिक रोग के बहुत सार्थक (अधिक चारित्रिक) और उसकी विशिष्टताओं से युक्त, एक ओर उसके सामान्य (general) लक्षण (यथा, भूख की कमी, निद्रहीनता, इत्यादि) उनकी विशिष्टताओं के सम्बन्ध में पूरी तरह स्पष्ट हो जाएँगे और दूसरी ओर और अधिक प्रमुख और विशिष्ट लक्षण जो कुछ ही रोगों में कम से कम इसी संयोजन में अनूठे होते हैं और विरलता से प्रकट होते हैं सुस्पष्ट हो कर इस रोग के चारित्रिक लक्षण निर्माण करते हैं, जिनसे पता चलता है कि इस रोग की विशिष्टता क्या है। किसी एक समय में फैले रोग से जितने भी लोग प्रभावित हो जाते हैं वे सब एक ही समान स्रोत से प्रभावित होते हैं अत: वे सब एक ही रोग से पीड़ित होते हैं; परन्तु इस प्रकार के संक्रामक रोग को पूरी सीमा तक और इसके लक्षणों की समग्रता (जिस ज्ञान को, जोकि हमें रोग के चित्र के सम्पूर्ण सर्वेक्षण से प्राप्त लक्षणों के समुदाय के लिए उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि के चुनाव के योग्य बनाता है) किसी एक रोगी से प्राप्त नहीं हो सकती, बल्कि वह तो केवल पूरी तरह से विभिन्न प्रकार की गठन के अनेक रोगियों के कष्टों से प्राप्त करने से सुनिशिचित हो सकती है।''

इस अनुच्छेद में 'इस रोग की विशिष्टता क्या है' के सम्बन्ध में उन्होंने निम्न लिखित पाद टिप्पणी लिखी है:

''जो चिकित्सक शुरु के मामलों में, पहले ही, लगभग होम्योपैथिक स्पेसिफिक औषधि का चुनाव करने में सफल हो जाता है, बाद के मामलों से या तो चुनी गई औषधि की उपयुक्तता जाँचने में या और अधिक उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि खोजने मे सक्षम हो जाता है।''

103वें अनुच्छेद में वे संक्रामक रोगों से आगे धातुदोष जनित रोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध में सुझाव देते हुए कहते हैं कि:

''इसी प्रकार जैसा कि संक्रामक रोगों के बारे में सिखाया गया है जो सामान्यत: एक्यूट चरित्र के होते हैं, धातुगत क्रॉनिक रोगो के बारे में भी, जैसा मैंने पहले ही

Dr S.K.Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

बतलाया है, उनका मौलिक रूप सर्वदा एक समान ही रहता है, खासतौर से सोरा की लक्षणों के सम्पूर्ण क्षेत्र में उनकी जाँच पहले बतलाई गई जाँच की अपेक्षा और अधिक बारीकी से करनी चाहिए, क्योंकि उनमें एक रोगी उनके लक्षणों के केवल एक भाग को प्रदर्शित करता है, दूसरा दूसरे और तीसरा तीसरे भाग को इत्यादि, कुछ अन्य लक्षण प्रदर्शित करते हैं वे भी सम्पूर्ण लक्षणों का (वैसा ही हानिकारक) अंश होता है जो पूरा रोग निर्माण करता है, इसलिए ऐसे धातुगत क्रॉनिक रोग से सम्बन्धित लक्षण समूह, खासतौर से सोरा से सम्बद्ध, को केवल उक्त क्रॉनिक रोग से पीड़ित अकेले अकेले अनेक रोगियों के अवलोकन से ही निश्चय किया जा सकता है, इन लक्षणों के सम्पूर्ण सर्वे और उनके संयुक्त चित्र के बगैर, उक्त रोग की आरोग्यकारक होम्योपैथिक (यथा, एण्टिसोरिक) औषधियों की खोज नहीं की जा सकती और साथ ही ये औषधियाँ इस प्रकार के क्रॉनिक रोग से पीड़ित अनेक रोगियों के लिए ये ही वास्तविक औषधियाँ होती हैं।''

104वें अनुच्छेद में वे अब इस प्रकार रोग का पूर्ण शब्द चित्र तैयार हो जाने के बारे में कहते हैं कि:

''जब रोग के स्पष्ट रूप से और विशिष्टता से युक्त लक्षण समष्टि (totality of symptoms), दूसरे शदों में, जब रोग का चित्र, चाहे वह किसी भी किस्म का हो, एक बार सही तरीके से शब्दांकित (sketched) हो जाए, कार्य का सबसे कठिन भाग पूरा हो जाता है। तब चिकित्सक को रोग का चित्र मिल जाता है, विशेष करके जब यह क्रॉनिक हो, तो यह चिकित्सा करने में हमेशा उसका मार्गदर्शन करेगा, वह इसकी प्रत्येक भाग में जाँच कर सकता है और चारित्रिक लक्षण चुन सकता है और इनका प्रतिरोध करने के लिए, तात्पर्य यह है कि पूरे रोग के लिए होम्योपैथिक तरीके से चुने गये औषधीय पदार्थ के रूप में बहुत समान कृत्रिम रोग शक्ति का उन सभी औषधियों के लक्षणों की तालिका से, जिनके औषधीय गुणों के शुद्ध प्रभावों को निश्चित रूप से जान लिया गया हो, चुनाव कर सकता है। चिकित्सा के दौरान जब वह सुनिश्चित करना चाहता है कि औषधि का क्या प्रभाव हुआ और रोगी की दशा में क्या परिवर्तन हुआ, तो इस ताजे परीक्षण में प्रथम परीक्षण के समय बनाई गई तालिका में से उन लक्षणों को काट देना चाहिए, जिनमें अब सुधार हो चुका है, ऐसा यह चिन्हित करने के लिए करना चाहिए कि क्या शेष बचा है और क्या नए लक्षण आए हैं उनको जोड़ देना चाहिए।''

इस 104वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन नें एक टिप्पणी जोड़ी है जो इस प्रकार है:

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmamgain@gmail.com

''पुरानी पद्धति का चिकित्सक अपनी चिकित्सा के तरीके में इस विषय में कोई कष्ट नहीं उठाता। वह रोगी से उसके रोग के बारे में पूरी परिस्थियों के किसी सूक्ष्म विवरण को नहीं सुनेगा, वह अक्सर उसके कष्टों के विवरण को बीच में ही रोक देगा, ताकि उसको नुस्खा जिसमें अनेक तत्त्व जिनके वास्तविक प्रभावों से वह अनभिज्ञ होता है, लिखने में देर न हो। कोई भी एलोपैथिक चिकित्सक, जैसा कि कहा जा चुका है, रोगी के रोग के मामले में उसकी सम्पूर्ण सूक्ष्म परिस्थियों के बारे में नहीं जानना चाहता है, तिस पर भी जिन्हें वह सुनता है उन्हें लिखता ही नहीं है। कई दिन बाद रोगी को देखने पर उसे उसके थोड़े से विवरण की भी याद नहीं रहती है, जो उसने पहली बार सुने थे (क्योकि वह इस बीच अन्य विभिन्न रोगों से पीड़ित अनेक रोगी देख चुका होता है) उन्हें भी उसने एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल दिया था। बाद वाली विजिट्स में वह केवल कुछ सामान्य प्रश्न पूछता है, कलाई पर नब्ज देखने, जीभ देखने का प्रदर्शन करता है और उसी समय दूसरा नुस्खा पूर्ववत् विवेकहीन सिद्धान्तों के आधार पर लिख देता है अथवा पहले वाले को ही चालू रखने के लिए कह देता है (बड़ी मात्रा में दिन में कई बार) और आकर्षक ढंग से झुक कर उस पहले प्रहर में पचासवें या साठवें रोगी को देखने के लिए इसी बेपरवाह तरीके से शीघ्रता से निकल पड़ता है। जिस व्यवसाय में वास्तव में किसी भी अन्य व्यवसाय से अधिक प्रत्येक व्यक्तिगत रोगी की दशा की समीक्षा, विवेकपूर्ण, सतर्क परीक्षण की जरूरत होती है और जिस पर विशेष चिकित्सा निर्भर करती है, उसी व्यवसाय में अपने आप को चिकित्सक और विवेकशील प्रैक्टिशनर कहने वाले व्यक्ति ऐसा व्यवहार करते हैं। परिणाम, जिसकी नैसर्गिक आशा थी, निरपवाद रूप से लगभग बुरा ही होता है, फिर भी रोगियों को उन्हीं के पास जाना पड़ता है, एक तो आंशिक रूप से दूसरा कोई विकल्प नहीं होता, और दूसरे आंशिक रूप से फैशन के कारण।''

सब प्रकार के यथा एक्यूट, क्रॉनिक, संक्रामक, छिटपुट ढंग से होने वाले और धातुगत दोषों के प्रभाव से होने वाले रोगों के लक्षण संग्रह के लिए अनुच्छेद 84 से 104 तक महर्षि हैनिमैन ने रोग के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए विस्तार से प्रश्न सुझाए है। रोगी को निरोग करने के लिए कि 'रोग में क्या निरोग करना है?' वास्तव में यही जानकारी एकमात्र तरीका है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है आज के युग में शरीर की प्रक्रियाओं यथा; रक्त, मल, मूत्र, इत्यादि में, तथा विभिन्न आंतरिक अंगों में रोग के कारण क्या परिवर्तन हो गये हैं इन सबको तो आधुनिक अति उन्नत उपकरयों के द्वारा जाना जा सकता है। परन्तु रोग में क्या आरोग्य करना है या रोग के कारण प्रत्येक

Dr. S.K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

रोगी को क्या कष्ट हो रहे हैं, रोगी के मानसिक, व्यवहारिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में क्या परिवर्तन हुए हैं किसी आधुनिकतम उपकरण से भी नहीं जाना जा सकता है। केवल लक्षण समष्टि (totality of symptoms) ही एकमात्र रास्ता है। लेकिन आज के भागमभाग के युग में यह विधि अत्यधिक कठिन हो गई है। मनुष्य की जीवनशैली ही बदल गई है दूसरे कम से कम हमारे देश में हर बीमारी के लिए एलोपैथिक औषधियाँ बहुत आसानी से उपलब्ध हैं साथ ही साधारण रोगों के लिए कौन सी दवा है ज्यादातर आदमी जानते हैं, भले ही यह जानकारी अधूरी होती है, अत: एक तो, कोई सा भी कष्ट होते ही लोग बिना विवेक के कोई सी दवा स्वयं खा लेते हैं, दूसरे, लोग पहले सहज उपलब्ध एलोपैथिक चिकित्सक के पास ही जाते हैं, जैसा महर्षि हेनिमैन ने अनुच्छेद 104 की टिप्पणी में कहा है एलोपैथिक पद्धति में आज भी पुराना विवेकहीन तरीका प्रचलित है ऊपर से संश्लेषित दवाओं का उपयोग होता है जिनसे रोग और जटिल हो जाते हैं और जब रोग बिगड़ जाता है तब होम्योपैथिक चिकित्सक के पास आते हैं। अत: अधिकांश रोगी रोग के घटने, बढ़ने की तथा अनेक स्थितियों की परिस्थितियों के बारे में अनभिज्ञ होते हैं। अत: उपयोगी लक्षण प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया है। फिर भी चतुराईपूर्वक प्रश्न करने पर काफी कुछ संकेत मिल ही जाते हैं। यही मैं कर भी रहा हूँ। बंगाल निवासी होम्योपैथिक जगत के प्रतिष्ठित डा0 जे0 एन0 कांजीलाल नें सन् 1985 में अंग्रेजी में एक संक्षिप्त 'लक्षण संग्रह का प्रारूप' (Case Record Form) मुझको भेजा था जिसका हिन्दी अनुवाद होम्योपैथी के विद्यार्थियों और चिकित्सकों के उपयोग के लिए यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि सबके लिए व्यस्त दैनिक प्रैक्टिस में मार्ग दर्शक का काम करेगा।

लक्षण संग्रह प्रारूप

एवं

रोगी विविरण तैयार करने के लिए मार्गदर्शक

रोग का पूर्व निदान (नाम) .....

रोगी का नाम ..... आयु..... लिंग पु/म

पिता/पत्नी का नाम ..... मो0 न0 ईमेल

पता ..... व्यवसाय .....

.....

वैवाहिक स्थिति विवाहित/अविवाहित/विधुर/विधवा किस आयु में .....

महिलओं के लिए कितने प्रसव हुए ..... जीवित ..... मृत ..... गर्भपात .....

Dr. S. K. Mamgain Email: drmangain@gmail.com

1. वर्तमान कष्ट क्या है? (उनकी उग्रता के अनुसार एक के बाद दूसरे को क्रम से लिखें) प्रत्येक के बारे में पूरी जानकारी अलग अलग विस्तार से लिखें यथा:
   - कष्ट कब से शुरु हुआ, जहाँ तक याद हो सही समय बतलाएँ।
   - रोग की पूर्व प्रकृति क्या थी? आपने शुरु में क्या कष्ट अनुभव किए थे यथा दर्द, दुखन, जलन, कसाव, कमजोरी, सुन्नपन, बेचैनी, सूजन, इत्यादि, क्या?
   - कष्ट शरीर के किस अंग में होता है?
   - उन परिस्थितियों को बताएँ जिन में कष्ट घटता या बढ़ता है? यथा दिन या रात के किस समय, आराम करते समय या गति करते समय, खाने के बाद या खाने से पहले? इत्यादि, कब?
   - कष्ट कैसे शुरु हुआ? क्या उसका कोई विशेष कारण है? (मानसिक – आघात, चिन्ता, भय आदि: शारीरिक – खान पान की गड़बड़, अति श्रम, चोट, आदि: या पर्यावरण सम्बन्धि – अत्यधिक गरमी, ठण्ड या भीगने का प्रभाव) बतलाएँ।
   - अब तक किन औषधियों का सेवन किया है? उनका क्या परिणाम मिला? अन्तिम बार कौन सी दवा ली, उसका नाम अवश्य बतलाएँ।
   - यदि कोई दर्द होता है तो बताएँ किस स्थान पर, उसकी अनुभूति कैसी होती है? (दुखन, जलन, काटने जैसी, चबाने जैसी, इत्यादि, किस प्रकार की?) दर्द किन दशाओं में घटता या बढ़ता है, स्पष्ट बताएँ।

   जन्म से अब तक हो चुके रोगों का इतिहास यथाक्रम लिखें – क्या चिकित्सा की गई और उसके क्या परिणाम मिले? विशेष यप से – हूपिंग कफ, खसरा, चिकन पॉक्स, मम्पस्, गले के कष्ट, ब्रॉन्किाइटिस, निमोनिया, अतिसार, इत्यादि?
   - जन्म से अब तक क्या किसी तरह का चर्म रोग हुआ? क्या चिकित्सा की गई?
   - वैक्सिनेशन, टीके, ट्रिपल एण्टिजन, बी सी जी, ए टी एस इत्यादि कितने लगे? उनका क्या परिणाम हुआ?
   - कोई यौन रोग तो नहीं हुआ? गनोरिया, ग्लीट, सिफिलिस आदि उनकी क्या चिकित्सा की गई और क्या परिणाम मिले?

पारिवारिक इतिहास: निकट सम्बन्धियों में पागलपन, मिरगी, रियूमेटिज्म, दमा, ट्यूबरकुलोसिस, कैन्सर, यौन रोग, चर्म रोग, डायबिटीज, उच्च रक्तचाप, पेप्टिक अल्सर, पित्त पथरी, मूत्र पथरी, बवासीर, फिस्चुला, इत्यादि?

व्यक्तिगत इतिहास:-
   - क्या आप किसी प्रकार का मानसिक कष्ट यथा: दुख, उदासी, क्रोध, इत्यादि अनुभव करते हैं? या शारीरिक कष्ट (दर्द, सुन्नपन, सूजन, प्रदाह, इत्यादि) पारिवारिक जीवन में या व्यवसाय में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव करते है? स्पष्ट करें।
   - कोई यौन बुरी आदत?

Dr.S. K Mamgain: Email: dmamgain@gmail.com

- क्सा किसी प्रकार के नशे यथा: धूम्रपान, तम्बाकू खाना, गुटका खाना, मादक पेय, इत्यादि की लत है?
- क्या दैनिक नित्य नियम यथा: भोजन करने, सोने, आराम करने, इत्यादि में किसी प्रकार की अनियमितता है?

शरीर सम्बन्धि प्रक्रियायें:

भूख – भूख ज्यादा या कम। क्या नमक, मिर्च, मीठा, खट्टा, कड़वा, तला हुआ, मांस, मछली, अण्डा, दूध, चावल, फल, ब्रैड, ठण्डा या गरम भोजन तथा पेय, बरफ, अपाच्य बस्तुएँ यथा चॉक, मिट्टी, स्लेट पेंसिल, कोयला या ऐसी कोई अन्य पदार्थ, इत्यादि, खाने की प्रबल इच्छा या अनिच्छा होती है? क्या ऐसी किसी चीज के सेवन से कोई कुप्रभाव होता है?

- क्या उपरोक्त वस्तुओं के सेवन से किसी प्रकार का विपरीत प्रभाव पड़ता है, स्पष्ट करें।
- स्वाद – किसी खाने या पीने की वस्तु से स्वाद में कोई असामान्य बात अनुभव होती है? मुख में कोई खराब स्वाद या गन्ध अनुभव करते हैं?
- खुराक कितनी है? क्या बहुत कम या अधिक खाते हैं? खाना खाने या कोई पेय पीने के बाद कोई असुख अनुभव करते हैं, स्पष्ट करें?

प्यास – अत्यधिक या बिल्कुल नहीं? ठण्डे या गरम पेय की इच्छा?

- मुख में कोई सूखापन? प्यास के साथ या विना प्यास?
- पानी पीने के बाद कोई तकलीफ?

पेट/उदर – किसी प्रकार का कोई दर्द, फूलना या किसी अन्य प्रकार का कोई कष्ट? किी प्रकार की कोई असुखकर अनुभूति?

शौच – मल में या मल त्याग करने में या गुदा में कोई कष्ट? कब्ज या अतिसार, मल की प्रकृति, मल का रंग, कोई गंध, मल त्याग की बारंबारता, इत्यादि, या कोई अन्य कष्ट या असामान्य बात, इत्यादि या कोई अन्य कष्ट या असाधारणता?

मूत्र – मूत्र में या मूत्रत्याग करने में किसी प्रकार का कष्ट होता है या कोई अनूठापन है – यथा दर्द, चिड़चिड़ाहट, मूत्र की रुकावट, बार बार मूत्र, अधिक मात्रा में या अल्प मात्रा में मूत्र, मूत्र में कोई गंध या मूत्र में अथवा मूत्र त्याग करने में किसी प्रकार का अन्य कष्ट या असाधारणता, स्पष्ट करें?

पसीना – कोई असाधारणता यथा पसीना बिल्कुल न आना या अत्यधिक आना? इससे कोई गंध आना? पसीना एक ओर या अकेले अंग में आना?

यौन प्रक्रिया – नपुंसकता या अत्यधिक यौन इच्छा या अन्य कोई असाधारण कष्ट?

नींद और स्वप्न – अनिद्रा या अत्यधिक नींद या नींद के साथ कोई असाधारण बात? क्या किसी प्रकार के स्वप्न आते हैं? कैसे?

मासिक प्रक्रिया – क्या मासिक नियमित होते हैं? यदि नहीं तो उनकी अवधि कितनी होती है?

Dr S. K. Mangal: Email: drmangain@gmail.com

- मासिक की मात्रा के बारे में स्पष्ट बतलाएँ, बहुत कम या अत्यधिक? मासिक या प्रदर स्रावों की असाधारणता के बारे में स्पष्ट बतलाएँ? मासिक या प्रदर के पहले, साथ में या बाद में कोई असाधारण अनुभूति यथा: दर्द, मितली, उबकाई, उलटी, आदि होती है तो स्पष्ट करें?
- दर्द होते हैं तो कहाँ कहाँ होते हैं? उनकी क्या अनुभूति होती है?
- श्वेत प्रदर के बारे में यदि होता है तो उसकी पूरी जानकारी दें?
- क्या वह जलनकारक होता है? क्या उससे खुजली होती है?
- पतला, गाढ़ा, रंग, गंध, समय आदि की पूरी जानकारी दें?

गर्भ के सम्बन्ध में - कुल कितने प्रसव हुए? उनकी आयु कितनी कितनी है? उनका स्वास्थ्य कैसा है?

- गर्भपात हुए तो कितने? किस कारण से हुए? गर्भावस्था के समय कोई असाधारण कश्ट हुआ?
- प्रसव के समय या बाद में कोई असाधारण कष्ट हुआ? स्पष्ट बतलाएँ।

स्वभाव – मानसिक दशा में बतलाएँ प्रसन्न, दुखी, क्रोधी, मजाकिया, खुश, रोना या कैसा है?

- तापमान, मौसम आदि का रोगिणी के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- रोगिणी की शारिरिक गठन कैसी है? चुस्त, सुस्त, बेचैन, थकी थकी आदि, कैसी?

रोगी की पैथोलॉजिकल, रेडियोलॉजिकल आदि की रिपोर्ट की प्रति संलग्न करें।

*

105वें अनुच्छेद में लक्षण संग्रह करने के लिए, जो कि रोग को आरोग्य करने के महत्वपूर्ण कार्य का पहला चरण है, विस्तृत रूप से निर्देशित करने के बाद इस दिशा में अगला कदम बढ़ाते हुए महर्षि हैनिमैन कहते है कि:

''एक सच्चे चिकित्सक के कार्य का दूसरा चरण प्राकृतिक रोगों को निरोग करने के लिए अभीष्ट उपकरणों के ज्ञान को प्राप्त करने से सम्बन्धित है जो औषधियों की रोग कारक क्षमता की खोज है, ताकि आरोग्य करने के लिए बुलाए जाने पर वह उनके लक्षणों की तालिका में से आरोग्य किए जाने वाले रोग के समस्त प्रमुख लक्षणों के अधिकाधिक समान कृत्रिम रोग लक्षण उत्पन्न कर सकने में समर्थ हो उस एक का चुनाव कर सके।''

चिकित्सा कार्य में रोग में वास्तव में क्या आरोग्य करने के लिए पहला महत्वपूर्ण चरण है रोग के उन लक्षणों का संकलन करना जिनके कारण रोगी अपनी स्वस्थ दशा से भिन्न कष्ट पा रहा है। विभिन्न प्रकार के रोगों के उन लक्षणों को संकलित करने के

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

लिए महर्षि हैनिमैन ने 84वें अनुच्छेद से 104वें अनुच्छेद तक पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है। अब दूसरा महत्वपूर्ण चरण है यह ज्ञान कि 'औषधि में आरोग्यकारक क्या है' अर्थात् औषधि की रोगकारक क्षमता – रोग लक्षण पैदा करने की क्षमता। अत: रोग के इन कष्ट कर लक्षणों को दूर करने के लिए अर्थात् रोग को आरोग्य करने के लिए जिस उपकरण की जरूरत है वह है एक ऐसी औषधि की खोज जो इन कष्टकर लक्षणों को ल्खण समानता के आधार पर आरोग्य का सके, इसके लिए अनेक औषधियों के कृत्रिम रोग उत्पन्न कर सकने की क्षमता से प्राप्त लक्षणों की तालिका में से से एक ऐसी औषधि का चुनाव करना जिसने प्राकृतिक रोग के प्रमुख लक्षणों के समान कृत्रिम रोग लक्षण उत्पन्न किए हों।

औषधि की रोग लक्षण पैदा करने की क्षमता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अगले कुछ अनुच्छेदों में उन्होंने स्पष्ट किया है। अत:

106वें अनुच्छेद में कहते हैं कि:

''अनेक औषधियों के सम्पूर्ण रोगकारक प्रभाव ज्ञात होने चाहिएँ, कहने का तात्पर्य यह है कि उनमें से अधिकांश प्राकृतिक रोगों की उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि का चुनाव कर सकने में समर्थ होने से पूर्व सर्व प्रथम प्रत्येक औषधि के रोग लक्षण और विशेष रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य में परिवर्तन पैदा कर सकने की प्रत्येक औषधि की क्षमता का यथा सम्भव अवलोकन अवश्य हो जाना चाहिए।''

107वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''यदि, यह (*औषधियों की रोगकारक क्षमता*) सुनिश्चित करने के लिए, औषधियों का उपयोग केवल रोगियों पर किया जाय, तो भले ही वे मात्र अकेली भी दी जाएँ, तब उनके वास्तविक प्रभाव के बारे में कुछ भी सुनिश्चित रूप से नहीं जाना जा सकता है या बहुत थोड़ा सा जाना जा सकता है, क्योंकि औषधि के द्वारा स्वास्थ्य में बांछित अनूठे परिवर्तन रोग के लक्षणों के साथ घुलमिल जाएँगे अत: कदाचित ही स्पष्ट रूप से जाने जा सकेंगे।''

108वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''इसलिए, व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर औषधियों के अनूठे प्रभावों को जानने का दूसरा कोई तरीका सम्भव नहीं है – प्रत्येक औषधि अकेले अकेले, स्वस्थ शरीर और मस्तिष्क पर क्या परिवर्तन, लक्षण और संकेत उत्पन्न कर सकती है, कहने का

Dr S. K. Mangalin; Email: drmamgain@gmail.com

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक औषधि स्वस्थ व्यक्तियों पर क्या रोग तत्त्व उत्पन्न कर सकने में समर्थ है, इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अनेक औषधियों को सीमित मात्रा में स्वस्थ व्यक्तियों पर प्रयोगात्मक रूप से उपयोग करने के अतिरिक्त कोई भी सुनिश्चित और अधिक प्राकृतिक तरीका नहीं है, क्योंकि जैसा कि (24वें अनुच्छेद से 27वें अनुच्छेद में) प्रदर्शित किया चुका है कि औषधियों की आरोग्यकारक क्षमता उनमे निहित मनुष्य के स्वास्थ्य को परिवर्तित करने की शक्ति पर निर्भर करती है जो मानव द्वारा अवलोकित की जाती है।''

इस अनुच्छेद की पाद टिप्पणी में महर्षि हैनिमैन का कहना है कि:

''जहाँ तक मुझे ज्ञात है पिछले दो हजार पाँच सौ वर्षो में महान और अमर अल्ब्रैख वोन हेलर के अतिरिक्त किसी एक भी चिकित्सक ने मनुष्य के स्वास्थ्य को अस्तव्यस्त कर सकने वाले औषधियों के इस शुद्ध एवं अनूठे इतने अधिक प्राकृतिक, नितान्त आवश्यक और एक मात्र मौलिक तरीके से जाँच करके कि प्रत्येक औषधि जो रोग दशा उत्पन्न कर सकती है उसी को आरोग्य भी कर सकती है, यह जानने का प्रयास नहीं किया।''

109वें अनुच्छेद में इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''मैं ही प्रथम व्यक्ति हूँ जिसने यह रास्ता खोल दिया कि औषधियों के एकमात्र होम्योपैथिक उपयोग के द्वारा ही मानव मात्र के रोगों का सुनिश्चित आरोग्य सम्भव है, जो मानवमात्र के लिए ईश्वर कृपा से परिपूर्ण है, जिसे मैंने धैर्य के साथ प्रोत्साहित किया जो महान सत्य के प्रति केवल सम्पूर्ण समर्पण के द्वारा ही प्रकट और दृढ़ रखा जा सकता है।''

इस 109वें अनुच्छेद में 'एकमात्र होम्योपैथिक उपयोग' के बारे में पहली पाद टिप्पणी में वे दृढ़ विश्वास के साथ कहते हैं कि:

''डायनामिक (अर्थात् ... नितान्त शल्यक्रिया के योग्य रोगों के अतिरिक्त समस्त) रोगों को आरोग्य करने का होम्योपैथी के अतिरिक्त कोई अन्य सच्चा और श्रेष्ठ तरीका सम्भव नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार दो नियत बिन्दुओं के बीच एक से अधिक सरल रेखाएँ खींचना असम्भव है। जो यह कल्पना करता है कि इसके अतिरिक्त रोगों को आरोग्य करने के अन्य तरीके भी हैं, वह होम्योपैथी के मौलिकरूप को नहीं समझ सका है और न ही वह सावधानीपूर्वक इसकी प्रैक्टिस कर पाया है और न ही वह उपयुक्तरूप से सम्पन्न किए गए होम्योपैथी से आरोग्य हुए मामले देख या पढ़ पाया है: दूसरी ओर, न ही वह कभी दूसरे सभी आधारहीन

Dr S.K. Mamgain Email: drmamgain@gmail.com

एलोपैथीक से चिकित्सित रोगों के बुरे और यहाँ तक कि भयंकर प्रभावों को समझ पाया है, यदि वह ऐसी ढीली उदासीनता के साथ एकमात्र सच्ची आरोग्य कला के साथ चिकित्सा के उन हानिकारक तरीकों के साथ बराबरी पर रखता है, या बाद वाले इन तरीकों को होम्योपैथी के सहायक होने का आरोप लगाता है जैसा बाह्य साधन से हो ही नही सकता! मेरे सच्चे, विवेकशील अनुयायी, शुद्ध होम्योपैथ अपनी सफलता से, लगभग कभी भी असफल न होने वाली चिकित्सा के द्वारा ऐसे लोगों को अच्छा सबक सिखा सकते हैं।''

इसी अनुच्छेद की दूसरी पादटिप्पणी में उन्होंने कहा है कि:

''मेरे इन परिश्रमों के प्रतिफल, जितना उस काल में सम्भव हो सकता था उतने परिपूर्ण मैंने मेटीरिया मेडिका भाग । और ।। में तथा क्रॉनिक डिजीजेज भाग । और ।। में अभिलिखित किए हैं।''

110वें अनुच्छेद में वे औषधीय पदार्थों के विकृत प्रभावों के बारे में कहते हैं कि:

''तथापि, मैंने देखा है कि औषधीय पदार्थों द्वारा बड़ी मात्रा में, भूल से या अपनी अथवा दूसरों की मृत्यु करने के विचार से या अन्य परिस्थितियों के कारण, स्वस्थ व्यक्तियों के पेट में जाने से विकृत विकारों के परिणामों को पूर्व लेखकों ने भी अवलोकित किया था, जब मैं उन्हीं पदार्थों का स्वयं अपने और स्वस्थ व्यक्तियों के ऊपर परीक्षण कर रहा था तो परिणाम मेरे अवलोकनों के अत्यधिक समान थे। इन लेखकों ने इन शक्तिशाली पदार्थों के परिणामों को अनिष्टकारी प्रभावों की विषाक्तता के प्रमाण के इतिहास के रूप में इनका विवरण दिया है, खासतौर से दूसरों को इनका उपयोग करने के प्रति सावधान करने के लिए; आंशिक रूप से अपनी कार्यकुशलता की धाक जमाने के लिए भी कि जब उन्होंने इन औषधियों का इन खतरनाक दुर्घटनाओं से लड़ने के लिए उपयोग किया, तो धीरे धीरे स्वास्थ्य स्थापित हो गया, लेकिन आंशिक रूप से, जब इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति उनकी चिकित्सा में मर गया, तो इन पदार्थों के, जिन्हें उन्होंने विषाक्त नामित किया था, इनके खतरनाक चरित्र में औचित्य सिद्ध करने के लिए भी लिखा। इनमें से किसी ने भी कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि जो इन पदार्थों के जो लक्षण उन्होंने केवल हानिकारक और विषाक्त चरित्र के अभिलिखित किए थे, इन दवाओं के वे लक्षण प्राकृत रोगों के लक्षणों के समान लक्षणों को समाप्त करके आरोग्य करने की शक्ति को सुनिश्चित रूप से प्रकट करने वाले थे, कि ये उनका रोगजनक प्रतिभास होम्योपैथिक आरोग्यकारक क्रिया की सूचनाएँ थीं, कि स्वस्थ शरीर के स्वास्थ्य में परिवर्तन करने

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangain@gmail.com

की औषधियों की क्षमता अवलोकन करना ही उनकी आरोग्यकारक शक्ति को सुनिश्चित करने का एकमात्र सम्भव तरीका है: क्योंकि, रोग को आरोग्य करने वाली उपलब्ध औषधियों की शुद्ध, अनूठी शक्तियाँ न तो प्रतिभापूर्ण पूर्व कल्पनाओं से, न ही गन्ध, स्वाद या दवाओं के रूप से, न ही रासायनिक विश्लेषण से, और न ही रोगों में एक साथ कई दवाओं के मिश्रण (प्रिस्क्रिप्शन) के उपयोग से सीखी जा सकती हैं; कभी यह कल्पना तक नहीं की गयी थी कि ये औषधीय रोगों के इतिहास जो आरम्भिक समय से आज तक पूरी तरह मिथ्या तर्कों और काल्पनिक बातों से भरे थे - कहने का तात्पर्य जो थे ही नहीं - एक दिन सच्ची और शुद्ध मेटीरिया मेडिका के प्रारम्भिक सिद्धान्त बनेंगे।''

111वें अनुच्छेद में वे अपने अवलोकनों के सम्बन्ध में कहते हैं कि:

''पुराने अवलोकनों के साथ औषधियों के शुद्ध प्रभावों के मेरे अवलोकनों के साथ समानता हमें आसानी से आश्वस्त करती है - यद्यपि वे किसी चिकित्सीय संदर्भ के बिना लिखे गए थे - और अत्यधिक समानता वाले इन वृत्तांतों के साथ ही विभिन्न लेखकों द्वारा इसी प्रकार के दूसरे वृत्तांत हमें आसानी से आश्वस्त कर देते हैं कि औषधीय पदार्थ स्वस्थ मानव शरीर में क्रिया करके प्रकृति के सुनिश्चित, शाश्वत नियम के अनुसार रोगजनक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, और इनके इस सद्गुण के कारण प्रत्येक अपने अनूठे चरित्र के अनुसार निश्चित, विश्वसनीय रोग लक्षण उत्पन्न कर सकने में समर्थ बनाते हैं।''

112वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन उन पुराने नुस्खों (प्रिस्क्रिप्शन्स) में रोगियों को अत्यधिक बड़ी मात्राओं में दी गई औषधियों द्वारा उत्पन्न प्रभावों के बारे में कहते हैं कि:

''उन पुराने नुस्खों की अत्यधिक बड़ी मात्राओं में खायी गयी औषधियों के अक्सर भयंकर प्रभावों से, जो दशाएँ शुरु में उत्पन्न हुई थीं उनके एकदम विपरीत प्रकृति की कुछ खास दशाएँ उत्पन्न हुई, हम देखते हैं कि आरम्भ में नहीं बल्कि इन दुखदायी घटनाओं के अन्त में उत्पन्न हुई। ये प्राथमिक क्रिया के एकदम विपरीत लक्षण (63वाँ अनुच्छेद) अथवा जीवनीशक्ति पर औषधियों की उपयुक्त क्रिया, शरीर की जीवनीशक्ति की प्रतिक्रिया हैं अर्थात् औषधि की द्वितीयक क्रिया (62वें से 67वें अनुच्छेद) तथापि, जिनके कम मात्राओं में स्वस्थ शरीरों पर प्रयोंगो के समय कदाचित ही या मुश्किल से ही कभी कोई चिन्ह दिखलाई पड़ता है और अल्प मात्राओं से तो वह भी नहीं।

Dr. S.K. Mamgain; Email: drmamgain@gmail.com

होम्योपैथिक आरोग्यकारक प्रक्रिया में जीवित शरीर इनसे मात्र इतनी प्रतिक्रिया करता है जो स्वास्थ्य को पुन: स्वस्थ दशा तक लाने के लिए आवश्यक होती है (67वाँ अनुच्छेद)।''

113वें अनुच्छेद में उन्होंने 112वें अनुच्छेद के एकमात्र अपवाद के बारे मे लिखा है कि:

''इनका एकमात्र अपवाद हैं नशे वाली (narcotic) औषधियाँ। क्योंकि, वे अपनी प्राथमिक क्रिया में कभी कभी संवेदिता और अनुभूति को हर लेती हैं और कभी कभी क्षोभ (irritability) को, यहाँ तक कि स्वस्थ शरीरों पर परीक्षण के लिए कम (मर्यादित) मात्राओं में भी द्वितीयक क्रिया में उनसे अक्सर बढ़ी हुई संवेदिता (तथा और अधिक क्षोभ) देखे गए है।''

114वें अनुच्छेद में इनका कहना है कि:

''इन नशे वाले पदार्थो के अतिरिक्त, स्वस्थ शरीरों पर परीक्षणों में मर्यादित मात्राओं से हम केवल प्राथमिक क्रिया का अवलोकन करते हैं, अर्थात्, उन लक्षणों का अवलोकन करते हैं जो कि औषधि मानव के स्वास्थ्य में, थोड़े या लम्बे समय के लिए एक रोगी दशा विकसित करती है।''

115वें अनुच्छेद में इस संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''इन लक्षणों में, कुछ औषधियों के मामलों में, जो थोड़े नहीं हैं, आंशिक या कुछ विशेष परिस्थितियों में, जो लक्षण पहले या बाद में प्रकट हुए थे उनके एकदम विपरीत लक्षण प्रकट हुए, लेकिन उनको वास्तविक द्वितीयक लक्षण नहीं, अथवा जीवनीशक्ति की प्रतिक्रिया मात्र माना जाता है, लेकिन वे केवल प्राथमिक क्रिया की विभिन्न प्रत्यावर्ती (alternating) दशाओं के आवेगों को प्रदर्शित करते हैं, उनको प्रत्यावर्ती क्रियाएँ कहा जाता है।''

116वें अनुच्छेद में उन्होंने कहा है कि:

''औषधियों द्वारा कुछ लक्षण बार बार उत्पन्न किए जाते हैं - कहने का मतलब है अधिकांश व्यक्तियों में, दूसरे अधिक विरल (rarely) या थोड़े व्यक्तियों में और कुछ मात्र बहुत कम स्वस्थ शरीरों में उत्पन्न किए जाते हैं।''

Dr. G. K. Manguni; Email: drmamgain@gmail.com

117वें अनुच्छेद में वे सहज-विगुणताएँ (idiosyncracies) जिन्हें आज एलर्जी (allergies) के नाम से जाना जाता है, उनके विषय में स्पष्ट करते हुए बतलाते हैं कि:

''बाद वाली श्रेणी तथाकथित सहज-विगुणताओं (idiosyncracies) से सम्बन्ध रखती हैं जिसका मतलब है विशिष्ट शारीरिक गठन जो, यद्यपि सामान्यत: तो स्वस्थ होते हैं, लेकिन उनको कुछ वस्तुओं से न्यूनाधिक रोग ग्रस्त हो जाने की प्रवृत्ति होती है, जबकि वे बहुत से दूसरे व्यक्तियों पर कोई प्रभाव डालतीं प्रतीत नहीं होतीं। लेकिन प्रत्येक पर प्रभाव न डाल सकने की यह अक्षमता केवल प्रत्यक्ष रूप में है। क्योंकि मानव स्वास्थ्य में ऐसा और साथ ही अन्य दूसरे अस्वस्थ परिवर्तन होने के लिए दो बातें आवश्यक हैं - अर्थात्, एक प्रभावित करने वाले पदार्थ में अन्तर्निहित शक्ति, दूसरी शरीर को जीवित रखने वाली जीवनीशक्ति की इसके द्वारा प्रभावित होने की क्षमता - इन तथाकथित सहज-विगुणताओं में स्वास्थ्य में सुस्पष्ट विकृतिदोष मात्र इन विशिष्ट शारीरिक गठनों पर ही नहीं डाला जा सकता, लेकिन यह उन चीजों पर भी निर्भर करता है जो उनको पैदा करती हैं, जिनमें सभी मानव शरीरों को प्रभावित करने की क्षमता होनी चाहिए, फिर भी कुछ इस प्रकार कि होती है कि केवल कुछ ही स्वस्थ शरीर उनके अस्वस्थ प्रभावों को सुस्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने की प्रवणता वाले होते हैं। वास्तव में ये कारक प्रत्येक स्वस्थ शरीर को प्रभावित करने में सक्षम होते हैं यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि जब इनका औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है तो ये प्रत्येक रोगी पर इनके लक्षणों, जैसे ये तथाकथित सहज-विगुणता प्रवण व्यक्तियों पर उत्पन्न करने में समर्थ होते है, के समान लक्षणों के लिए प्रभावकारी होम्योपैथिक सेवा प्रदान करते हैं।''

सहज-विगुणता के कारण प्रभावित होने के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लिए महर्षि हैनिमैन ने इस 117वें अनुच्छेद की एक टिप्पणी दी है जिसमें उन्होंने लिखा है कि:

''कुछ थोड़े से व्यक्ति गुलाब की गन्ध से अचेत हो जाने की प्रवणता वाले होते हैं और सीपी, केकड़े या रोज़ ऑफ बारबेल खाने से या कुछ प्रकार की शूमैक की पत्तियाँ छूने से ही अन्य बहुत सी रोग की तथा कभी कभी खतरनाक दशाओं में पड़ जाते हैं।''

117वें अनुच्छेद के कथन का स्पष्ट संदेश यह है कि कुछ व्यक्ति कुछ खास पदार्थों की प्राथमिक क्रिया या कुछ खास दशाओं के प्रति विशेष रूप से अत्यधिक संवेदनशील होते और उनकी उपस्थिति में एकदम और कभी कभी गम्भीर रूप से बीमार हो जाते हैं। पहले, महर्षि हैनिमैन के समय में ऐसे व्यक्तियों की इस प्रवणता को सहज-विगुणता

Dr. S. K. Mangalini Email: drmangan@gmail.com

का नाम दिया जाता था जबकि इसके लिए आज के समय में एलर्जी नाम उपयोग किया जाता है। इस प्रकार प्रभावित तो अन्य लोग भी होते हैं परन्तु उनकी संवेदनशीलता अधिक न होने के कारण उन पर प्राथमिक क्रिया का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। परन्तु रोग की दशा में हर व्यक्ति इतना संवेदनशील हो जाता है कि इसी पदार्थ से अत्यल्प मात्रा में ही होम्योपैथिक औषधि के रूप में लक्षणों की समानता के आधार पर उपयोग करने से हर रोगी व्यक्ति समान रूप से प्रभावित हो जाता है। मेरे अनुभव में भी इस प्रकार की तथाकथित भिन्न भिन्न एलर्जी से लम्बे समय से पीड़ित अनेक रोगी जो आज की चमत्कारिक एण्टिएलर्जिक औषधियों के लम्बे समय तक उपयोग करने के बाद भी यथास्थिति में थे उपयुक्त होम्योपैथिक औषधियों की अत्यल्प मात्राओं से थोड़े से समय में ही स्थायी रूप से मुक्त हो गए और सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैंने (डा0 ममगाईं) भी ऐसे व्यक्ति देखे हैं जिनमें से कुछ धूल से कुछ आम और लीची के बौर के समय, कुछ अन्य गन्धों से भयंकर जुकाम, आँख, नाक से पानी बहने के साथ हीछींकों के दौरों, आँख या नाक की भीषण खुजली तथा श्वास कष्ट आदि से पीड़ित पाये हैं, जो अनेक वर्षों से पीड़ित थे और एण्टि-एलर्जिक दवाओं दवाओं के सहारे तात्कालिक लाभ के भरासे समय गुजारते थे, उपयुक्त होम्योपैथिक औषधियों से थोड़े समय में ही स्थायी रूप से स्वस्थ हो गए।

118वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''प्रत्येक औषधि मानव शरीर पर विशिष्ट प्रभाव प्रदर्शित करती है, जैसा ठीक उसी के समान तरीके से दूसरी किसी अन्य प्रकार के औषधीय से उत्पन्न नहीं होता।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में उन्होंने लिख है कि:

''श्रद्धेय ए0 वी0 हेलर द्वारा भी इस तथ्य को अनुभव किया गया था।''

119वें अनुच्छेद में पौधों की प्रजातियों की भिन्नता को बतलाते हुए उनके प्रभाव की भिन्नता को पुष्टि करते हुए वे कहते हैं कि:

''उतनी ही निश्चितता के साथ जितनी कि पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ इसके वाह्य रूप में, जीवन की रीति और उगने में, दूसरी अन्य प्रजातियों और वंश के पौधों के स्वाद और गंध में, उतना ही निश्चित रूप से भिन्न होते हैं, जितना कि प्रत्येक खनिज और लवण दूसरों से इसके आंतरिक भौतिक एवं रासायनिक गुणों में भिन्न होता है (जो अकेला ही एक का दूसरे से संदेह दूर करने में काफी होता) वे सब आपस में रोगजनक गुणों में – फलस्वरूप उनके अपने थेराप्यूटिक प्रभावों में भी इतना

Dr S.K. Mangain: Email: drmangain@gmail.com

ही अधिक निश्चित रूप से भिन्न और अलग अलग होते हैं। इनमें से प्रत्येक पदार्थ मानवों के स्वास्थ्य में एक नियत तरीके से, विशिष्ट एवं भिन्न परिवर्तन उत्पन्न करता है, अत: एक की दूसरे के साथ मिल जाने की सम्भावना ही नहीं रहती।''

प्रत्येक औषधि के सम्यक ज्ञाताओं के सम्बन्ध में इस 119वें अनुच्छेद की एक टिप्पणी में वे कहते हैं कि:

''कोई भी व्यक्ति जिसे प्रत्येक अकेले पदार्थ का मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव दूसरे किसी भी पदार्थ से भिन्न प्रभाव का पूर्ण ज्ञान हो और जो उनके विलक्षण अन्तर को समझता हो तो वह तुरत समझ जाएगा कि चिकित्सा के दृष्टिकोण से किंचित भी कोई बराबर की, प्रतिनियुक्त (surrogate) औषधि नहीं हो सकती है। केवल जो विभिन्न औषधियों के शुद्ध एवं स्पष्ट प्रभावों को नहीं जानते वे ही इतने मूर्ख हो सकते है कि वे हमें ऐसा बहकाने का प्रयत्न करेंगे कि एक के बदले दूसरी काम कर सकती है, और एक ही रोग में उतनी ही कारगर हो सकती है। जैसे अज्ञानी बच्चे एकदम भिन्न बस्तुओं को मिला देने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि वे उन्हें उनकी वाह्य आकृति से मुश्किल से ही पहचान पाते हैं, उनके वास्तविक मूल्य, उनके वास्तविक महत्व उनमें निहित गुणों से तो वे और भी कम (या बिल्कुल भी नहीं) जानते हैं।''

इसी अनुच्छेद की अगली टिप्पणी में औषधियों के अकेले अकेले उपयोग की वकालत करते हुए उनके मिश्रण के उपयोग के बारे में वे तुलना करते हुए लिखते हैं कि:

''यदि यह (*अकेली अकेली औषधि के उपयोग से आरोग्य*) नितान्त सत्य है, जो निशंक है, तब कोई भी तर्कयुक्त और विवेकपूर्ण चिकित्सक रोगों की चिकित्सा में ऐसे केवल अकेले औषधीय पदार्थ के अतिरिक्त, जिसकी वास्तविक गुणवत्ता से वह पूरी तरह परिचित है, और कुछ उपयोग नहीं कर सकता अर्थात् जिस पदार्थ के स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उपयुक्त परीक्षण के समय उसे ज्ञात है कि वह पदार्थ सुनिश्चित रूप से हस्तगत रोग के लक्षणों के समान लक्षण उत्पन्न करने में सक्षम है, अन्य किसी भी पदार्थ से अधिक सक्षम है, जिसे वह पूरी तरह जानता है, जिससे वह हस्तगत रोगी को आरोग्य करना चाहता है, क्योकि, जैसा ऊपर बतलाया गया है, न तो कोई मनुष्य और न ही स्वयं सशक्त प्रकृति ऐसी होम्योपैथिक औषधि के अतिरिक्त द्रुत गति से, स्थायी, पूर्ण आरोग्य सम्पन्न नहीं कर सकता। अत: कोई भी सच्चा चिकित्सक औषधियों के ऐसे आवश्यक और एकमात्र ज्ञान को जानने के लिए, जो आरोग्य करने के लिए नितान्त आवश्यक है, अपने को नहीं रोक सकता, इस ज्ञान की अब तक के सभी चिकित्सकों द्वारा उपेक्षा की जाती रही है। पूर्व के सभी

Dr. S. K. Mangalik: Email: drmangain@gmail.com

युगों में – भावी वंशज कदाचित ही विश्वास करें – अब तक चिकित्सक रोगों के लिए विचारशून्य तरीके से उन औषधियों को प्रिस्क्राइब करते रहे हैं जिनका महत्व अज्ञात था और मनुष्यों के स्वास्थ्य पर जिनकी बहुत महत्वपूर्ण, बहुत भिन्न, शुद्ध डायनामिक तुलनात्मक क्रिया का कभी परीक्षण नहीं किया गया था; इसके बावजूद वे जो आपस में एक दूसरी से बहुत भिन्न और अज्ञात इन बहुत सी दवाओं को एक फार्मूले में मिला कर इनके परिणाम को भाग्य के भरोसे छोड़ कर रोगी को दे रहे थे। यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पागल व्यक्ति किसी शिल्पी की कार्यशाला में घुस जाए और एकदम भिन्न प्रकार के कई औजार, जिनके उपयोग के बारे में उसे कोई ज्ञान नहीं है, उठा कर, अपने चारों ओर रखी कलाकृतियों पर अपनी कल्पना के अनुसार काम करना शुरु कर दे। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे कलाकृतियाँ नष्ट हो जाएँगी, मैं तो कह सकता हूँ कि उसके बुद्धिहीन कृत्य से वे बुरी तरह ध्वंस हो जाएँगी।''

इस टिप्पणी के संदर्भ में यह कहना असंगत नहीं होगा कि महर्षि हैनिमैन के समय से आज तक लगभग दो सदी बाद भी एलोपैथिक चिकित्सा में औषधियों के प्रिस्क्राइब करने के ज्ञान के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं आया है। प्रिस्क्रिप्शन में आज भी अनेक दवाएँ एक साथ बड़ी मात्रा में बिना उनके आपसी सम्बन्धों की जानकारी के प्रयोशालाओं के अन्वेषणों और मूक जीवों पर तथा रोगियों पर परीक्षणों के आधार पर और रोगों के (काल्पनिक) नामों के आधार पर, जिनका निदान (diagnosis) पैथोलाजिकल, रेडियोलॉजिकल तथा अन्य मशीनी उपकरणों की सहायता से किया जाता है, साधारणीकरण (genrelization) के आधार पर हर रोगी को एक समान रूप में उपयोग कराई जा रही हैं। जिनके परिणाम सामान्यत: निराशाजनक ही होते देखे गए हैं। ऐसी स्थिति को देख कर ही किसी ने संस्कृत में चिकित्सकों पर व्यंग किया है:

वैद्यराज नमस्तुभ्यम्, यमराज सहोदर।
यमस्तु हरति प्राण:, वैद्य प्राणधनानि च।।

अर्थात्, हे चिकित्सक महोदय आपको प्रणाम है क्योंकि आप यमराज के सगे छोटे भाई हैं, यम तो केवल प्राण ही लेते हैं परन्तु आप तो प्राण और पैसा दोनों ही ले लेते हैं।

120वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन मानव का जीवन और मृत्यु, रोग और स्वास्थ्य जिन औषधियों पर निर्भर करता है उनके सावधानीपूर्वक ज्ञान और उपयोग के विषय में कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

''अत: औषधियाँ, जिन पर मनुष्य के जीवन और मृत्यु, रोग और स्वास्थ्य निर्भर करते हैं, उनकी एक की दूसरी से निश्चित रूप से पूरी तरह और सावधानीपूर्वक पहचान की जानी चाहिए, और इस उद्देश्य के लिए उनकी शक्तियों और वास्तविक प्रभावों का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए सावधानीपूर्वक स्वस्थ शरीर पर शुद्ध परीक्षण किया जाना चाहिए ताकि हम रोगों में उनका उपयोग करने में किसी भी प्रकार की गलती से बचे रह सकें, क्योंकि, उनके सही चुनाव से ही पृथ्वी के महानतम आशीर्वाद, शरीर और मस्तिष्क का स्वास्थ्य, द्रुत गति के साथ स्थायी रूप से पुर्नस्थापित किया जा सके।''

अब 121वें अनुच्छेद सहित आगे के अनुच्छेदों में प्रत्येक औषधीय पदार्थ में अलग अलग निहित आरोग्यकारक शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में वे उनके स्वस्थ परीक्षण की विधि पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि:

''स्वस्थ शरीर पर उनके प्रभावों को सुनिश्चित रूप से जान लेने के लिए परीक्षण करने में इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि तथाकथित प्रबल, तेजस्वी पदार्थ साधारण मात्राओं में भी स्वस्थ और सुगठित व्यक्तियों के स्वास्थ्य में परिवर्तन पैदा कर देते हैं। कुछ कम शक्ति वाले पदार्थ, इन परीक्षणों के लिए अधिक बड़ी मात्राओं में ही देने चाहिएँ, जबकि बहुत ही कमशक्ति वाले पदार्थों की क्रिया जानने के लिए अधिक बड़ी मात्रा में इनका उपयोग करना पड़ेगा, तथापि, जिन व्यक्तियों पर परीक्षण करने हों वे किसी भी रोग से मुक्त, सुकोमल, उत्तेजना-प्रवण और संवेदनशील होने चाहिएँ।''

122वें अनुच्छेद में इन परीक्षणों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि:

''इन परीक्षणों में, जिन पर सम्पूर्ण चिकित्सा कला की यथार्थता और मानवता की भावी पीढ़ियों की कुशलता निर्भर करती है - जो अच्छी प्रकार ज्ञात हों और जिनकी शुद्धता, प्रामाणिकता और शक्ति भली प्रकार सुनिश्चित हो उन औषधियों के अतिरिक्त कोई अन्य औषधि उपयोग नहीं करनी चाहिए।''

123वें अनुच्छेद में वे यह निर्देश देते हैं कि परीक्षण के लिए औषधीय पदार्थ किस प्रकार से लेना चाहिए:

''प्रत्येक औषधीय पदार्थ केवल पूरी तरह सादा, शुद्ध रूप में लेना चाहिए, देशज पौधों का ताजा निकाला हुआ स्वरस, खराब हो जाने से बचाने के लिए थोड़े से अल्कोहल

Dr. S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

के साथ मिला कर लेना चाहिए, तथापि, विदेशी वनस्पति पदार्थों को चूर्ण के रूप में या जब वे ताजे थे उस समय अल्कोहल के साथ तैयार टिंचर के रूप में, और बाद में निश्चित अनुपात में पानी, लवण और गोंद के साथ मिला कर, तथापि, उपयोग से तुरत पहले पानी में घोल कर लेना चाहिए। यदि पौधा केवल सूखी हुई दशा में ही उपलब्ध हो सके, तब स्वभावत: इसकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, उस स्थिति में परीक्षण के लिए इनका उपयोग इनको छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर और इन पर उबलता हुआ पानी डालकर अन्त:स्रवण (infusion) के रूप में किया जाना चाहिए, ताकि औषधीय अंश प्राप्त हो जाए, इस प्रकार तैयार हो जाने के बाद तुरत गरम ही पी लेना चाहिए, क्योंकि सभी वनस्पति स्वरस और जड़ियों के पानी में तैयार अन्त:स्रवण में बिना अलकोहल मिलाए तेजी के साथ खमीर बनना और उनका विघटन होना शुरु हो जाता है, और इस प्रकार इनके समस्त औषधीय गुण समाप्त हो जाते हैं।''

124वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन 123वें अनुच्छेद से ही सम्बन्धित बात कहते हैं कि:
''इन परीक्षणों के लिए प्रत्येक औषधीय पदार्थ बिना किसी अन्य पदार्थ के साथ मिलाए, एकदम शुद्ध और बिल्कुल अकेला ही उपयोग करना चाहिए और उस दिन, न ही उसके बाद के दिनों में और न ही उस पूरे समय जब तक हम उक्त औषधि के प्रभाव का अवलोकन करना चाहते हैं, किसी भी अन्य औषधीय प्रकृति के पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए।''

125वें अनुच्छेद में औषधि परीक्षण के अगले कदम का निर्देश करते हुए वे कहते हैं कि:

''उस पूरे समय जब तक परीक्षण चलता है भोजन का सख्ती के साथ नियन्त्रण करें, यथासम्भव इसमें मसाले न हों, यह पूरी तरह पौष्टिक और सादे चरित्र का होना चाहिए, हरी सब्जियाँ, मूल और सब प्रकार का सलाद और शाक का सूप (जो कितनी ही सावधानी से तैयार किया जाए उसमें कुछ विघ्नकारक औषधीय गुण रह ही जाता है) का उपयोग नहीं करना चाहिए। पेय ऐसे लेने चाहिएँ जो यथासम्भव बहुत ही कम उद्दीपक हों।''
उद्दीपक पेयों के बारे में उन्होंने टिप्पणी की है कि:

Dr. S.K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

''परीक्षणकर्ता शुद्ध वाइन, ब्रैन्डी, कॉफी या चाय पीने का आदि नहीं होना चाहिए अथवा उसने इन हानिकारक पेयों को, जिनमें से कुछ उद्दीपक होते हैं और दूसरे औषधीय, बहुत पहले से ही बन्द कर दिया गया होना चाहिए।''

126वें अनुच्छेद में वे निर्देशित करते हैं कि परीक्षणकर्ता कैसा व्यक्ति होना चाहिए:

''जो व्यक्ति औषधि का परीक्षण कर रहा है वह (विशेष रूप से विश्वसनीय और विवेकशील) ही होना चाहिए, पूरे परीक्षण के समय उसे मानसिक और शारीरिक सब प्रकार के अतिश्रम से और सभी प्रकार के दुराचार और विघ्नकारक भावावेगों से बचना चाहिए; उसका ध्यान विचलित करने वाला उसका कोई अनिवार्य व्यवसाय नहीं होना चाहिए, वह अपने को सावधानीपूर्ण स्व-निरीक्षण में समर्पित करे और जब वह इस प्रकार व्यस्त हो तो उसे अशान्त नहीं किया जाना चाहिए; उसका शरीर पूरी तरह स्वस्थ दशा में होना चाहिए और उसमें इतनी बुद्धिमता होनी चाहिए कि वह अपनी अनुभूतियों को सही शब्दों में व्यक्त कर सके।''

127वें अनुच्छेद में उन्होंने कहा है कि औषधि परीक्षण में न केवल पुरुषों को बल्कि महिलाओं को भी सम्मिलित करना चाहिए ताकि स्वास्थ्य पर औषधियों के यौन (sexual) क्षेत्र में परिवर्तन पैदा करने की क्षमता को भी जाना जा सके।

128वें अनुच्छेद में उन्होंने औषधीय परीक्षणों में औषधीय पदार्थों का उपयोग उच्च शक्ति (potency) में करने की राय दी है:

''हाल के अवलोकनों ने दर्शाया है कि औषधीय पदार्थ जब परीक्षणकर्ता द्वारा उसके अनूठे प्रभाव जानने के लिए अशोधित दशा में लिया जाता है तो वह उसमें निहित उन सम्पूर्ण शक्तियों को प्रदर्शित नहीं करता है, जो वही पदार्थ भलि प्रकार पोटेन्टाइजेशन, ट्राइचुराइजेशन और सक्कशन द्वारा तैयार उच्च पोटेन्सी में लेने से प्रदर्शित करता है, उस पदार्थ में उसकी जो शक्तियाँ उसकी अशोधित दशा में उसमें प्रसुप्त थीं इस साधारण प्रक्रिया द्वारा असाधारण सीमा तक विकसित और जाग्रत हो जाती हैं। इस प्रकार हम उन औषधीय पदार्थों में निहित शक्तियों को भी भली प्रकार खोज सकते हैं, ऐसा करने के लिए हमारी योजना यह होती है कि परीक्षणकर्ता को उस पदार्थ की 30वीं पोटेन्सी के 4 से 6 बहुत छोटे ग्लोब्यूल थोड़े से पानी में अच्छी तरह घोल करके नित्य खाली पेट कई दिन तक लगातार देते हैं।''

Dr. G. K. Mangairi Email: drmamgairi@gmail.com

129वें अनुच्छेद में वे इस परीक्षण की बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि:

''यदि ऐसी मात्रा के प्रभाव का परिणाम बहुत हल्का मिले तो, कुछ ज्यादा ग्लोब्यूल नित्यप्रति तब तक दिए जा सकते हैं जब तक कि प्रभाव अधिक स्पष्ट और प्रबल न हो जाएँ और स्वास्थ्य में परिवर्तन अधिक स्पष्ट न हो जाएँ, क्योकि सभी व्यक्ति एक औषधि से समान रूप से प्रभावित नहीं होते हैं: इसके विपरीत इस विषय में अत्यधिक भिन्नता होती है; यथा कभी कभी प्रकटत: एक दुर्बल व्यक्ति एक प्रबल चरित्र वाली औषधि के रूप में ज्ञात औषधि की सामान्य मात्रा से कदाचित ही प्रभावित होता है जबकि दूसरी बहुत हल्के किस्म की औषधियों से काफी प्रचण्ड रूप से प्रभावित हो जाता है। और दूसरी ओर, ऐसे बहुत हट्टेकट्टे व्यक्ति होते हैं जो प्रकटत: मृदुल औषधि से बहुत अधिक रोगकारक लक्षण अनुभव करते हैं और प्रबल औषधियों से केवल हल्के लक्षण। अब, क्योंकि इस बात को पहले से नहीं जाना जा सकता अत: यही उपयुक्त है कि प्रत्येक मामले में औषधि की अल्प मात्रा से ही शुरु किया जाए और मात्रा आवश्यकतानुसार दिन प्रति दिन बढ़ाई जाय।''

130वें अनुच्छेद में परीक्षण के समय प्राप्त औषधि की क्रिया के ज्ञान के सम्बन्ध में आगे बतलाते हैं कि:

''यदि, शुरु में ही, पहली मात्रा खिलाने से प्रबल प्रभाव मिल जाए तो इससे यह लाभ मिलता है कि परीक्षणकर्ता लक्षणों की क्रमबद्धता को सीखता है और प्रत्येक लक्षण के उत्पन्न होने के समय को लिपिबद्ध कर सकता है, जो औषधि की क्षमता के ज्ञान को समझने में बहुत सहायक होता है, क्योंकि तब प्राथमिक क्रियाओं तथा प्रत्यावर्ती (alternating) क्रियाओं का क्रम भी पूरी तरह असन्दिग्ध तरीके से अवलोकिल किया जा सकता है। यदि परीक्षणकर्ता अत्यधिक संवेदनशील हो और अपनी अनुभूतियों के प्रति बहुत सतर्क हो तो एक बहुत ही साधारण सी मात्रा भी परीक्षणकर्ता के लिए काफी होती है। किसी औषधि की क्रिया की अवधि केवल अनेक परीक्षणों की तुलना करने के बाद ही सुनिश्चित की जा सकती है।''

131वें अनुच्छेद में वे इसी संदर्भ में कहते हैं कि:

''तथापि, यदि सभी तरह से सुनिश्चित करने के लिए, वही औषधि जाँच के लिए, बढ़ती हुई मात्रा में उसी व्यक्ति को कई दिनों तक लगातार दी जाए, तो इसमें कोई शक नहीं कि साधारणत: यह औषधि अनेक रोग दशा उत्पन्न करने में समर्थ है, परन्तु हम उनके उत्पन्न होने के क्रम को सुनिश्चित नहीं कर पाते, क्योंकि बाद वाली

Dr. S.K. Mangal, Email: drmangal@gmail.com

मात्रा पिछली मात्रा से उत्पन्न किसी एक या दूसरे लक्षण को अक्सर आरोग्यकारक तरीके से दूर कर देती है या इसके बदले विपरीत दशा उत्पन्न कर देती है; जब तक कि बाद के शुद्ध परीक्षणों से यह स्पष्ट न हो जाए कि वे इस औषधि की शरीर की प्रतिक्रिया के कारण हुए हैं और द्वितीयक लक्षण हैं या इसी औषधि की प्रत्यावर्ती (alternating) क्रिया है, तब तक ऐसे लक्षणों की संदिग्द्धता को स्पष्ट करने के लिए उन्हें कोष्ठक में लिखा जाना चाहिए।''

132वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि जब उद्देश्य केवल, विशेषत: क्षीण शक्ति वाले औषधीय पदार्थ के लक्षण सुनिश्चित करना हों तो:

''लेकिन जब, औषधि के प्रतिभास की क्रमबद्धता और उसकी क्रिया के समय के संदर्भ में जाने बिना, विशेष रूप से किसी क्षीण शक्ति वाले औषधीय पदार्थ के केवल लक्षण मात्र सुनिश्चत करने हों, तो उस मामले में यही श्रेयस्कर होगा कि अज्ञात चरित्र वाले क्षीणतर पदार्थ को भी कई दिन तक लगातार नित्य मात्रा बढ़ाते हुए देना होगा, इस प्रकार, खासतौर से जब उसको संवेदनशील व्यक्ति पर परीक्षण किया जाए तो उसकी क्रिया करने की क्षमता और उसकी औषधीय शक्ति प्रकाशित हो जाएगी।''

133वें अनुच्छेद में वे निर्देशित करते हैं कि किसी औषधि की किसी विशिष्ट अनुभूति का अनुभव होने पर उसके चरित्र को स्पष्ट रूप से जानने के लिए क्या करें; वे कहते हैं कि:

''औषधि से कोई सी विशिष्ट अनुभूति अनुभव होने पर, उस लक्षण के यथार्थ चरित्र को सुनिश्चित रूप से जाननें के लिए, यह उपयोगी है और नितान्त आवश्यक है कि जब तक यह लक्षण रहे प्रभावित अंग को अनेक स्थितियों मे रख कर यथा कमरे में यो खुली हवा मे चल कर, खड़े हो कर, बैठ कर या लेट कर पर देखा जाय कि यह लक्षण बढ़ता है, घटता है या समाप्त हो जाता है या जिस स्थिति में सबसे पहले अनुभव हुआ था उसी स्थिति में दोबारा अनुभव होता है – क्या इसमें कुछ खाने से, या पीने से या अन्य किसी दशा में, या बोलने, खाँसने, छींकने या किसी और क्रिया से कोई परिवर्तन आता है और साथ ही यह भी ध्यान देना है कि दिन या रात के किस समय यह लक्षण खासतौर से अनुभव होता है, इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रत्येक लक्षण की क्या बिशेषता और चारित्रिकता है।''

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

134वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि बाहरी प्रभावों और खासतौर से औषधियों से उनके सम्पूर्ण गुणों का ज्ञान अकेले व्यक्ति में और एक ही बार के उपयोग में प्रकट नहीं होता है, वे कहते हैं कि:

''सब प्रकार के बाहरी प्रभाव और खासतौर से औषधियों में प्रत्येक (*औषधि*) की अपनी विशिष्टता के अनुसार जीवित शरीर पर विशेष प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न करने के गुण निहित होते हैं, परन्तु किसी भी औषधि के सम्पूर्ण लक्षण न तो एक ही व्यक्ति में, न ही सारे एक बार में और न ही एक परीक्षण में प्रकट होते हैं, लेकिन कुछ लक्षण एक व्यक्ति में मुख्यत: एक बार में प्रकट होते हैं, दूसरे दूसरी बार या तीसरे प्रयास में प्रकट होते हैं; दूसरे व्यक्ति में कुछ दूसरे लक्षण प्रकट होते हैं; इसी प्रकार कुछ अन्य प्रतिभास सम्भवत: चौथे, आठवें या दसवें व्यक्ति में दिखलाई पड़ते हैं, जो पहले ही दूसरे, छठे या नवें व्यक्ति में प्रकट हुए थे, इत्यादि, तथापि उनकी पुरावृत्ति उसी समय पर नहीं हो सकती।''

135वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि किसी भी अकेली औषधि के सम्पूर्ण रोग के प्रतिभास को जो वह उत्पन्न कर सकती है पूर्णता के साथ, भिन्न गठनवाले पुरुष और महिला दोनों प्रकार के उपयुक्त व्यक्तियों पर अनेक अवलोकनों के बाद ही जाना जा सकता है, वे कहते हैं कि:

''किसी रोग के सम्पूर्ण घटकों को जिन्हें एक औषधि उत्पन्न करने में समर्थ होती है, पूर्णता के समकक्ष तक तभी लाया जा सकता है जब कि विभिन्न गठन वाले पुरुष और महिला दोनों प्रकार के उपयुक्त व्यक्तियों पर अनेक अवलोकन किए जाएँ। कोई औषधि अपने रोग लक्षण उत्पन्न करने के सम्बन्ध में पूरी तरह परीक्षित हो गई है – कहने का तात्पर्य यह है कि, मनुष्य के स्वास्थ्य को परिवर्तित करने की उसकी पूरी शक्तियाँ ज्ञात हो गई हैं – इस तथ्य से हम तब ही आश्वस्त हो सकते हैं जब बाद के परीक्षणकर्ता इसकी क्रिया के चरित्र में लगभग हमेशा केवल वे ही लक्षण पाएँ जो दूसरों के द्वारा पहले ही अवलोकित कर लिए गए थे उनके अतिरिक्त लेशमात्र भी नवीनता न देख पाएँ।''

136वें अनुच्छेद में वे स्पष्ट करते हैं कि शारीरिक और मानसिक गठन में भिन्न अनेक व्यक्तियों पर परीक्षणों से प्राप्त औषधि का चरित्र प्रत्येक रोगी पर समान रूप से होम्योपैथिक रूप से क्रिया करके आरोग्य करता है। उन्हीं के शब्दों में:

Dr. S. K. Mangalik Email: drmamgain@gmail.com

''यद्यपि, जैसा पहले कहा जा चुका है, स्वस्थ व्यक्तियों पर कोई एक औषधि परीक्षण करते समय एक ही व्यक्ति में वे सब लक्षण विकसित नहीं कर सकती जो वह स्वास्थ्य की दशा में उत्पन्न करने में समर्थ है, परन्तु वह तब ही ऐसा कर सकती है जब वह भिन्न भिन्न शारीरिक और मानसिक गठन के बहुत से भिन्न व्यक्तियों पर परीक्षित की जाए, फिर भी प्रकृति के शाश्वत और अपरिवर्तनीय नियम के अनुसार इसमें ये सब लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में उत्पन्न करने की प्रवणता विद्यमान रहती है (117वाँ अनुच्छेद), जिस सद्गुण के कारण इसके समस्त प्रभाव यहाँ तक कि वे भी जो स्वस्थ व्यक्तियों में विरले ही विकसित होते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के मामले में जब वह समान लक्षण वाले रोग से ग्रस्त हो तब क्रियाशील हो जाते हैं। यदि वह पदार्थ अति अल्प मात्रा में भी होम्योपैथिक आधार पर चुन कर रोगी को दिया जाय तो वह चुपचाप रोगी में प्राकृतिक रोग से बहुत मिलता जुलता रोग उत्पन्न कर देता है, जो मूल रोग को द्रुत गति के साथ स्थायी रूप से (होम्योपैथीकली) स्वतन्त्र करके निरोग कर देता है।''

137वें अनुच्छेद में वे औषधीय पदार्थ के परीक्षण के समय औषधि की मात्रा के सम्बन्ध में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि:

''ऐसे परीक्षणों में एक खास सीमा तक औषधि की साधारण मात्रा उपयोग की जाती है - परन्तु हमारा प्रयत्न यह सुनिश्चित करना होता है कि ऐसे अवलोकन के लिए ऐसे व्यक्ति का चुनाव हो जो सत्य का प्रेमी हो, सब प्रकार से संयमी हो, अनुभूतिशील हो और जो अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों पर भी पूरा ध्यान देने वाला हो - ताकि जो प्राथमिक प्रभाव अधिक स्पष्टता से विकसित हों, उन्हें ही, जिन्हें बिना द्वितीयक प्रभावों के या जीवनीशक्ति की प्रतिक्रियाओं के साथ घालमेल किए, जानना बहुत मूल्यवान होता है। तथापि, जब बहुत बड़ी मात्रा में औषधीय पदार्थ उपयोग करने के बाद जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनके साथ ही साथ न केवल द्वितीयक लक्षण उत्पन्न होते हैं बल्कि प्राथमिक प्रभाव भी इतनी हड़बड़ी के साथ और इतनी प्रचण्डता से उत्पन्न होते हैं कि सही तरीके से कुछ भी अवलोकन नहीं किया जा सकता है: उनकी बात को तो छोड़ दें, जिनके मन में अपने सजातियों के लिए कोई इज्जत नहीं होती और जो मानवता के प्रति अति संकीर्ण विचार वालों को अपना भाई मानते हैं वे ही इस तरह के परीक्षण के खतरों के प्रति उदासीन होते हैं।''

Dr S K Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

138वें अनुच्छेद में कहा है कि औषधीय पदार्थ के परीक्षण के समय परीक्षणकर्ता द्वारा अनुभव किए गए उसके स्वास्थ्य में उत्पन्न परिवर्तन/कष्ट ही उस पदार्थ में निहित औषधीय गुण होते हैं:

''परीक्षणकर्ता के स्वास्थ्य में औषधि की क्रिया के समय समस्त कष्ट, दुर्घटनाएँ, और परिवर्तन [बशर्ते उपरोक्त दशाएँ (124वें से 127वें अनुच्छेद) जो एक अच्छे और शुद्ध परीक्षण के लिए आवश्यक हैं उनका पालन किया गया हो] उस परीक्षण से पूरी तरह प्राप्त किए गए हैं उन पर ध्यान अवश्य देना चाहिए और उनको विशेषरूप से उक्त औषधि से सम्बन्धित, उसी औषधि के लक्षणों के रूप में पन्जीकृत करना चाहिए, यदि उसमें इस प्रकार का स्वत:स्फूर्त प्रतिभास पहले उत्पन्न हुआ हो, भले ही ये लक्षण परीक्षणकर्ता ने काफी समय पहले अवलोकित किए हों तो औषधि परीक्षण के समय इन लक्षणों का पुन: प्रकट होना यह दिखलाता है कि यह व्यक्ति विशिष्ट सद्गुण और ऐसे लक्षण उत्तेजित होने की खास प्रवणता वाला है। इस मामाले में ये औषधि के प्रभाव हैं, जब ली गई औषधि पूरे शरीर के स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल रही होती है तब ये लक्षण स्वत:स्फूर्त नहीं होते बल्कि औषधि द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं।''

139वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन का कहना है कि जब चिकित्सक औषधि का परीक्षण अपने ऊपर नही कर रहा हो तो क्या सावधानी बरतनी चाहिए। वं कहते हैं कि:

''जब चिकित्सक औषधि का परीक्षण अपने ऊपर नहीं करता, लेकिन दूसरे व्यक्ति को देता है, तो वह व्यक्ति उन अनुभूतियों, कष्टों, दुर्घटनाओं और स्वास्थ्य में परिवर्तनों को कि दवा लेने के कितने समय बाद प्रत्येक लक्षण प्रकट हुआ और यदि वह लक्षण काफी देर रहा तो कितनी देर रहा यह सब बातें उनके अनुभव होते समय ही स्पष्ट रूप से लिख ले। चिकित्सक उस परीक्षणकर्ता की उपस्थिति में परीक्षण समाप्त होते ही उसकी रिपोर्ट का अवलोकन करे और यदि परीक्षण कई दिन तक चलता रहे तो चिकित्सक ऐसा प्रतिदिन करे, ताकि, जिस समय इन परिस्थितियों की सब कुछ याद ताजा हो, उनकी सही प्रकृति के बारे में पूछा जा सके और परीक्षण से प्राप्त लक्षणों का पूरा विवरण परीक्षणकर्ता के सुझाव के अनुसार लिखा जा सके।''

उन्होंने इस अनुच्छेद की टिप्पणी में लिखा है कि,

''जो इस प्रकार के परीक्षणों के परिणाम चिकित्सा जगत के समक्ष उजागर करता है, वह परीक्षणकर्ता की विश्वसनीयता और उसके विवरण के लिए जिम्मेदार होता है अत:

Dr. G. K. Mangain; Email: drhamgain@gmail.com

इसका औचित्य भी सिद्ध करे, क्योंकि इन्हीं के आधार पर कष्ट झेलती मानवता का कल्याण दाँव पर लगाना होता है।''

140वें अनुच्छेद में वे कहते है कि:

''यदि व्यक्ति लिख नही सकता तो वह, जो कुछ उसको अनुभव हुआ और किस प्रकार हुआ नित्य प्रति चिकित्सक को अवश्य सूचित करे। इस बिन्दु पर जो कुछ भी लिखा जाय वह तथ्यपूर्ण सूचना होनी चाहिए, वह प्रमुखत: परीक्षण करने वाले का स्वैच्छिक वक्तव्य होना चाहिए, उसमें कुछ भी काल्पनिक और पूछे गये सवाल के उत्तर से यथासम्भव सूक्ष्म रूप से लिया हुआ होना चाहिए; प्रत्येक बात उसी सावधानी के साथ सुनिश्चित होनी चाहिए जैसी मैंने ऊपर औषधियों के प्रतिभास और प्राकृतिक रोगों के चित्र खोजने के लिए (84वं से 99वें अनुच्छेदों में) सुझाई है।''

141वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने सर्वश्रेष्ठ परीक्षणों का तरीका बतलाया है कि:

''लेकिन एकल औषधियों के मनुष्य के स्वास्थ्य में परिवर्तन करने के शुद्ध प्रभावों के और उनके स्वस्थ व्यक्ति में कृत्रिम रोग और लक्षण विकसित करने की क्षमता के श्रेष्ठ परीक्षण वे होते हैं जो स्वस्थ, पूर्वाग्रहों से मुक्त और संवेदनशील चिकित्सक यहाँ वर्णित पूरी सावधानियों के साथ स्वयं अपने ऊपर करे। स्वयं के अनुभव से वह इन बातों को अधिक सुनिश्चितता से जान पाता है।''

निजी अनुभव हमेशा बहुत महत्वपूर्ण होता है। कहावत है कि 'जाके पैर नहीं पड़ी बिवाई, वह क्या जाने पीड़ पराई' जिस मनुष्य ने कोई दर्द या अन्य कष्ट स्वयं झेला हो वह दूसरे के दर्द या कष्ट को ठीक तरीके से समझने मे समर्थ हो सकता है और तब ही वह दूसरे पीड़ित व्यक्ति की सही मदद कर सकता है। जो चिकित्सक औषधियों का परीक्षण स्वयं अपने ऊपर करता है वह उन औषधियों के गुणों को ज्यादा अच्छी तरह से समझ सकता है अत: उनके शारीरिक और मानसिक अनुभूतियों के अपने अनुभव के आधार पर रोगियों को आरोग्य करने के लिए उनका उपयोग पूरी सावधानी के साथ कर पाता है। साथ ही अपने ऊपर परीक्षणों से उसकी अपनी प्रतिरोधशक्ति भी सशक्त होती जाती है। जिसके कारण उसका अपना स्वास्थ्य और अधिक अच्छा हो जाता है। प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञान के साथ ही विश्वास बढ़ता है और अनुभव बढ़ता है। अनुभव में वृद्धि केवल तब ही होती है जब व्यक्ति पूरे कार्य को वांछित नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर अवलोकनपूर्वक व्यवस्थित ढंग से करता है। साथ ही इस प्रकार कार्य करने से व्यक्ति अपनी कमियों को भी दूर करने में सफल होता है।

Dr S K Mangain Email drmangain@gmail.com

142वें अनुच्छेद में वे कहते है कि:

''लेकिन, एकल औषधि के कुछ लक्षण आरोग्य करने के लिए किस प्रकार उपयोग किए गए, यहाँ तक कि विशेष करके क्रॉनिक चरित्र के रोगों में भी, जो अक्सर अपरिवर्तनीय होते हैं, मूल रोग के लक्षणों के बीच से ही पहचाने जा सकते हैं, यह एक विवेक की उच्चतर कला से सम्बद्ध विषय है, इसे पूरी तरह अवलोकन में दक्ष विद्वानों के ऊपर छोड़ देना चाहिए।''

इस अनुच्छेद के 'कुछ लक्षण' के सम्बन्ध में, यहाँ पर उन्होंने एक पादटिप्पणी दी है:

''लक्षण जो रोग की पूरी प्रक्रिया के दौरान, बहुत पहले या पहले कभी नहीं देखे गए हों, इस प्रकार नए हों औषधि के ही लक्षण होते हैं।''

143वें अनुच्छेद में 'मेटीरिया मेडिका' – चिकित्सा का विशिष्ट उपकरण – के निर्माण के सम्बन्ध में कहते हैं कि:

''यदि हम इस प्रकार स्वस्थ व्यक्तियों पर काफी संख्या में एकल औषधियों पर परीक्षण करने के बाद सावधानीपूर्वक और ईमानदारी के साथ सभी रोग तत्त्व और कृत्रिम रोग लक्षण जिन्हें वे विकसित करने में वे समर्थ होती हैं, उनको पंजीकृत करलें तो हमारी वास्तविक मेटीरिया मेडिका – एकल औषधीय पदार्थों की क्रिया के तरीके का एक वास्तविक, शुद्ध और भरासेमंद संकलन, प्राकृतिक रोगों की पुस्तक का ग्रन्थ तैयार हो सकता है, जिसमें औषधियों की स्वास्थ्य में विशिष्ट परिवर्तन के लक्षणों की काफी लम्बी श्रृंखला, प्रत्येक शक्तिशाली औषधि के सुनिश्चित लक्षण जिस प्रकार वे अवलोकनकर्ता के अवलोकन में प्रकट हुए थे, अंकित कर दिए गये हों, जिनमें एकल औषधियों के अनेक रोग तत्व विद्यमान हैं और जिनकी समानता वाले (होम्योपैथिक) प्राकृतिक रोगों को भविष्य में आरोग्य किया जा सके, एक शब्द में, जो ऐसी कृत्रिम रोग दशाओं से युक्त हों जो इनके समान प्राकृतिक रोग दशाओं को सुनिश्चित और स्थायी आरोग्यकारक शुद्ध, कहने का तात्पर्य है कि विशिष्ट होम्योपैथिक चिकित्सीय उपकरण सिद्ध होगा।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में वे लिखते है कि:

''बाद के दिनों में दूर स्थित अज्ञात लोगों को औषधियों के परीक्षण का काम, जिसके लिए उन्हें पैसे दिए जाते हैं, सौंप दिए जाने की आदत बन गई है और इस प्रकार प्राप्त सूचना प्रकाशित कर दी गई है। लेकिन ऐसा करने से जो कार्य सभी दूसरे कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण है और जिसे आरोग्य कला का आधार बनना है और जिसके महत्तम नैतिक चरित्र और विश्वसनीयता की बहुत आवश्यकता होती है,

Dr. S. K. Mangalam, Email: drmangalam@gmail.com

कहते हुए खेद होता है कि इसके परिणाम संदिग्द्ध और अनिश्चित होंगे और महत्वहीन हो जाएँगे।''

144वें अनुच्छेद में वे 143वें अनुच्छेद में वर्णित मेटीरिया मेडिका के सम्बन्ध में कहते हैं कि:

''ऐसी मेटीरिया मेडिका से जो कुछ भी कल्पित और वह सब जिसका दावा जिया जाता हो या कात्पनिक हों उसको सख्ती के साथ निकाल देना चाहिए; जो कुछ भी हो सावधानी के साथ और ईमानदारी से पूछताछ के बाद शुद्ध प्रकृति की भाषा में हो।''

145वें अनुच्छेद में मेटीरिया मेडिका के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि:

''वास्तव में यह यथातथ्य ज्ञात औषधियों की मनुष्य के स्वास्थ्य में परिवर्तन करने की इनकी क्रिया करने की शुद्ध रीतियों का एक विशाल भण्डार है, ताकि हम एक ऐसी होम्योपैथिक औषधि खोजने की स्थिति में हो जाएँ जो प्रकृति के असंख्य और विभिन्न रोगों की और जीवन को अक्सर संकट में डाल देने वाली दशाओं में से प्रत्येक अर्थात् संसार के हर रोग के लिए, एक उपयुक्त कृत्रिम (आरोग्यकारक) समान रोगकारक हो, लक्षणों के तथ्यपूर्ण चरित्र और उन रोग तत्वों की बहुलता से युक्त हो, जिन्हें प्रत्येक शक्तिशाली औषधीय पदार्थों ने पहले ही स्वस्थ शरीरों पर क्रिया द्वारा प्रकट कर दिया है, जबकि पुरानी एलोपैथिक चिकित्सा कला के सभी सामान्य और विशिष्ट चिकित्सा के तरीकों की इसकी अपनी अज्ञात सामूहिक औषधियों से, जो केवल परिवर्तन और वृद्धि करती हैं, लेकिन क्रॉनिक रोगों को आरोग्य नहीं कर सकतीं और एक्यूट रोगों को ठीक होने के बजाए बाधित करती हैं, की अपेक्षा असीमित रूप से अधिक सुनिश्चितता और सुरक्षित रूप से आरोग्य करती हैं उनका धन्यवाद – परन्तु कुछ रोग फिर भी ऐसे हो सकते हैं जिनके लिए अब तक परीक्षित औषधियों के बीच सन्तोषजनक सीमा तक शुद्ध क्रियाकारी होम्योपैथिक औषधि नहीं मिल पाई हों जो बिना अधिक बाधा के सौम्यता के साथ, सुनिश्चित और स्थायी तरीके से स्वास्थ्य पुनर्स्थापित कर सकें।''

इस अनुच्छेद के लिए वे एक टिप्पणी में कहते हैं कि:

''मैं ही पहला व्यक्ति हूँ जिसने चिकित्सा व्यवसाय के प्रमुखतम उपकरण औषधियों की शक्तियों का परीक्षण किया। उसके बाद कुछ युवकों द्वारा अपने ऊपर परीक्षण किए गए, जिनके अवलोकन मैंने तर्कपूर्ण ढंग से दोहराए, इसके बाद कुछ अन्यों ने

Dr. S. K. Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

भी इस प्रकार का मौलिक कार्य किया है। लेकिन जो कुछ भी रोगों के असीमित बड़े राज्य में पूरी सीमा तक हम नहीं कर पाएँगे उसे, जब अनेक सही और विश्वसनीय अवलोकनकर्ता अपनी सेवा से अन्य एकल औषधीय पदार्थों का अपने ऊपर प्रयागों के द्वारा इसे, केवल विशुद्ध मेटीरिया मेडिका को समृद्ध कर देंगे तब चिकित्साकला गणित विज्ञान के समान सुनिश्चित परिणाम देने वाला विज्ञान बन जाएगी।''

3रे अनुच्छेद के अनुसार चिकित्सक अर्थात् होम्यापैथिक चिकित्सक के ज्ञान के दूसरा चरण, 'यदि स्पष्ट बोध है कि औषधियों में, कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक अकेली औषधि में क्या आरोग्यकारक है (औषधीय शक्तियों का ज्ञान)' के सम्बन्ध में महर्षि हैनिमैन ने 105वें अनुच्छेद से 145वें अनुच्छेद तक विस्तृत रूप से स्पष्ट किया है, जिसका अन्तिम परिणाम होम्योपैथिक चिकित्सा के प्रमुख उपकरण 'मेटीरिया मेडिका' के निर्माण के रूप में हुआ है। महर्षि हैनिमैन प्रथम चिकित्सा वैज्ञानिक हैं जिन्होंने औषधीय पदार्थों में निहित औषधीय शक्तियों को उजागर करने के लिए उनका मानवों पर परीक्षण करने की विधि का आविष्कार स्वयं अपने ऊपर परीक्षण करके शुरु किया। पहले उन्होंने अपने आप पर परीक्षण करने शुरु किए फिर इस कार्य में कुछ समर्पित नवयुवक सम्मिलित हुए जिनके परीक्षणों को उन्होंने स्वयं परखा, इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को उन्होंने पहले 'मेटीरिया मेडिका प्योरा (दो खण्डों)' में 67 औषधियों का विवरण प्रकाशित कराया, फिर 'क्रॉनिक डिजीजेज (दो खण्डों) में 69 औषधियों का विवरण प्रकाशित कराया। बाद में उनके अनुयायियों ने पूरी निष्ठा के साथ मानव कल्याण की भावना से, यहाँ तक कि अपने जीवन को संकट तक में डाल कर, अन्य अनेक औषधियों के परीक्षण किए और मेटीरिया मेडिका को समृद्ध बनाया। जो औषधियाँ अधिकतम व्यक्तियों पर परीक्षित हुई हैं वे आज पोलीक्रेष्ट कहलाती हैं, वे रोगी मानवता को होम्योपैथी के लक्षण समानता के आधार पर उपयुक्त तरीके से उपयोग करने पर अत्यन्त विश्वसनीय आरोग्यकारक परिणाम देती हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि वे चिकित्सक के अन्तरंग मित्र का काम करती हैं। उनका कहना है कि जब निष्ठापूर्वक परीक्षणों के बाद अधिकतम औषधियाँ मेटीरिया मेडिका में सम्मिलित हो जाएँगी तो होम्योपैथिक चिकित्साकला समस्त रोगों को आरोग्य करने के लिए गणित के समान सुनिश्चित परिणाम देने वाला विज्ञान बन जाएगी। महर्षि हैनिमैन के उक्त कथन में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है, लेकिन यह भी एक तथ्य है कि जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी यही जीवन का अन्तिम सत्य है; परन्तु इस कथन का यह भी एक सत्य है कि कोई भी रोगी चाहे वह किसी भी रोग

Dr. S. K. Mangaini Email: drmangaini@gmail.com

से पीड़ित हो चिकित्सा के कारण अकाल मृत्यु से नहीं मरेगा। यह भी एक तथ्य है कि प्रत्येक चिकित्सक केवल अपने ज्ञान और बुद्धि की सीमा में ही अपना दायित्व निभा सकता है। मुझ जैसे अल्प बुद्धि को अपने चिकित्सा जीवन में ऐसे परिणाम मिले हैं जब कैन्सर के अन्तिम चरण के रोगियों को देश के बड़े आधुनिकतम अस्पतालों से यह कह कर वापस घर भेज दिया गया था कि जो कुछ वे कर सकते थे कर दिया है और यह भी कह दिया था कि हो सकता है रोगी को अन्तिम समय में असह्य यन्त्रणा होगी जिसमे तेज दर्दशामक औषधियाँ (pain killes) भी काम नहीं करेंगी ऐसे मामलों में भी केवल होम्योपैथिक औषधियों से जीवन कुछ लम्बा हुआ और रोगी शान्ति के साथ चिर निद्रा में सो गये बाद में रोगियों के निकट सम्बन्धियों ने आ कर आभार व्यक्त किया कि रोगी को अन्तिम समय में कष्ट नहीं हुआ। अतः मुझे विश्वास हो गया है कि यदि ज्ञानपूर्वक होम्योपैथी के मौलिक नियमों के अनुसार चिकित्सा की जाय तो यही वास्तविक संजीवनी चिकित्सा पद्धति है।

अब आगे के अनेक अनुच्छेदों में उन्होंने सच्चे चिकित्सक के लिए चिकित्सा कार्य में किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक रोगों में इन कृत्रिम रोग कारक तत्वों का विवेकपूर्वक उपयोग करते हुए रोगों का निदान करके आरोग्य करना चाहिए, चिकित्सक के ज्ञान के तीसरे चरण 'यदि वह स्पष्ट रूप से वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर औषधि में जो आरोग्यकारक है उसका और जो रोगी में निसन्देहरूप से विकृत पाया गया है उसके साथ भली प्रकार अनुकूलन करना जानता है ताकि निश्चित आरोग्य सम्पन्न हो' को विस्तार से स्पष्ट किया है।

146वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''सच्चे चिकित्सक के व्यवसाय का तीसरा चरण कृत्रिम रोग कारक तत्वों (औषधियों) को, जिनका स्वस्थ व्यक्तियों पर परीक्षण हो चुका है, उनकी शुद्ध क्रिया के आधार पर प्राकृतिक रोगों को होम्योपैथिक आधार पर आरोग्य करने के लिए विवेकपूर्वक उपयोग सुनिश्चित करना है।''

147वें अनुच्छेद में उन्होंने स्पष्ट किया है कि किसी भी प्राकृतिक रोग की कौन सी औषधि स्पेसिफिक औषधि होगी। उनका कहना है कि:

''इन औषधियों में से जिसमे प्रस्तुत प्राकृतिक रोग के समस्त लक्षणों के अत्यधिक समान लक्षण पैदा करके मनुष्य के स्वास्थ्य में परिवर्तन करने की शक्ति पाई गई हो,

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

उक्त औषधि ही उस रोग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त, सबसे अधिक सुनिश्चित औषधि होती है, इस रोग के मामले मे यही इसकी स्पेसिफिक औषधि होती है।''

148वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने आर्गेनन के छठे संस्करण में पाँचवें संस्करण में लिखे गए उक्त अनुच्छेद में संशोधन करने के बजाय पूरा का पूरा पुनः लिखा जो इस प्रकार है:

''प्राकृतिक रोग को कभी भी मनुष्य के शरीर के अन्दर कहीं स्थित कोई अनिष्टकारी पदार्थ नहीं समझना चाहिए, बल्कि ऐसा समझना चाहिए कि यह एक शत्रुभाव वाले प्राण के समान (संकल्पनात्मक) माध्यम द्वारा उत्पन्न किया गया है, जिसने एक संक्रमण के समान शरीर के अन्दर स्थित प्राण के समान (संकल्पनात्मक) विद्यमान नैसर्गिक जीवन के तत्व (*जीवनी शक्ति*) को एक दुष्ट आत्मा की तरह यातना दे कर मनुष्य के शरीर के अन्दर और बाहर (अनुच्छेद 11–13) कुछ कष्ट और विकार उत्पन्न करने के लिए विवश करते हुए जीवन की नियमित प्रक्रिया को विचलित कर दिया है। इन्हें ही लक्षणों (रोग) के रूप में जाना जाता है, अब, यदि, शत्रु भाव वाले इस माध्यम को जो न केवल इस विचलन (disorder) को बल्कि इसको चलाते रहने का भी प्रयास करता है, इसको दूर कर दिया जाए जैसा कि तब होता हे जब चिकित्सक जीवनी शक्ति को परिवर्तित करने में सक्षम अत्यधिक समानता के तरीके (होम्योपैथिक औषधि) से, जो उसी के समान प्राकृतिक रोग से अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा में भी रोग (अनुच्छेद 33, 279) से अधिक शक्तिशाली हो कृत्रिम पोटेन्सी में दे, तो जीवनी शक्ति पर मूल अनिष्टकारी कारक का प्रभाव इस सशक्त कृत्रिम रोग की क्रिया के दौरान समाप्त हो जाएगा। इसके बाद जीवनी शक्ति पर इस दुष्ट का कोई प्रभाव नहीं रहता – यह समाप्त हो जाता है। यदि, जैसा कहा गया है कि चुनी गई होम्योपैथिक औषधि उपयुक्त तरीके से दी गई है, तो एक्यूट प्राकृतिक रोग जिसे समाप्त करना है, यदि वह हाल ही में विकसित हुआ है तो वह बिना अनुभव किए हुए ही कुछ घण्टों में समाप्त हो जाएगा। कुछ पुराना, अधिक क्रॉनिक रोग सभी कष्टों के साथ उच्चतर पोटेन्सी की उसी या सावधानीपूर्वक चुनी गई किसी अन्य समान होम्योपैथिक औषधि की अनेक मात्राओं से समाप्त होने में कुछ अधिक समय लेगा और स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना अगोचर रूप से, अक्सर तेजी के साथ सम्पन्न हो जाती है। परिणामतः जीवनी शक्ति पुनः स्वतन्त्र हो जाती है और शरीर में जीवन की प्रक्रिया पहले के स्वास्थ्य की तरह पुनः चालू हो जाती है और शक्ति लौट आती है।''

Dr. S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

महर्षि हैनिमैन के लेखों और जीवन चरित से पता चलता है कि उन्हें भारतीय अध्यात्म और दर्शन के विषय में कुछ ज्ञान नहीं था यद्यपि उन्होंने पूर्वीय (oriental) चिकित्सा में स्वर्ण के उपयोग की बात कही है परन्तु सम्भवत: वह यूनानी चिकित्सा से सम्बन्धित है। वास्तव में शरीर (organism) तो मात्र एक यन्त्र के समान है जिसमें जीवन का संचार एक अमूर्त और स्वत:स्फूर्त शक्ति से ही चलता है, जिसे प्राण, आत्मा आदि नामों से जाना जाता है, इसे ही उन्होंने जीवनी शक्ति (vital force) नाम दिया है। तथापि महर्षि हैनिमैन ने अनुच्छेद 10वें से 12वें तक इस जीवनी शक्ति को ही जीवन और रोग के लिए जिम्मेदार बतलाया है। जब कोई व्यक्ति सत्य की खोज मे लगता है तो देश, काल और भाषा कुछ भी हो उसे उसी एक सनातन सत्य का दर्शन होता है। मनुष्य (सभी जीवों) के नन्हे शिशु के रूप में जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक जीवन पर्यन्त शरीर की वृद्धि, शक्ति का विकास और स्वास्थ्य की दशा में; दुर्घटनाओं और प्राकृतिक रोगों, जो प्रकृति में विद्यमान जीवन विरोधी शक्तियों के प्रभाव से जीवनी शक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन से उत्पन्न विकृति मात्र होते हैं और जिन्हें जीवनी शक्ति कष्ट के लक्षणों द्वारा सहायता के लिए पुकार के रूप में व्यक्त करती है, की दशा में तथा औषधीय या नशीले पदार्थो के जीवनी शक्ति पर प्रभावों की दशा में जीवन को चालू रखने के लिए यह जीवनी शक्ति ही जिम्मेदार होती है। और प्राकृतिक रोगों को समान लक्षणों वाली परन्तु शक्ति में अधिक कृत्रिम रोग शक्ति (उपयुक्त उच्च पोटेन्सी की होम्योपैथिक औषधि की अति सूक्ष्म मात्राओं) से आरोग्य करने के लिए भी यही जीवनी शक्ति जिम्मेदार होती है, और इस प्रकार प्राकृतिक स्वास्थ्य और शक्ति की पुनर्स्थापना यही जीवनी शक्ति सम्पन्न करती है। मुझे अपने चिकित्सक जीवन में नित्य इस तथ्य के दर्शन हो रहे हैं।

149वें अनुच्छेद में लम्बे समय से चले आ रहे रोगों के बारे में वे कहते हैं कि:

''लम्बे समय से चल रहे रोग (और खासतौर से जटिल चरित्र के रोग) आरोग्य होने के लिए अनुपातत: लम्बा समय लेते हैं। प्राकृतिक रोग के साथ ही अधिक विशेषता से एलौथिक चिकित्सा के गोलमाल से उत्पन्न औषधीय धातुदोष विषमता के द्वारा उत्पन्न जो रोग आरोग्य होने से छुटे रहते हैं, आरोग्य होने में बहुत अधिक समय लेते हैं, वास्तव में वे उग्र क्रियाकारी औषधियों के बड़ी मात्रा में लगातार खोखले आधार पर, समान प्रतीत होते रोगों मे उपयोगी होने का दम भरने वाले झूठे सिद्धान्तों के आधार पर उपयोग के द्वारा, और साथ ही अनुपयुक्त खनिजयुक्त स्नान की सलाह दे कर रोगी की शक्ति और जैव रसों के निर्लज्ज भाव (शिरावेधनों और रेचकों, इत्यादि)

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

से लूट लिए जाते हैं, वे तथाकथित ऐलोपैथी चिकित्सा की प्रमुख क्रिया के परिणाम होते हैं।''

यहाँ पर 148वें और 149वें अनुच्छेदों में वर्णित बातें सनातन सत्य होने के कारण आज 21वीं सदी में भी उतनी ही, बल्कि मैं कह सकता हूँ कि होम्योपैथिक औषधियों के विषय में कहे गए तथ्य से भी अधिक अच्छे परिणाम इन औषधियों की अति सूक्ष्म मात्राओं से मिल रहे हैं। क्योंकि मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभव में पाया है कि एक ओर अनेक एक्यूट और अति यन्त्रणादायक मामलों में यथा असह्य दाँत दर्द, कॉलिक, न्यूरैल्जिक पीड़ाओं में उपयुक्त हौम्योपैथिक औषधि की अत्यल्प मात्रा के जीभ पर स्पर्श करते ही रोगियों ने कह दिया कि ''दर्द गायब हो गया है'' जबकि महर्षि हैनिमैन ने एक्यूट मामलों में कुछ घण्टों के समय में गायब होने की बात कही है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि आज हमारे पास उनके समय से अब तक भली प्रकार परीक्षित औषधियों का कहीं अधिक बड़ा भण्डार उपलब्ध है। दूसरी ओर क्रॉनिक रोगों से पीड़ित रोगी लम्बे समय तक एलोपैथिक चिकित्सा कराने के बाद निरोग न होने के कारण निराश हो जाने पर होम्योपैथिक चिकित्सा के लिए आते हैं, तब भी रोगों के लक्षणों पर की गई होम्योपैथिक चिकित्सा से अधिकांश रोगी लाभान्वित होते हैं। दमा, ब्रॉन्काइटिस आदि क्रॉनिक रोगों से पीड़ित रोगी जो एलोपैथिक दवाओ के साथ ही इनहेलर और नेबुलाइजर आदि के सहारे जीवन घसीट रहे थे होम्योपैथिक चिकित्सा से अपेक्षाकृत कुछ लम्बे समय में पुनः स्वस्थ होकर सामान्य तरीके से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सोराइसिस रोग से पीड़ित अनेक रोगी लगभग 7 से 8 वर्ष के समय में रोग से पूरी तरह मुक्त हो कर पुनः स्वस्थ जीवन बिता रहे हैं। ऐसे परिणामों से यही सिद्ध होता है कि होम्योपैथी एक सनातन आरोग्यकारक चिकित्सा विज्ञान है, महर्षि हैनिमैन की किसी बात में अतिशयोक्ति नही है।

150वें अनुच्छेद में वे हाल ही में उत्पन्न मामूली लक्षणों के विषय में कहते हैं कि:

''यदि कोई रोगी हाल ही में अवलोकित किए गए एकाधिक लक्षणों की शिकायत करता है तो चिकित्सक उसे गम्भीर चिकित्सा सहायता के लिए पूरी तरह विकसित रोग न माने। इस प्रकार का असुख अक्सर पथ्यापथ्य और भोजन में कुछ परिवर्तन करने मात्र से ही दूर हो जाता है।''

151वें अनुच्छेद में वे रोगी द्वारा कुछ उग्र लक्षणों की शिकायत करने पर कहते हैं कि:

Dr S.K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

''लेकिन यदि रोगी कुछ उग्र कष्टों की शिकायत करता है तब चिकित्सक जॉच करने पर इनके साथ ही अन्य अनेक लक्षण भी पाएगा, यद्यपि वे हल्के चरित्र के हो सकते हैं, जो रोग के सम्पूर्ण चित्र को दर्शाता है।

152वें अनुच्छेद में वे बहुत से लक्षणों वाले बदतर एक्यूट रोग की औषधि का चुनाव करने के सम्बन्ध में कहते हैं कि:

''बदतर एक्यूट रोग, जिसमें बहुत सारे और प्रभावी लक्षण उपस्थित हों, तथापि, यदि उनकी निर्णायक क्रिया के संदर्भ में चुनाव करने के लिए पर्याप्त संख्या में औषधियाँ ज्ञात हों तो उतनी ही सुनिश्चितता के साथ इसकी उपयुक्त औषधि भी मिल सकती है। बहुत सारी औषधियों की सारिणी (list) में से एक ऐसी औषधि ढूँढ लेने पर जिसके पृथक रोग तत्व कृत्रिम रोग के आरोग्यकारक प्रतिबिम्ब, प्राकृतिक रोग के सम्पूर्ण लक्षणों के बहुत समान निर्मित हो सकें तो यह औषधि ही वान्छित औषधि होती है।''

इस अनुच्छेद का तात्पर्य यह है कि यदि हमे भली प्रकार परीक्षित बहुत सारी औषधियाँ ज्ञात हों तो उनके लक्षणों की सारिणी में से आरोग्य के लिए प्रस्तुत ऐसे एक्यूट रोग, जिसके साथ अनेक अन्य कष्टकारी लक्षण भी प्रभावी हों, के लिए हमें एक ऐसी औषधि ढूँढनें मे भी कठिनाई नहीं होगी जिसके सारे लक्षण, समस्त रोग लक्षणों के प्रतिबिम्ब की तरह बहुत समान हों।

153वें अनुच्छेद में वे स्पष्ट करते है कि उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि खोजने के लिए क्या करना होगा, वे कहते हैं कि:

''इस एक स्पेसिफिक होम्योपैथिक की खोज में, कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक रोग के सामूहिक लक्षणों के साथ ज्ञात औषधियों के लक्षणों की सारिणी से तुलना में, आरोग्य किए जाने वाले रोग के समान एक कृत्रिम रोग कारक के समरूप औषधि ढूँढने के लिए, अधिक स्पष्ट, अनुपम, असामान्य और विशिष्ट (चारित्रिक) संकेतों और लक्षणों को प्रमुखता के साथ और पूरी तरह ध्यान में रखना होता है; क्योंकि आरोग्य सम्पन्न करने के लिए ये ही चुनी गई औषधि के लक्षणों की सारिणी में विशेषता के साथ समरूप होने चाहिएँ। अन्य अधिक सामान्य और अनिश्चित लक्षण – भूख की कमी, सिरदर्द, दुर्बलता, बेचैन नींद, असुख, इत्यादि अनिश्चित और अस्पष्ट चरित्र के लक्षण जब वे सही तरीके से बयान नही किए जा सके हों तो इन पर खास घ्यान

Dr. S. K. Mangalin; Email: drmamgain@gmail.com

देने की जरूरत नहीं होती है, क्योंकि इस प्रकार के सामान्य चरित्र के लक्षण लगभग सभी रोगों और सभी औषधियों में देखे जाते हैं।''

प्रत्येक औषधि के स्वस्थ व्यक्तियों पर परीक्षणों से अनेक लक्षण प्राप्त होते हैं अत: इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक औषधि के लक्षणों की एक लम्बी सारिणी हमें उपलब्ध हो जाती है। लेकिन आरोग्य किए जाने वाले हस्तगत रोग के लिए एक ऐसी औषधि का चुनाव करना होता है जिसकी लक्षण सारिणी में उक्त रोग के प्रमुख असामान्य, अनुपम और विशिष्ट (चारित्रिक) लक्षणों के अत्यधिक समान ऐसा ही लक्षण समूह विद्यमान हो। यह औषधि ही उक्त रोग की आरोग्यकारक स्पेसिफिक औषधि होती हैं अन्य आमान्य लक्षण का उक्त रोग को आरोग्य करने में कोई महत्व नहीं होता।

154वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''यदि आरोग्य किए जाने वाले रोग के अधिकाधिक असामान्य, अनुपम और विशिष्ट (चारित्रिक) लक्षणों का सबसे उपयुक्त औषधि के लक्षणों की सारिणी से प्राप्त अधिकतम लक्षणों के समान प्रतिबिम्ब तैयार होता है तो यह औषधि ही उक्त रोगी दशा की सबसे अधिक होम्योपैथिक स्पेसिफिक औषधि होती है, यदि यह रोग बहुत लम्बे समय से नहीं है तो सामान्यत: इसकी पहली मात्रा से ही बिना किसी अधिक बाधा के यह दूर होकर शान्त हो जाएगा।''

155वें अनुच्छेद में इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''मैं कहता हूँ बिना किसी अधिक बाधा के। क्योंकि सबसे उपयुक्त इस होम्योपैथिक औषधि के उपयोग के लिए जो लक्षण काम मे लाए जाते हैं वे केवल औषधि के लक्षण ही हैं, जो रोग के लक्षणों के समरूप होते हैं, पहले वाले लक्षण, बाद वाले (कमजोर) जीवनी शक्ति की अनुभूतियों के लक्षणों का स्थान ले लेते हैं और इस प्रकार उनको पराजित करते हुए उनको समाप्त कर देते हैं और होम्योपैथिक औषधि के अन्य लक्षण, जो अक्सर बहुत बड़ी संख्या में होते हैं, वे किसी उपयोग में नहीं आते, क्योंकि हस्तगत मामले में वे किसी भी प्रकार लागू नहीं होते। प्रति घण्टे अच्छा होते जाने के कारण रोगी, उनके लगभग किसी प्रभाव को अनुभव नहीं करता, क्योंकि होम्योपैथिक उपयोग के लिए आवश्यक औषधि की मात्रा औषधि के दूसरे लक्षणों को जो उक्त रोगी मामले के लिए होम्योपैथिक नहीं हैं, शरीर के उन अंगों में जो रोग से मुक्त होते हैं, उत्पन्न करने के लिए अत्यधिक क्षीण होती हैं, परिणामत: जीवनी शक्ति केवल उन होम्योपैथिक लक्षणों को ही शरीर के उन अंगों

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangain@gmail.com

पर क्रिया करने की अनुमति देती है जो रोग के समान लक्षणों के कारण पहले से ही अत्यधिक क्षोभित (irritated) और उत्तेजित हुए रहते हैं ताकि रोगी की जीवनी शक्ति केवल समान परन्तु शक्तिशाली औषधीय रोग के प्रति प्रतिक्रिया कर सके जिससे मूल रोग समाप्त हो जाता है।''

मनुष्य की जीवनी शक्ति रोग की दशा में वाँछित औषधि के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो जाती है अत: वाँछित होम्योपैथिक औषधि की अति अल्प मात्रा से भी पूरी तरह उद्दीपित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गन्ध के प्रति सहज-विगुणता (idiosyncracy or Allery) वाला रोगी जो दूसरों को अनुभव भी नहीं होगी ऐसी बहुत हल्की गन्ध से भी अत्यधिक पीड़ित हो जाता है, और औषधीय कृत्रिम रोग प्राकृतिक रोग को समाप्त कर देता है। औषधीय कृत्रिम रोग का प्रभाव औषधि की मात्रा अति अल्प होने के कारण स्वत: समाप्त हो जाता है।

156वें अनुच्छेद में कहते हैं कि अत्यधिक संवेदनशील रोगियों में बहुत उपयुक्त तरीके से चुनी गई औषधि भी असामान्य अल्प मात्रा में भी कोई न कोई असामान्य लक्षण पैदा कर ही देगी। वे कहते हैं कि:

''तथापि, बहुत उपयुक्त तरीके से चुनी गई लगभग कोई भी ऐसी होम्योपैथिक औषधि नहीं है जो विशेषरूप से असामान्य अल्प मात्रा में दिए जाने पर भी, जब तक इसकी क्रिया समाप्त न हो जाए, बहुत क्षोभशील (irritable) और संवेदनशील रोगियों में, कोई एक मामूली, असामान्य गड़बड़, कोई हल्का सा लक्षण पैदा नहीं करेगी: क्योंकि यह लगभग असम्भव है कि औषधि और रोग लक्षणों में आपस में इतनी अधिक समानता हो कि जितनी बराबर भुजाओं और बराबर कोणों वाले दो त्रिकोणों में एक दूसरे को पूरी तरह ढक लेने में होती है। परन्तु सामान्य परिस्थितियों में यह अनावश्यक अन्तर शरीर की जीवनी शक्ति की सम्भावित (potential) शक्ति द्वारा आसानी से समाप्त कर दिया जाता है और अधिक नाजुक रोगियों द्वारा भी अनुभव नहीं किया जाता है, यदि रोगी पर विविध औषधीय प्रभावों की क्रिया, पथ्य या भावावेश की उत्तेजना द्वारा इसमें बाधा न डाली जाए तो पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ तक स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना चलती रहती है।''

157वें अनुच्छेद में महर्षि हेनिमैन कहते हैं भली प्रकार चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की अति अल्प मात्रा का सेवन करते ही इससे भी प्रारम्भिक रोग वृद्धि होती है। वे कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangain: Email: drmangain@gmail.com

''यद्यपि यह सुनिश्चित है कि होम्योपैथिक तरीके से चुनी गई औषधि से, इसकी उपयुक्तता और मात्रा की अल्पता के कारण, अनुरूपता होने के कारण, इसके अन्य अनहोम्योपैथिक लक्षणों को प्रकट किए बिना किसी एक्यूट रोग को सौम्यता के साथ, कहने का तात्पर्य यह है कि नये और गम्भीर विघ्न उत्पन्न किए बिना दूर करके समाप्त कर देती है, फिर भी, औषधि सेवन के तुरत बाद, पहले घण्टे या कुछ घण्टे तक यदि मात्रा पर्याप्त छोटी नहीं हो तो एक प्रकार की हल्की, तथापि जहाँ मात्रा कुछ बड़ी हो तो काफी घण्टों तक रोग वृद्धि करती है, जिसकी मूल रोग से इतनी समानता होती है कि रोगी को लगता है उसका रोग बढ़ गया है। परन्तु, वास्तव में यह अत्यधिक सीमा तक समान मूल रोग से शक्ति में कुछ अधिक औषधीय रोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है।''

158वें अनुच्छेद में उक्त प्रारम्भिक रोग वृद्धि को शुभ बतलाते हुए वे कहते हैं कि:
''प्रथम घण्टों में यह हल्की सी होम्योपैथिक रोग वृद्धि - सम्भवत: एक्यूट रोग में प्रथम मात्रा से ही लाभ मिल जाएगा इस भावीफल का बहुत अच्छा द्योतक है - ऐसा होना भी चाहिए, क्योंकि औषधीय रोग को, यदि रोग को हरा कर समाप्त करना है तो, स्वभावत: आरोग्य किए जाने वाले रोग से अधिक शक्तिशाली होना ही चाहिए, जिस प्रकार एक प्राकृतिक रोग अपने ही समान अन्य रोग को, यदि पहले वाला रोग बाद वाले रोग से अधिक शक्तिशाली होता है (43वें से 48वें अनुच्छेद) तो उसे समूल समाप्त कर के हटा देता है।''

159वें अनुच्छेद में उन्होंने बतलाया है कि:
''एक्यूट रोगों की चिकित्सा में होम्योपैथिक औषधि की मात्रा जितनी अधिक हल्की होगी प्रथम कुछ घन्टों में रोग में वृद्धि भी स्पष्टत: उतनी ही अधिक हल्की होगी।''

160वें अनुच्छेद में उन्होंने बतलाया है कि:
''परन्तु होम्योपैथिक औषधि की मात्रा कदाचित ही कभी इतनी अल्प की जा सके कि यह अपने समान अजटिल प्राकृतिक रोग, जो लम्बे समय से नहीं हो, को दूर करके हरा देने या वास्तव में पूरी तरह समाप्त कर देने में (अनुच्छेद 249 की टिप्पणी) समर्थ नहीं होगी, अत: हम समझ सकते हैं कि उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की कितनी भी सम्भावित अल्पतम मात्रा सेवन करने के प्रथम घण्टों में अपने किस्म की रोगवृद्धि उत्पन्न करने में क्यों समर्थ होगी।''

Dr. S. K. Mangain. Email: drmangain@gmail.com

इस अनुच्छेद के अन्त में उन्होंने एक टिप्पणी दी है जिसमे उन्होंने बताया है कि – औषधीय लक्षणों के समान रोग के लक्षणों की यह वृद्धि, जब दैवयोग से होम्योपैथिक औषधि का उपयोग हो गया हो, जो रोग वृद्धि के समान प्रतीत होती है अन्य चिकित्सकों ने भी देखी है। जब एक खुजली के कष्टों से पीड़ित रोगी को सल्फर के बाद उद्‌भेद में वृद्धि हुई तो उसके चिकित्सक ने, जिसे इस रोगवृद्धि के कारण का पता नहीं था, रोगी को यह कह कर सान्त्वना दी कि आरोग्य होने से पहले उद्‌भेद को पूरी तरह बाहर आ जाना चाहिए, हालाँकि उसको पता नहीं था कि यह सल्फर का उद्‌भेद था, जिसने खुजली की वृद्धि का स्वरूप ले लिया था, इत्यादि के कुछ उदाहरणों द्वारा एलोपैथिक औषधियों की बड़ी मात्राओं के उपयोग के बाद उत्पन्न होम्योपैथिक रोगवृद्धि की सत्यता का तर्क प्रस्तुत किया है।

तात्पर्य यह है कि हाल ही में शुरु हुए अजटिल प्राकृतिक रोग के समान लक्षणों वाली उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की अल्पतम मात्रा भी औषधि सेवन के प्रथम घण्टों में कुछ रोग वृद्धि अवश्य करती है जिसके बाद रोग समूल समाप्त हो जाता है। ऐसा विशेष रूप से संवेदनशील व्यक्तियों में जरूर होता है जिससे हमें यह भी विश्वास मिल जाता है कि औषधि का चुनाव सही था। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि होम्योपैथिक औषधि की मात्रा कभी भी इतनी अल्प नहीं की जा सकती है कि यह जरा सी भी रोग वृद्धि नहीं हो। इस प्रकार की रोग वृद्धि होम्योपैथिक रोग वृद्धि कहलाती है।

161वें अनुच्छेद में वे लम्बे समय से चले आ रहे रोग की दशा में उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की मात्रा की क्रिया से उत्पन्न प्रभाव के बारे में प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि:

> ''जब मैं यहाँ पर तथाकथित होम्योपैथिक रोग वृद्धि को, या अधिक उचित रूप से होम्योपैथिक औषधि की प्राथमिक क्रिया को सीमाबद्ध करता हूँ, जो मूल रोग के लक्षणों को पहले घण्टे या पहले कुछ घण्टे वृद्धि करती प्रतीत होती है, यह हाल ही के एक्यूट रोग के संदर्भ में निश्चित रूप से सत्य है, परन्तु जहाँ लम्बी अवधि की क्रिया वाली औषधि को एक ऐसे रोग से लड़ना हो जो काफी लम्बे समय से प्रभावी हो, जहाँ चिकित्सा के दौरान मूल रोग की इस प्रकार की रोग वृद्धि होनी ही चाहिए थी, यदि उपयुक्त रूप से चुनी गई औषधि उपयुक्त मात्रा में धीरे धीरे उच्चतर शक्ति (*पोटेन्सी*) में दी गई थी तो ऐसा नहीं होता है (247वाँ अनुच्छेद)।

Dr. S.K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

क्रॉनिक रोग के मूल लक्षणों की ऐसी वृद्धि चिकित्सा के अन्त में केवल तब प्रकट हो सकती है जब रोग लगभग आरोग्य हो जाए या चिकित्सा समाप्त हो चुकी हो।''

यह सत्य है कि हाल के एक्यूट रोग के मामले में ही उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि से पहले घण्टे या शुरु के कुछ घण्टे मूल रोग के लक्षणों में कुछ वृद्धि अवश्य हो सकती है, परन्तु क्रॉनिक रोग के मामले में यदि सही तरीके से चुनी गई होम्योपैथिक औषधि उचित मात्रा में और उसकी पोटेन्सी धीरे धीरे बढ़ाते हुए दी जाए तो मूल रोग के लक्षणों की वृद्धि केवल उस दशा में हो सकती है जब रोग लगभग आरोग्य हो जाए और उसके बाद भी औषधि की पुनरावृत्ति कर दी जाए।

162वें अनुच्छेद में बतलाया है कि ज्ञात औषधियों की तालिका में जब किसी औषधि के हस्तगत रोग के केवल आंशिक लक्षण ही मिलें तो क्या करें:

''कभी कभी ऐसा होता है कि अभी तक ज्ञात वास्तविक और शुद्ध क्रिया करने वाली औषधियों की सामान्य संख्या के कारण चिकित्सा के अन्तर्गत रोग के लक्षणों के केवल आंशिक लक्षण ही सर्वाधिक उपयोगी औषधि की तालिका में उपलब्ध हो पाएँ तो, फलस्वरूप अधिक उपयुक्त औषधि के अभाव में इस अपूर्ण रोग कारक को ही उपयोग में लाना चाहिए।''

163वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि:

''ऐसे मामले में वास्तव में हम उक्त औषधि से पूर्ण, कष्ट रहित आरोग्य मिलने की आशा नहीं कर सकते; क्योंकि इसके उपयोग के समय लक्षण उत्पन्न होते हैं जो रोग में पहले प्रत्यक्ष नहीं हुए थे, वे अपूर्ण औषधि के सहयोगी लक्षण होते हैं। ये किसी भी प्रकार रोग के काफी भाग (औषधि के लक्षणों के समान रोग के लक्षणों) को इस औषधि से निर्मूल करने से रोक नहीं सकते, इस प्रकार आरोग्य का एक सन्तोषजनक आरम्भ हो जाता है, फिर भी ऐसा उन सहयोगी लक्षणों के बिना नहीं होता है, तथापि, जब औषधि की मात्रा पर्याप्त रूप से अल्प हो तो ये हमेशा शान्त ही रहते हैं।''

164वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''श्रेष्ठ चुनी गई औषधि में विद्यमान होम्योपैथिक लक्षणों की कम संख्या ऐसे मामलों में जहाँ ये थोड़े से औषधीय लक्षण मुख्यत: असामान्य किस्म के हों और विशेष रूप

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangairi@gmail.com

से रोग के भेद बताने वाले (चारित्रिक) हों तो आरोग्य होने में कोई बाधा नहीं होगी; ऐसी परिस्थितियों में बिना किसी खास बाधा के आरोग्य सम्पन्न हो जाता है।''

165वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''तथापि, यदि चुनी गई औषधि के लक्षणों में कोई एक भी लक्षण रोग के लक्षणों से भेद बताने वाला (चारित्रिक), विशिष्ट, असामान्य लक्षण न हो और यदि औषधि रोग के केवल सामान्य, अस्पष्ट वर्णित लक्षण और अनिश्चित दशा (मिचली, दुर्बलता), सिरदर्द, इत्यादि से समानता वाली हो, और ज्ञात औषधियों में से कोई भी होम्योपैथिक रूप से उपयुक्त न हो तो ऐसे मामले में ऐसी अनहोम्योपैथिक औषधि के उपयोग से चिकित्सक तुरत खुद ही किसी अनुकूल लाभ की आशा नहीं कर सकता है।''

166वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''हालाँकि, ऐसी औषधियों की संख्या बढ़ने के साथ, जिनके शुद्ध प्रभाव अब तक ज्ञात हो चुके हैं, इस प्रकार का रोगी मामला विरल होता है, और इससे उत्पन्न बुरे प्रभाव, यदि हो जाएँ तो बाद में जब भी अधिक उपयुक्त समानता वाली औषधि चुनी जा सके तो वे कम किए जा सकते हैं।''

167वें अनुच्छेद में वे अनुपयुक्त होम्योपैथिक औषधि का उपयोग कर दिए जाने के बाद क्या करना होगा, यह बतलाते हुए कहते हैं कि:

''इस प्रकार पहले उपयोग मे लाई गई अनुपयुक्त होम्योपैथिक औषधि उपयोग के समय महत्व के कुछ सहायक लक्षण उत्पन्न होते हैं तब, एक्यूट रोगों के मामले में हम इस पहली मात्रा के प्रभाव को नहीं चलने देते हैं और न ही रोगी को औषधि की पूरी क्रिया होने तक छोड़ देते हैं बल्कि हम अब बदली हुई दशा के बारे में नए सिरे से खोज करते हैं, नए विकसित हुए लक्षणों को बचे हुए मूल लक्षणों के साथ जोड़ कर नए रोग के चित्र का पता लगाते हैं।''

168वें अनुच्छेद में वे इसी संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि:

''तब हम अधिक तत्परता के साथ ज्ञात औषधियों के बीच से हस्तगत रोग की दशा के लिए एक समान औषधि खोजने में सफल हो सकेंगे, इसकी एक मात्रा यदि पूरे रोग को समाप्त न भी कर पाए, तो भी यह आरोग्य की राह में काफी आगे बढ़ जाएगी। यदि यह औषधि भी पूरी तरह आरोग्य करने में पूरी सिद्ध नहीं होती है, तो

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

बची हुई रोग दशा के लिए बार-बार परीक्षा करेंगे और हर बार यथा सम्भव उपयुक्त हौम्योपैथिक औषधि का चुनाव करते जाऐंगे, इस प्रकार हम आगे बढ़ते जाएँगे, जब तक कि हमारा उद्देश्य पूरा न हो, अर्थात् जब तक रोगी पुनः पूरी तरह स्वस्थ न हो जाए।''

169वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि यदि प्रथम परीक्षण के समय पहली बार चुनी गई औषधि के लक्षण रोग के पूरे लक्षणों से समानता नहीं रखते हैं बल्कि दो औषधियों में रोग के पूरे लक्षण, कुछ एक औषधि के और कुछ दूसरी औषधि के लक्षणों से समानता रखते हैं, तो ऐसी दशा में क्या करें इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि:

''यदि, रोग के प्रथम परीक्षण करने के बाद औषधि का प्रथम चुनाव करते समय ज्ञात औषधियों की संख्या अपर्याप्त होने के कारण हम पाते हैं कि रोग के पूरे लक्षण एक औषधि के रोग तत्वों से पूरी तरह समानता नहीं रखते, बल्कि उपयुक्तता के हिसाब से दो औषधियाँ उपयुक्त लगती हैं, जिनमें से एक भाग के लिए होम्योपैथिक दृष्टिकोण से एक औषधि अधिक उपयुक्त है और दूसरी दूसरे भाग के लक्षणों के लिए, दोनों में से अधिक उपयोगी का उपयोग करने के बाद बिना नए सिरे से परीक्षण किए दूसरी का उपयोग करना उचित नहीं है (और दोनों का एक साथ उपयोग करना तो और भी उचित नहीं है, अनुच्छेद 272 की टिप्पणी) क्योंकि जो दूसरी सबसे उपयुक्त औषधि प्रतीत हो रही थी, इस बीच बदली हुई परिस्थितियों में रोग के बाकी बचे हुए लक्षणों के लिए उपयुक्त नहीं भी हो सकती है, अतः पहले परीक्षण के समय जो दूसरी औषधि उपयुक्त प्रतीत हो रही थी उसके स्थान पर नए लक्षणों के समूह के आणार पर एक नई और अधिक उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि का चुनाव ही करना चाहिए।''

170वें अनुच्छेद में वे उपरोक्त उपदेश को घ्यान में रखते हुए निर्देश करते हैं कि:

''अतः इस मामले में तथा अन्य प्रत्येक मामले में जहाँ रोग की दशा में परिवर्तन हो गया हो, बचे हुए लक्षणों के समूह के बारे में जो अब विद्यमान हैं, जाँच अवश्य करनी चाहिए और (जो औषधि पहले उपयुक्तता के अनुसार दूसरे नम्बर पर आयी थी उस पर कोई ध्यान दिए बिना) हमारे सामने जो अब नई दशा उपस्थित है उसी के लिए अधिकाधिक उपयुक्त नई औषधि ही चुननी चाहिए। यदि ऐसा हो जाए, जैसा अक्सर होता नहीं है, पहली बार चुनी गई दूसरे नम्बर की उपयुक्त प्रतीत होती हुई

Dr. S. K. Mangalik, E-mail: drmangalik@gmail.com

औषधि, बची हुई रोग दशा के लिए हमारे विश्वास में अब भी बहुत उपयुक्त प्रतीत हो तो किसी भी अन्य औषधि की अपेक्षा वही उपयोग में लाए जाने योग्य होती है।''

171वें अनुच्छेद से आगे अब कुछ अनुच्छेदों में महर्षि हैनिमैन क्रॉनिक रोगों की चिकित्सा के विषय में औषधि के चुनाव और उपयोग के बारे में निर्देशित करते हैं।

171वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''सोरा जनित, अ-रतिज (non-venereal) क्रॉनिक रोगों को आरोग्य करने के लिए हमें सिलसिलेवार अनेक एण्टिसोरिक औषधियों की जरूरत पड़ती है, उत्तरोत्तर प्रत्येक का चुनाव पहली औषधि की क्रिया, जो एक मात्रा में या बारी-बारी से अनेक मात्राओं में दी गई हो, पूरी होने के बाद, बचे हुए लक्षणों के समूह के अनुरूप होम्योपैथिक आधार पर चुनाव करते हुए करना होता है।''

172वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''रोग के लक्षण बहुत कम होने पर आरोग्य के रास्ते में इसी प्रकार की दिक्कत आती है - यह एक ऐसी परिस्थिति है जो हमारे सावधानी पूर्ण ध्यान की माँग करती है, क्योंकि (ज्ञात होम्योपैथिक औषधियों की कमी के अतिरिक्त) इसके दूर कर देने से, अन्य सब प्रकार की चिकित्सा के सम्भावित तरीकों की अपेक्षा इस अत्यधिक परिपूर्ण चिकित्सा (*होम्योपैथी*) से आरोग्य की राह में आने वाली सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।''

173वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''वे ही रोग जिनमें हमें बहुत ही कम लक्षण मिल पाते हैं, इसी कारण से कम आरोग्य होने के लिए उत्तरदायी होते हैं, इनको एकांगी (one-sided) कहा जा सकता है, क्योकि वे एक या दो मुख्य लक्षण प्रकट करते हैं, जो अन्य लगभग सभी को धूमिल कर देते हैं। वे मुख्यत: क्रॉनिक रोगों की किस्म के होते हैं।''

174वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''उनका मुख्य लक्षण या तो कोई आन्तरिक कष्ट (यथा, लम्बी अवधि का सिरदर्द, बहुत लम्बे समय का अतिसार, या कोई पुरानी हृदयपीड़ा, आदि), या यह कोई वाह्य

Dr. G. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

किस्म का रोग होता है। बाद के चरित्र वाले रोग स्थानीय रोगों के नाम से जाने जाते हैं।''

175वे अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:
''पहली किस्म के एकांगी (one-sided) रोगों के लिए तो अक्सर चिकित्सक कक विवेक की कमी को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, क्योकि उसने वास्तव में विद्यमान लक्षणों को पूरी तरह नहीं खोजा है, जिनके द्वारा रोग के पूरे चित्र को तैयार किया जा सकता था।''

176वें अनुच्छेद में इसी श्रृंखला की अगली कड़ी के रूप में वे कहते हैं कि:
''तथापि, फिर भी कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनके बहुत सावधानीपूर्वक परीक्षण के बाद भी (अनुच्छेद 84 से 98) केवल एक या दो गम्भीर, उग्र लक्षण ही स्पष्ट गोचर होते हैं, जबकि अन्य लक्षण मात्र अस्पष्ट होते हैं।''

177वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ में कहते हैं कि:
''इस प्रकार के मामले से, जो अत्यधिक विरल होता है, सफलतापूर्वक निपटने के लिए, सर्व प्रथम इन थोड़े से लक्षणों से निर्देशित हो कर, हम अपने विचार के अनुसार सबसे उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि चुनें।''

178वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:
''बिना शक, कभी कभी ऐसा होता है कि दृढ़तापूर्वक होम्योपैथिक सिद्धान्त पर चुनी गई यह औषधि विद्यमान रोग के उन्मूलन के लिए समान कृत्रिम रोग प्रस्तुत करती है, तब ऐसा होने की अत्यधिक सम्भावना होती है जब रोग के ये थोड़े से लक्षण बहुत सुस्पष्ट, सुनिश्चित, असामान्य और अपनी विशेष पहचान वाले (चारित्रिक) हों।''

179वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:
''तथापि, इस प्रकार के मामले में पहली बार चुनी गई औषधि अक्सर मात्र आंशिक होगी, अर्थात्, पूरी तरह उपयुक्त नहीं होगी, क्योंकि सही चुनाव के लिए मार्गदर्शन करने के लिए काफी संख्या में लक्षणों का अभाव था।''

Dr. S. K. Mangalin; Email: drmamgain@gmail.com

180वें अनुच्छेद में उक्त मामले में आंशिक होम्योपैथिक औषधि का क्या परिणाम हो सकता है, वे इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि:

''इस मामले में यथासम्भव जो औषधि चुनी गई है, लेकिन वह उपरोक्त कारण से केवल अधूरी होम्योपैथिक होने के कारण, अत: आंशिक रूप से समान होने के कारण, रोग पर अपनी क्रिया के दौरान - जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है (अनुच्छेद 162, इत्यादि) जहाँ होम्योपैथिक औषधियों की संख्या सीमित होने के कारण औषधि का चुनाव भी अधूरा रहता है - सहायक लक्षण उत्पन्न कर देती है, और इन लक्षणों के क्रम में अनेक प्रभास (phenomena) रोगी के स्वास्थ्य की दशा के साथ मिल जाते हैं, जो साथ ही रोग के अपने लक्षण भी होते हैं, यद्यपि ये पहले कभी भी अनुभव नहीं किए गए हों या बहुत विरले अनुभव किए गए हों, कुछ लक्षण जो रोगी ने कभी अनुभव नहीं किए थे या जो उसने केवल अस्पष्ट रूप से अनुभव किए थे बहुत स्पष्ट हो जाते हैं।''

181वें अनुच्छेद में वे इसी संदर्भ में आगे कहते हैं कि:

''इस बात पर कोई विरोध नहीं होना चाहिए कि इस रोग के अब जो लक्षण उत्पन्न हुए हैं, उक्त सहायक प्रतिभास और सहायक लक्षण, उपयोग की गई औषधि के कारण ही हुए हैं। निश्चित रूप से उनके मूल में उसकी (*औषधि की*) जिम्मेदारी है, लेकिन वे केवल ऐसे चरित्र के लक्षण होते हैं जिन्हें रोग स्वयं शरीर में उत्पन्न करने में समर्थ होता है और जिन्हें दी गई औषधि के द्वारा इसकी तत्समान लक्षण उत्पन्न करने की शक्ति के कारण बुलाया गया और प्रकट होने के लिए मजबूर किया गया, एक शब्द में, लक्षणों के इस समूह को जो अब इन्द्रियगोचर हो रहा है, रोग से ही सम्बन्धित वास्तविक दशा मान लेना चाहिए और आगे की चिकित्सा इसी आधार पर करनी चाहिए।''

उपरोक्त लक्षण समूह के सम्बन्ध में उन्होंने टिप्पणी की है कि:

''जब वे (*लक्षण*) रहन-सहन और आहार विहार में खास गड़बड़, उग्र भावावेग या शरीर में उग्र उथलपुथल के कारण यथा मासिक होने या रुक जाने से, गर्भ धारण या प्रसव, आदि कारणों से न हुए हों।''

182वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि अपूर्ण औषधि का चुनाव, जैसा कि बहुत सीमित लक्षणों के विद्यमान होने के कारण होना पूरी तरह सम्भव था, रोग के समस्त लक्षणों

Dr S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

को प्रकट करने का कार्य करता है और इस प्रकार दूसरी अधिक उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि का चुनाव करना सुगम हो जाता है।''

183वें अनुच्छेद में वे सुझावों को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि:

''अत: जब भी पहली औषधि की मात्रा से लाभ होना रुक जाता है (यदि नए विकसित लक्षण अपनी गम्भीरता के कारण तुरत सहायता की माँग न करें – तथापि जो होम्योपैथिक औषधि की मात्रा की अल्पता के कारण बहुत क्रॉनिक रोगों में अत्यधिक विरल होता है) तो रोग का नए सिरे से ही परीक्षण करना चाहिए और रोग की वर्तमान स्थिति को अवश्य लिख लेना चाहिए, क्योंकि अब लक्षणों का समूह बड़ा और अधिक पूर्ण हो गया है, अत: इसी के अनुरूप दूसरी होम्योपैथिक औषधि का चुनाव किया जाना चाहिए, जो वर्तमान रोग के मामले के सर्वथा अनुकूल और जो अधिकाधिक उपयुक्त होगी।''

इस अनुच्छेद के अन्त में महर्षि हैनिमैन ने एक टिप्पणी दी है जिसमें वे कहते हैं कि:

''ऐसे मामलों में जहाँ रोगी बहुत बीमार अनुभव करता है (यद्यपि, ऐसा क्रॉनिक मामलों में बहुत ही कम होता है, लेकिन एक्यूट रोगों के मामले में अक्सर होता है), हालाँकि उसके लक्षण अत्यधिक अस्पष्ट होते हैं, अत: इस दशा के लिए रोगी के स्नायुओं की सुन्न (benumbed) दशा को उत्तरदायी माना जा सकता है, जो रोगी के दर्दों और कष्टों को स्पष्टरूप से अनुभव नहीं होने देती, इस आन्तरिक संवेदनशीलता की मन्दता को ओपियम द्वारा दूर किया जा सकता है और इसकी द्वितीयक क्रिया में रोग के लक्षण स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाते हैं।''

184वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि इस प्रकार के रोगी मामलों में किस प्रकार पूरा आरोग्य होने तक कैसे आगे बढ़ना चाहिए। वे कहते हैं कि:

''इस प्रकार औषधि की प्रत्येक नयी मात्रा की क्रिया पूरी हो जाने के बाद (अर्थात् जब यह औषधि की मात्रा और उपयोगी और सहायक नहीं रहती), रोग की बची हुई दशा के संदर्भ में बचे हुए लक्षणों को नए सिरे से लिखना चाहिए, और अब पाए गये लक्षणों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अन्य होम्योपैथिक औषधि की खोज करनी चाहिए, इस प्रकार पूर्ण आरोग्य प्राप्ति तक करते जाना चाहिए।''

Dr. S. K. Mangairi, Email: drmangairi@gmail.com

185वें अनुच्छेद में एकांगी (one-sided) स्थानिक रोगों के सम्बन्ध में उनका कहना है कि:

''एकांगी रोगों में तथाकथित स्थानिक कष्टों का अपना एक प्रमुख स्थान है, यह किसी नाम से उन परिवर्तनों और कष्टों का ज्ञान कराता है जो शरीर के बाहरी अंगों पर प्रकट होते हैं। अभी तक पुरानी पद्धतियों में यह विचार प्रचलित था कि मात्र ये स्थानिक अंग ही रोग द्वारा प्रभावित होते हैं और शेष शरीर अछूता रहता है – यह एक थ्योरिटीकल, असंगत (बेहूदा) सिद्धान्त था, जो अत्यधिक अनिष्टकारी औषधीय चिकित्सा की ओर ले गया।''

186वें अनुच्छेद में तथाकथित ऐसे स्थानिक कष्टों के विषय में, जो गम्भीर चोटों के कारण हुए हों, क्या उनसे पूरे शरीर पर कोई प्रभाव पड़ता है इस विषय में बतलाते हैं कि:

''तथाकथित ऐसे स्थानिक कष्ट जो थोड़े समय पहले पूरी तरह बाहरी चोट से हुए हों, प्रथम दृष्टि में अभी भी स्थानिक रोग कहलाने के अधिकारी होते हैं, लेकिन तब चोट बहुत मामूली होनी चाहिए, और उक्त मामले में इसका कोई महत्व नहीं होगा। तथापि ऐसी चोटों के मामलों में जब बाहर से उत्पन्न हुई चोटें, यदि वे गम्भीर हों, तो पूरा जीवित शरीर सहानुभूति प्रकट करता है; ज्वर आदि हो जाते हैं। इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा के लिए शल्यचिकित्सा के लिए भेज दिया जाता है, लेकिन यह वहीं तक उचित है जहाँ तक कि प्रभावित अंगों को यान्त्रिक सहायता की आवश्यकता होती है ताकि आरोग्य, जिसको केवल जीवनीशक्ति द्वारा ही दूर करने की अपेक्षा की जाती है उसकी राह की बाहरी बाधाएँ ही यान्त्रिक तरीकों से दूर की जा सकें, यथा, जोड़, अस्थि आदि के विस्थापन (dislocations) बिठा कर, सुई और पट्टियों द्वारा खुले घावों के मुख बन्द करके, खुली धमनियों का मुख खून बहना रोकने के लिए यान्त्रिक दबाव से, जीवित अंगों में घुसे बाहरी पदार्थों को निकाल कर, शरीर के किसी खोखले भाग में स्थित क्षोभक (irritating) पदार्थ को निकालने के लिए या रिसावों (effusions) अथवा एकत्रित तरल को निकालने के लिए छिद्र बना कर, प्रत्यंगों की अस्थियों के टूटे हुए सिरों को आपस में मिला कर और उनको यथावत् रखने के लिए उचित पट्टियों की सहायता से बाँध कर, इत्यादि। लेकिन जब इस प्रकार की चोटों में, जैसा हमेशा होता है, पूर्ण जीवित शरीर (*जीवनीशक्ति*) आरोग्य का कर्य सम्पन्न करने के लिए क्रियात्मक ऊर्जस्वी (dynamic) शक्ति की सहायता की माँग करे, यथा, भारी आन्तरकि चोटों,

Dr. S.K. Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

मांसपेशियों, टेण्डन और रक्त-वाहिकाओं के कट-फट जाने के कारण उग्र ज्वर को आन्तरिक औषधि द्वारा दूर करना हो अथवा अंगों के जल जाने या झुलस जाने के कारण बाहरी दर्द को होम्योपैथी द्वारा शान्त करना हो, तब ऊर्जस्वी चिकित्सक की सेवाओं और उसकी सहायक होम्योपैथी की आवश्यकता पड़ती है।''

187वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने उन रोगों के बारे में उपदेश दिया है जो किसी बाहरी चोट से उत्पन्न न होकर किसी आन्तरिक रोग के कारण बाहरी अंगों पर क्षत के रूप में प्रकट होता है; वे कहते हैं कि:

''लेकिन वे प्रभाव, कष्ट और परिवर्तन जो बाहरी अंगों पर प्रकट होते हैं, जो किसी बाहरी चोट से उत्पन्न पहीं हुए हों या जिनका तात्कालिक उत्तेजक कारण कोई मामूली बाहरी घाव हो, बिल्कुल भिन्न तरीके से उत्पन्न होते हैं, उनका स्रोत किसी आन्तरिक व्याधि में होता है। उनको मात्र स्थानिक रोग मानना और उनकी चिकित्सा एकमात्र या लगभग एकमात्र शल्य चिकित्सा द्वारा या स्थानिक प्रयोग की दवाओं द्वारा करना - जैसा कि पुरानी पद्धति में प्राचीन काल से किया जाता रहा है - इसके परिणाम उतने ही बेहूदा, जितने कि घातक परिणाम देने वाले होते हैं।''

188वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''ऐसे प्रभाव केवल स्थानिक माने जाते थे, अत: स्थानिक रोग कहलाते थे, मानो वे पूरी तरह केवल उन ही अों तक सीमित थे और जबकि शरीर उनमें बहुत थोड़ा या जरा सा भी योगदान नहीं करता हो, या ऐसा भी कहा जा सकता है कि इन विशेष दृष्टिगोचर अंगों की व्याधि से शेष जीवित शरीर अनभिज्ञ रहता हो।''

यहाँ महर्षि हैनिमैन ने निम्न लिखित टिप्पणी की है:

''यह पुरानी पद्धति की अनेक भयंकर और घातक भूलों में से एक भूल है।''

189वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''फिर भी इस पर थोड़ा सा विचार ही हमें आश्वस्त कर देगा कि कोई भी बाहरी व्याधि (जो किसी प्रमुख बाहरी चोट से उत्पन्न नहीं हुई हो) बिना किसी आन्तरिक कारण और बिना पूरे शरीर की सहायता के, न तो उत्पन्न हो सकती है, न बनी रह सकती है या अधिक खराब ही हो सकती है, परिणामस्वरूप वह (*शरीर*) अवश्य रोगी दशा में होना चाहिए। यह (*बाहरी रोग*) पूरे स्वास्थ्य की सहमति के बिना और बिना पूरे जीवित शरीर के सहयोग के (संवेदनशील और तुनक मिजाज (irritable)

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

जीवनीशक्ति के बिना जो शरीर के दूसरे समस्त अंगों में व्याप्त रहती है) प्रकट नहीं हो सकता, वास्तव में, पूरे (विकृत) जीव की सहायता के बिना इसकी उत्पत्ति की कल्पना करना भी असम्भव है; शरीर के सब अंग सम्पूर्ण अनुभूतियों और प्रक्रियाओं से युक्त व्यक्ति का निर्माण करने के लिए आपस में अत्यधिक घनिष्ठता से जुड़े होते हैं। ओठ पर कोई उद्‌भेद, कोई अंगुलबेढ़ा (whitlow) किसी पूर्व और साथ ही आंन्तरिक अस्वस्थता के बिना उत्पन्न हो ही नहीं सकता।''

190वें अनुच्छेद में वे बाहरी अंगों की व्याधियों की चिकित्सा चाहे वे बाहर से किसी छोटी चोट द्वारा हुई हों अथवा नहीं पूरे शरीर को ध्यान में रख कर करने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं कि:

''यदि ऐसी इच्छा हो कि चिकित्सा न्याय संगत, सुनिश्चित, गुणकारी और रोगमूलक हो तो बाहरी अंगों की किसी भी व्याधि की, जो किसी बाहरी छोटी सी भी चोट से उत्पन्न हुई हो या नहीं, सब प्रकार की सच्ची औषधीय चिकित्सा पूरे शरीर को ध्यान में रख कर आन्तरिक औषधियों के द्वारा करनी चाहिए ताकि सामान्य व्याधि समूल नष्ट हो कर आरोग्य हो जाए।''

191वें अनुच्छेद में वे अनुभव के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि:

''अनुभव से यह असंदिग्धरूप से सि् हो गया है और जो सभी मामलों में दर्शाता है कि प्रत्येक शक्तिशाली औषधि ऐसे रोगी में खाने के तुरत बाद सामान्य स्वास्थ्य में और खासतौर से बाहरी प्रभावित अंगों (जिन्हें सामान्य चिकित्सा पद्धति में बिल्कुल पृथक माना जाता है) में, यहाँ तक कि शरीर के तथाकथित सबसे बाहरी अंगों में भी, महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा करती है, इस प्रकार जो परिवर्तन होता है, बाहरी व्याधि के (किसी बाहरी उपयोग की औषधि के बिना ही) दूर हो जाने के साथ ही सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य के पुनर्स्थापित हो जाने के कारण, वह बहुत हितकारी होता है, बशर्ते कि उपयुक्त आन्तरिक औषधि का चुनाव पूरी दशा को ध्यान में रखते हुए होम्योपैथिक आधार पर किया गया हो।''

192वें अनुच्छेद में वे ऐसी उपयुक्त औषधि के चुनाव के सम्बन्ध में निर्देशित करते हुए कहते हैं कि:

Dr S. K. Mangalik Email: drmangan@gmail.com

''रोग की खोज के मामले में श्रेष्ठ तरीके से यह तब लागू होता है जब स्थानीय व्याधि के एकदम सही चरित्र के साथ, रोगी के स्वास्थ्य में अवलोकन के योग्य सभी परिवर्तन, कष्ट और लक्षण और जो कुछ भी औषधि के उपयोग से पहले देखा गया होगा, औषधि की खोज करने से पहले, वह सब रोग का पूरा चित्र तैयार करने के संयोजन में लिया जाता है और औषधियों के बीच से एक ऐसी औषधि जिसके विशिष्ट रोगजनक प्रभाव ज्ञात हों और जो सम्पूर्ण रोग लक्षणों के अनुरूप हों, ताकि औषधि का चुनाव सच्चे तौर पर होम्योपैथिक हो।''

193वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''इस औषधि के माध्यम से केवल आन्तरिक उपयोग द्वारा (और, यदि रोग हाल में हुआ हो, तो, अक्सर इसकी पहली मात्रा से ही) स्थानीक (local) रोग के साथ ही शरीर के सामान्य रोग की दशा दूर हो जाती है, इस तरह पहले वाला और बाद का दोनों एक साथ आरोग्य हो जाते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि स्थानिक व्याधि पूरी तरह बाकी शरीर के रोग पर निर्भर थी अत: यह मान लेना चाहिए कि वह पूरे शरीर का ही एक अभिन्न अंग था, पूरे रोग के एक भाग की तरह अत्यधिक ध्यान देने योग्य और स्पष्ट लक्षण।''

194वें अनुच्छेद में यह बतलाते हुए कि यदि सारी सावधानी और प्रयास के बाद भी यदि रोग आरोग्य न हो तो प्रसुप्त सोरा को इसके लिए जिम्मेदार मानना चाहिए, वे कहते हैं कि:

''स्थानिक व्याधि के स्थान पर, चाहे वह हाल ही में हुआ एक्यूट रोग हो या काफी समय पहले से हो, बाहरी उपयोग की औषधि का प्रभावित स्थान पर मलना या लेप करना, भले ही यह होम्योपैथिक रूप से स्पेसिफिक ही क्यों न हो, उपयोगी नहीं होता है, परन्तु जब साथ ही इसका आन्तरिक उपयोग भी किया जाय तो ऐसी स्थानिक एक्यूट व्याधियों (यथा, अकेले-अकेले अंगों का प्रदाह (inflammation), इरिसिपेलस, इत्यादि) में भी जो अनुपातत: किसी भारी चोट से न होकर किसी डायनामिक या आन्तरिक कारण से उत्पन्न हुई हों, होम्योपैथिक औषधियों के सामान्य भण्डार से स्वस्थ्य की वाह्य और आन्तरिक दशा के अनुरूप चुनी गई औषधि से बिना किसी बाहरी मदद के, उनके परिणाम सुनिश्चित और उत्साहजनक होते हैं; यदि, ये रोग उक्त प्रकार से भी पूरी तरह निरोग नहीं होते है और पूरे पथ्य परहेज के बाद भी प्रभावित स्थान पर एवं आन्तरिक रूप से रोग के कुछ अंश को

Dr S. K. Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

जीवनीशक्ति सामान्य दशा पुनर्स्थापित करने में असफल रहती है, तब वह एक्यूट (जैसा अक्सर नही होता) सोरा का परिणाम होता है जो शरीर के अन्तरतम में प्रसुप्त (latent) अवस्था में था और अब एक क्रॉनिक रोग के रूप में विकसित होने के लिए प्रस्फुटित (burst forth) हो गया है।''

195वें अनुच्छेद में वे पिछले अनुच्छेद की बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि:
''ऐसे मामलों जो निश्चय ही विरल होते हैं, मौलिक आरोग्य सम्पन्न करने के लिए, जब एक्यूट दशा काफी सुधर जानें के बाद स्वास्थ्य में अब भी बचे हुए लक्षणों और रोगी के पहले वाले रोग की दशा में स्वास्थ्य के आधार पर उपयुक्त एण्टिसोरिक चिकित्सा (जैसा कि मैंने अपनी क्रॉनिक डिजिजेज में सुझाया है) करनी चाहिए। क्रॉनिक एक्यूट व्याधियों में जो स्पष्ट रूप से रतिज (venereal) न हों केवल एण्टिसोकि आन्तरिक चिकित्सा की ही आवश्यकता होगी।''

196वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:
''वास्तव में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि इस प्रकार की व्याधियों की समस्त लक्षणों के आधार पर ज्ञात सही होम्योपैथिक औषधि के न केवल आन्तरिक उपयोग से बल्कि साथ ही उसी औषधि का स्थानिक रूप से भी उपयोग करने से और अधिक शीघ्रता के साथ रोग आरोग्य हो जाएगा।''

197वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ में वे अगली बात कहते हैं कि:
''तथापि, इस प्रकार की चिकित्सा, बिल्कुल अमान्य है, न केवल सोरा धातुदोष द्वारा उत्पन्न स्थानिक लक्षणों के लिए, बल्कि, विशेष रूप से उनके लिए भी जो सिफिलिस या साइकोसिस धातुदोषों से भी उत्पन्न हुए हों, उन रोगों में जिनका प्रमुख लक्षण निरन्तर कोई स्थानिक व्याधि हो उनमें औषधि के आन्तरिक उपयोग के साथ-साथ वाह्य उपयोग करने में यह हानि है कि, इस प्रकार के उपयोग से, यह मुख्य लक्षण (स्थानिक व्याधि यथा, हालही में उत्पन्न हुई खुजली के उद्भेद, रतिज व्रण, मस्सा आदि) आन्तरिक रोग की अपेक्षा जल्दी समाप्त हो जाएगी, अत: हम पूर्ण आरोग्य की समानता से धोखा खा जाएँगे अथवा कम से कम पूर्ण आरोग्य कठिन तो होगा ही और कुछ मामलों में स्थानिक लक्षणों के समय से पहले ही गायब हो जाने के कारण यह निर्णय करना असम्भव हो जाएगा कि क्या साथ-साथ आन्तरिक औषधि के उपयोग करने से व्यापक रोग भी निर्मूल हो गया है।''

Dr. S. K. Mangain; Email: drmamgain@gmail.com

198वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं कि:

''आन्तरिक उपयोग के लिए जो औषधियाँ शक्तिशाली होती हैं उनका क्रॉनिक धातुदोष जनित रोगों के स्थानिक लक्षणों में मात्र वाह्य उपयोग करना उपरोक्त कारण से एकदम अमान्य होता है; क्योंकि, यदि क्रॉनिक रोग की स्थानिक व्याधि को एक तरफा तरीके से केवल स्थानिक रूप से दूर कर दिया जाए, तो आन्तरिक चिकित्सा जो पूर्ण स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना के लिए अनिवार्य होती है, वह संदिग्ध, अंधकार में रह जाती है; प्रमुख लक्षण (स्थानिक व्याधि) समाप्त हो जाता है और अन्य (*आन्तरिक रोग*) शेष रह जाता है, जिसके लक्षण स्थानिक व्याधि की अपेक्षा इसके बाद रोग के चित्र को स्पष्टता से और विशिष्टता के साथ प्रदर्शित करने के लिए अस्पष्ट, यदा कदा होने वाले, कम देर बने रहने वाले और अक्सर विशिष्टता में अधूरे और बहुत हल्के चरित्र के हो जाते हैं।''

199वें अनुच्छेद में वे बतलाते है कि यदि रोग की पूरी तरह होम्योपैथिक औषधि अभी तक नहीं खोजी गई है और बाहर के उपयोग की चिकित्सा से स्थानिक लक्षण समाप्त कर दिए गए हैं तो क्या परिणाम होगा। उनका कहना है कि:

''यदि रोग की पूरी तरह होम्योपैथिक औषधि अभी तक नहीं खोजी गई है, साथ ही जब उक्त रोग के स्थानिक लक्षण संक्षारक (corrosive) या सुखानेवाली बाहर से उपयोग की औषधि द्वारा अथवा चाकू द्वारा विनष्ट किए जा चुके हैं, तब बचे हुए अनिश्चित और (असामान्य) और अस्थिर लक्षणों की प्रतीती के कारण रोगी मामला अत्यधिक दुस्तर हो जाता है; क्योंकि, जो लक्षण पूरी तरह उपयुक्त औषधि के चुनाव के लिए बहुत उपयोगी हो सकते थे, जिसके आन्तरिक उपयोग से रोग पूरी तरह समाप्त हो जाना चाहिए था, अर्थात् वाह्य प्रमुख लक्षण, वह अब हमारे अवलोकन से ओझल हो चुका होता है।''

इस अनुच्छेद के 'अभी तक नहीं खोजी गई है' के लिए उन्होंने एक टिप्पणी लिखी है:

''जैसा कि मेरे समय से पहले मस्सों जैसे रोग की औषधियों और एण्टिसोरिक औषधियों के साथ था।''

200वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

''यदि यह अब भी आन्तरिक चिकत्सा में मार्गदर्शन करने लिए उपस्थित होता और पूरे रोग के मामले के लिए होम्योपैथिक औषधि खोजी होती, और वह मिल गई होती, तो उक्त औषधि के उपयोग के दौरान लगातार बनी रहने वाली स्थानिक व्याधि ने बतला दिया होता कि रोग अभी तक पूरी तरह निरोग नहीं हुआ है; परन्तु, यदि यह (स्थानिक व्याधि) अपने स्थान पर आरोग्य हो गया होता तो यह विश्वसनीय प्रमाण होता कि रोग पूरी तरह समाप्त हो गया है और सम्पूर्ण रोग से आरोग्य प्राप्ति सम्पन्न हो गई है – पूर्ण आरोग्य प्राप्ति के लिए एक असीमित, अपरिहार्य लाभ।''

201वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन बतलाते है कि जीवनीशक्ति के किसी क्रॉनिक रोग से भारग्रस्त होने पर वह जीवन को सुचारु चलाने के लिए शरीर के बाहरी भाग पर स्थानिक व्याधि के रूप में क्या करती है। वे कहते हैं कि:

''यह सुस्प्ष्ट है कि, यदि, मनुष्य की जीननीशक्ति किसी क्रॉनिक रोग के भार से ग्रस्त हो जाए, जिसे वह स्वयं की शक्ति से पराजित करने में असमर्थ हो, तो स्वभावत: शरीर के किसी बाहरी अंग पर कोई सी स्थानिक व्याधि विकसित करने की योजना अपना लेती है, पूरी तरह इस अभिप्राय से कि उक्त अंग को जो मानव जीवन के लिए अपरिहार्य न हो, रोग की दशा में बनाए रखने से आन्तरिक रोग शान्त रहे, अन्यथा जिससे महत्वपूर्ण अंगों के विध्वंस की आशंका उत्पन्न हो जाती और रोगी जीवन से वंचित हो जाता, कहने का तात्पर्य यह है कि, इस प्रकार उक्त आन्तरिक रोग को स्थानिक प्रतिनिधि व्याधि के रूप में स्थानान्तरित कर देती है और इसको वैसे ही वहाँ खींच ले जाती है। स्थानिक रोग की उपस्थिति इस प्रकार आन्तरिक रोग को कुछ समय के लिए शान्त कर देती है, यद्यपि जीवनीशक्ति इस आन्तरिक रोग को वास्तव में आरोग्य करने अथवा कम ही करने में सफल नहीं होती है। तथापि स्थानिक व्याधि सामान्य रोग के अतिरिक्त और कुछ कदापि नहीं हो सकती, बल्कि शरीर की जीवनीशक्ति द्वारा इसके एक भाग को एक दिशा में भेज दिया जाता है, और आन्तरिक कष्ट को कम करने में सहायक होने के लिए, शरीर के कम घातक बाहरी अंग पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है। लेकिन (जैसा कहा जा चुका है) कि आन्तरिक रोग को शान्त करने के लिए इस स्थानिक रोग के द्वारा फिर भी जीवनीशक्ति को पूरे आन्तरिक रोग को कम करने अथवा आरोग्य करने की दिशा में कुछ भी लाभ नहीं मिलता है, तिस पर भी, इसके विपरीत प्रकृति धीरे धीरे आन्तरिक रोग को बढ़ने देने के लिए मजबूर रहती है और हमेशा स्थानिक लक्षण में अधिकधिक वृद्धि होती जाती है, ताकि यह आन्तरिक रोग की वृद्धि का स्थान ले

Dr. S. K. Mangalani Email: drmangalani@gmail.com

कर उसे नियन्त्रण में रख सके। जैसे जैसे समय बीतने के साथ सामान्य आन्तरिक रोग बढ़ता जाता है, ठीक उसी प्रकार जब तक आन्तरिक सोरा आरोग्य नहीं होता, टाँगों के पुराने व्रण बढ़ते जाते हैं और जब तक साइकोसिस आरोग्य नहीं होता अंजीर जैसे मस्से (fig warts) बनते और बढ़ते जाते हैं जिसके कारण इनको आरोग्य करना कठिन से कठिनतर होता जाता है।''

इस अनुच्छेद के कथन ''आन्तरिक कष्ट को कम करने में सहायक होने के लिए'' के सम्बन्ध में महर्षि हैनिमैन ने एक टिप्पणी की है:

''पुरानी पद्धति के चिकित्सक भी ऐसे मामलों में कुछ ऐसा ही करते हैं, शरीर के बाहरी अंगों पर उनको आरोग्य करने में समर्थ न हो कर व्रण बना कर वे, जितने समय तक, दर्दपूर्ण उत्तेजना उत्पन्न करके, जिसके लिए रोगी शरीर सहन करने का आदि नहीं होता, तब तक के लिए आन्तरिक क्रॉनिक रोग को शान्त कर देते हैं, बल्कि, इसके विपरीत वे सामान्य स्वास्थ्य को, सहज जीवनीशक्ति द्वारा अधिकांश स्थानान्तरणों की अपेक्षा, कहीं अधिक कमजोर और ध्वंस कर देते हैं।''

202वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''यदि पुरानी पद्धति का चिकित्सक यह मान कर कि ऊपर से लगाने वाली औषधियों से स्थानिक लक्षणों को समाप्त कर देने से पूरे रोग को आरोग्य कर देगा, बल्कि, उल्टे ऐसा न हो कर प्रकृति आन्तरिक रोग और पहले से विद्यमान अन्य प्रसुप्त (latent) रोग के लक्षणों के साथ ही स्थानिक व्याधि को बढ़ाते हुए अपनी क्षति की प्रतिपूर्ति करती है; कहने का तात्पर्य है कि वह आन्तरिक रोग को बढ़ा देती है। जब ऐसा हो जाता है तो कहा जाता है, यद्यपि गलत तरीके से, कि स्थानिक रोग वाह्य उपयोग की दवाओं से शरीर के अन्दर वापस भेज दिया गया है।''

203वें अनुच्छेद में पिछले अनुच्छेदों के कथन को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''इस प्रकार के स्थानिक लक्षणों का प्रत्येक वाह्य उपचार, जिसका उद्देश्य उन्हें शरीर की सतह से समाप्त करना होता है, जबकि आन्तरिक धातुदोष जनित रोग आरोग्य हुए बिना रह जाता है, जैसे कि, उदाहरण के लिए, हर प्रकार के मरहम द्वारा चर्म के सोरिक उद्भेद यथा; रतिज व्रण को कॉस्टिक द्वारा जला कर, मस्सों (condylomata) को चाकू, बन्धन (ligature) या प्रदाहन (cautery) के द्वारा उनके स्थान पर नष्ट करके दूर करना, ऐसी घातक वाह्य चिकित्सा के तरीके से, जिसे सर्वत्र उपयोग किया जाता है, सब प्रकार के असंख्य नाम या अनाम क्रॉनिक

Dr. S. K. Mangalam, Email: drmangam@gmail.com

रोगों, जिनके अन्तर्गत मानवता कराहती रहती है, का उपजाउ स्रोत रह चुका है; यह एक अत्यन्त गम्भीर अपराधिक प्रक्रिया है, जिसका अपराधी चिकित्सा जगत हो सकता है, लेकिन, फिर भी अभी तक यही एकमात्र तरीका सामान्यत: अपनाया गया है, जो व्यावसायिक शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाता है।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में वे लिखते हैं कि:

''क्योंकि साथ ही आन्तरिक रूप से दी गई कोई भी औषधि केवल रोग वृद्धि का ही काम करती है, क्योंकि, इन औषधियों में पूरे रोग को आरोग्य करने की कोई विलक्षण शक्ति नहीं होती, बल्कि ये शरीर पर आक्रमण कर देती हैं और अधिक कमजोर कर देती हैं और ऊपर से उस पर अन्य क्रॉनिक औषधीय रोग थोप देती हैं।''

204वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते है कि यदि हम उन सब क्रॉनिक रोगों, कष्टों को जो निरन्तर अस्वास्थ्यकर जीवनयापन (77वाँ अनुच्छेद) पर निर्भर करते हैं और उन असंख्य औषधीय व्याधियों (74वाँ अनुच्छेद) को भी जो अक्सर सामान्य चरित्र के आधार पर पुरानी पद्धति के चिकित्सकों द्वारा की गई तर्कहीन, निरन्तर, परेशान कर देने वाली दुखदायी चिकित्सा से उत्पन्न हुए हों उनको अलग कर दें, तो बाकी वचे हुए क्रॉनिक रोगों का विकास, बिना अपवाद, इन तीन क्रॉनिक धातुदोषों, आन्तरिक सिफिलिस, आन्तरिक साइकोसिस, लेकिन मुख्यत: और असीमित अधिक अनुपात में, आन्तरिक सोरा का परिणाम होते हैं, इनमें से प्रत्येक अपने प्राथमिक, प्रतिनिधि स्थानिक लक्षणों (सोरा के मामले में खुजलीयुक्त उद्‌भेद, सिफिलिस में रतिज व्रण या ब्यूबो और साइकोसिस में मस्से) के उत्पन्न होने से पहले पूरे शरीर पर सब ओर से पूरी तरह अधिकार जमा चुका होता है जिसके कारण इनका विस्फोट बाधित रहता है, और ये क्रॉनिक धातुदोष जनित रोग, यदि इनको इनके स्थानिक लक्षणों से वंचित कर दिया जाय तो शक्तिशाली प्रकृति द्वारा अनिवार्यरूप से देर सबेर विकसित हो कर विस्फोट होने के लिए पूर्वनिर्धारित हैं और इस प्रकार वे सब प्रकार के अनाम कष्ट उत्पन्न करते हैं, असंख्य क्रॉनिक रोग उत्पन्न करते हैं जिन्होंने मानव जाति को सैकड़ों और हजारों वर्षो से ग्रस्त किया है, यदि चिकित्सकों ने तर्कसंगत तरीके से, मौलिकरूप से आरोग्य करने का प्रयत्न किया होता और इनके वाह्य लक्षणों को बिना स्थानिक दवाओं का उपयोग किए, आन्तरिक रूप से इन तीनों धातुदोषों में से प्रत्येक को उपयुक्त होम्योपैथिक औषधियों द्वारा शरीर में से बुझा देने का प्रयास किया होता तो इनमें से कोई सा भी अस्तित्व में नहीं आ पाता।''

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

205वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन बतलाते हैं कि होम्योपैथिक चिकित्सक को इन क्रॉनिक धातुदोषों की सफल चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिए। वे कहते हैं कि:

''होम्योपैथिक चिकित्सक क्रॉनिक धातुदोषों के इन प्राथमिक (*स्थानिक*) लक्षणों में से कभी एक लक्षण की भी चिकित्सा नहीं करता है और न ही स्थानिक औषधियों के उपयोग के परिणामस्वरूप विकसित इनकी द्वितीयक व्याधियों की ही चिकित्सा करता है (न ही उन वाह्य कारकों की जो ऊर्जस्वी (डायनामिक) तरीके से काम करते है, यहाँ तक कि उनकी भी नहीं जो यान्त्रिक तरीके से किए जाते हैं), परन्तु वह उन मामलों में केवल उस एक महत् क्रॉनिक धातुदोष को आरोग्य करता है जिस पर वे आधारित होते हैं, जिसके बाद सभी प्राथमिक और द्वितीयक लक्षण स्वाभाविकरूप से समाप्त हो जाते हैं, परन्तु पुरानी पद्धति के चिकित्सकों का यह तरीका नहीं था जो सामान्यत: होम्योपैथिक चिकित्सक से पहले अपनाया गया था, हाय! वह (होम्योपैथिक चिकित्सक) पाता है कि प्राथमिक लक्षण उनके द्वारा स्थानिक साधनों से पहले ही विध्वंस कर दिए गए हैं और अब उसको द्वितीयक लक्षणों के सहारे से आगे ही कुछ करना पड़ेगा, अर्थात् इन मूलभूत धातुदोषों के विकास के परिणाम से उत्पन्न होने वाली व्याधियों से ही, परन्तु विशेषत: आन्तरिक सोरा से विकसित क्रॉनिक रोगों के साथ, जिनकी, जहाँ तक इसको अनेक वर्षों के चिन्तन, अवलोकन और अनुभव के बाद अकेला चिकित्सक समझ सकता है, आन्तरिक चिकित्सा कर सकता है। मैंने अपनी पुस्तक क्रॉनिक डिजिजेज में इसका उल्लेख करने का प्रयास किया है पाठक उसे पढ़ें।''

इस अनुच्छेद के 'ऊर्जस्वी (डायनामिक) तरीके' के सम्बन्ध में वे निम्नलिखित टिप्पणी में लिखते हैं:

''अत: उदाहरण के तौर पर, मैं आर्सेनिकयुक्त औषधि फ्रेरि कॉस्मी के माध्यम से तथाकथित (अक्सर सिफिलिस के साथ अत्यधिक विकसित सोरा के संयोग से) ओठ और चेहरे के कैन्सर का स्थानिक विध्वंस करने की राय नहीं दे सकता, न केवल इसलिए कि यह अत्यधिक दर्दपूर्ण है और अक्सर असफल हो जाता है, बल्कि इस कारण से भी, क्योंकि, यदि यह ऊर्जस्वी औषधि स्थानिक उपयोग से शरीर के प्रभावित अंग को घातक (मैलिग्नैण्ट) स्थानिक व्रण से स्वतन्त्र करने में वास्तव में सफल भी हो जाता तो भी मूल रोग इस प्रकार जरा भी कम न होता, इसलिए जीवन रक्षक जीवनीशक्ति महत् आन्तरिक रोग के क्रिया क्षेत्र को किसी अधिक महत्वपूर्ण अंग में स्थानान्तरित करने के लिए बाध्य हो जाती (जैसा कि यह प्रत्येक रोग के रूप-परिवर्तन के मामले में होता है) और परिणाम अन्धापन, बहरापन, उन्माद,

Dr. S K. Mamgain; Email: drmamgain@gmail.com

घुटनवाला दमा, शोथ, रक्ताघात (apoplexy), इत्यादि हो जाता है। लेकिन स्थानिक आर्सेनिकल औषधि के द्वारा घातक व्रण की यह संदिग्ध स्थानिक विमुक्ति आखिरकार केवल उन मामलों में सफल होती है जहाँ व्रण ने अभी तक भी बड़ा आकार ग्रहण नहीं किया हो और जीवनीशक्ति अभी तक भी बहुत ओजस्वी हो; परन्तु यह ऐसी परिस्थिति में होता है जब सम्पूर्ण मूल आन्तरिक रोग का आरोग्य करना अभी तक भी सम्भव हो। आन्तरिक धातुदोष को पहले आरोग्य किए बिना जब चेहरे या वक्ष का कैन्सर केवल चाकू के द्वारा हटा दिया जाता है या पूटीभूत (encysted) ट्यूमर निकाल दिए जाते हैं तो और कुछ और खराब घटित हो जाता है अथवा मृत्यु ही हो जाती है, अत: परिणाम वही होता है। ऐसा असंख्य बार होता रहा है, परन्तु पुरानी पद्धति में अब भी हर नए मामले में उसी प्रकार बिना समझे विनाशकारी परिणाम के साथ वही तरीका जारी है।''

इतना तो सभी जानते हैं कि कैन्सर के मामालों में जब शरीर के किसी बाहरी अंग पर प्रकट रोग के प्रभाव (व्रण या गाँठ) को शल्यचिकित्सा द्वारा निकाल दिया जाता है तो रोगी के स्वास्थ्य की दशा अत्यधिक दयनीय हो जाती है। जैसा कि इस 205वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने कहा है कि कभी कभी ऐसी चिकित्सा घातक भी सिद्ध हो जाती है। ऐसा मेरे (डा0 ममगाई) अनुभव में भी देखने में आया है, एक मामले का उदाहरण - लगभग 8 वर्ष पहले एक गुटखा खाने की लत वाले 35 वर्षीय व्यक्ति के निचले ओठ पर कैन्सर हो गया था, उसका एक मामा उसको मेरे पास लाया था मैंने उसके लक्षणों के अनुरूप होम्योपैथिक औषधि दी जिससे कुछ सुधार होना शुरु हो जाने के बावजूद अन्य लोगों की राय पर वह अस्पताल चला गया, जहाँ उसके प्रभावित भाग की शल्यचिकित्सा कर दी गई, जैसा की बाद में उसके मामा ने बतलाया, जिसके एकदम बाद अस्पताल में ही उसके सारे शरीर में असह्य जलन और पीड़ा होना शुरु हो गई, शरीर सूज गया और चर्म पर दरारें पड़ गईं, एक माह के भीतर ही तड़प तड़प कर उसकी मृत्यु हो गई। महर्षि हैनिमैन का कथन आज भी कितना तथ्यपरक है, इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि पहले आन्तरिक चिकित्सा किए बिना क्रॉनिक धातुदोष के कारण शरीर के बाहरी भाग पर उत्पन्न कष्ट को चाकू के द्वारा दूर कर देने से परिणाम कितना घातक एवं यन्त्रणादायक हो सकता है।

206वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि क्रॉनिक रोग की चिकित्सा शुरु करने से पहले सावधानीपूर्ण जॉच-पड़ताल आवश्यक होती है। वे कहते हैं कि:

Dr. G. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

''किसी क्रॉनिक रोग की चिकित्सा कि शुरु करने से पहले, उसकी सावधानी के साथ जाँच-पड़ताल करना बहुत जरूरी है, कि क्या रोगी को कभी रतिज (venereal) (या मस्से जैसे गनोरिया से) संक्रमण हुआ था, या जब केवल सिफिलिस (या विरल किस्म के मस्से जैसा) रोग विद्यमान हो, परन्तु आजकल यह रोग कदाचित ही केवत अकेला देखने को मिलता है, क्योंकि तब चिकित्सा केवल इसी दिशा में चलानी होती है। क्योंकि तब चिकित्सक सोचता है कि उसके पास पुराने रतिज रोग का मामला चिकित्सा के लिए आया है, लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि इस प्रकार का संक्रमण पहले कभी हुआ है, और जैसा कि हमेशा होता है, उन मामलों की चिकित्सा में जिनमें सोरा विद्यमान है, क्योंकि उनमें बाद वाला पहले वाले के साथ जटिल हुआ रहता है, तब लक्षण शुद्ध सिफिलिस के नहीं होते हैं; हमेशा या लगभग हमेशा उसे सोरा के साथ जटिल हुए सिफिलिस रोग के अथवा साइकोसिस के साथ मिल कर जटिल हो गए मामले, यदि बाद के ये संक्रमण स्पष्ट हो जाते हैं; तो इनकी चिकित्सा करनी पड़ती है, आन्तरिक खुजली का दोष (सोरा) क्रॉनिक रोगों का कहीं अधिक बार (सुनिश्चित) आधारभूत कारण होता है, कभी कभी, रोग ग्रस्त शरीरों में दोनों (*सोरा और सिफिलिस*) धातुदोष साइकोसिस के साथ भी मिल कर और जटिल हो जाते हैं, या जैसा अधिकांश बार होता है अन्य सभी क्रॉनिक कष्टों का, चाहे उनके नाम कुछ भी क्यों न हों, सोरा ही एकमात्र आधारभूत कारण होता है, इसके अतिरिक्त, जो अक्सर एलोपैथिक अकुशलता के द्वारा भयानक सीमा तक गड़बड़ के द्वारा बढ़ा दिए और विकृत कर दिए गए होते हैं उनकी चिकित्सा भी करनी पड़ती है।

'सावधानी के साथ जाँच-पड़ताल' के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है कि:

''इस प्रकार की जाँज-पड़ताल में हमें रोगियों और उनके मित्रों के, जो अक्सर क्रॉनिक, यहाँ तक कि अति गम्भीर और बहुत हठी रोगों में भी, बहुत साल पहले ठण्ड लग जाने (पूरी तरह भीग जाने, गरम शरीर पर ठण्डा पानी पी लेने) या पुराना भय, कोई मोच, खीज (यहाँ तक कि जादू टोने) उसके कारण का भी दावा करते हैं, इत्यादि, ऐसे कथन से धोखा खा जाने से अपने आप को बचाना चाहिए। जैसा विकसित सोरा से उत्पन्न क्रॉनिक रोगों के मामले में होता है उसके अनुपात में, ये कारण एक स्वस्थ व्यक्ति में क्रॉनिक रोग विकसित करने, वर्षों तक बनाए रखने और सालों साल बढ़ाते जाने के लिए बहुत नगण्य होते हैं। लम्बी अवधि के गम्भीर और हठी रोगों के प्रारम्भ और वृद्धि के मूल में, इन याद रखे हुए अस्वास्थ्यकर प्रभावो

Dr. S. K. Mangaini Email: drmangain@gmail.com

की अपेक्षा, अधिक महत्व के चरित्र के ही कारण होने चाहिएँ, दावा किए गए कारण तो प्रसुप्त क्रॉनिक धातुदोष की क्रियाशीलता को केवल बढ़ा देने भर का काम कर सकते हैं।''

207वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''जब उपरोक्त जानकारी प्राप्त हो चुके, तब भी होम्योपैथिक चिकित्सक के लिए यह सुनिश्चित करना बाकी रहता है कि उक्त समय तक क्रॉनिक रोग के लिए क्या एलोपैथिक चिकित्सा की गई थी, मुख्य रूप से कौन सी चिन्ताजनक औषधियाँ बार बार दी गई थीं, यह भी कि कौन से प्राकृतिक स्नान दिए गए थे और उनका क्या प्रभाव पड़ा था, यह सब बातें कुछ सीमा तक यह समझने के लिए कि मूल रोग की दशा में क्या विकृति आयी है, या उन औषधियों के उपयोग से बचा जा सके जो पहले ही अनुपयुक्त रूप से दी जा चुकी थीं।''

महर्षि हैनिमैन के समय में एलोपैथिक चिकित्सा में भी केवल प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त औषधियों का ही उपयोग होता था और वे ही औषधियाँ पोटेन्टाइज अवस्था में होम्योपैथी में भी उपयोग हुआ करती थीं और उनमें से अधिकांश औषधियों के प्रतिविष (antidote) भी ज्ञात किए जा चुके थे। परन्तु आज के युग में एलोपैथिक चिकित्सा में विशेषत: संश्लेषित (synthetic) औषधियों का उपयोग ही होता है अत: उनके प्रतिविष सहज नहीं हैं। फिर भी अनुभव में देखा गया है कि ऐसे जटिल रोगों में भी जब रोग के विद्यमान लक्षणों के आधार पर चुनी गई उपयुक्त औषधि का उपयोग उच्च पोटेन्सी में अति अल्प मात्रा में किया जाता है तो जीवनीशक्ति अनुकूल प्रतिक्रिया करती है और रोगी के स्वास्थ्य में सुधार होना शुरु हो जाता है।

208वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''उसके बाद रोगी की आयु, उसके रहन सहन का तरीका और भोजन, उसका व्यवसाय, उसकी पारिवारिक स्थिति, उसके सामाजिक सम्बन्धों पर भी विचार करना जरूरी है, क्योकि इन बातों से उसकी रोग वृद्धि, या उसके पक्ष में अथवा चिकित्सा में बाधा आदि में किस सीमा तक प्रभाव पड़ सकता है, इसी प्रकार यह जानने के लिए, उसके मस्तिष्क और स्वभाव की दशा पर भी ध्यान देना होता है और विचार करना पड़ता है कि क्या इनसे चिकित्सा में कोई बाधा आती है या इनमें सुधार करने, प्रोत्साहित करने या निर्देश देने की जरूरत है।''

Dr. G. K. Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

209वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''इतना कर लेने के बाद रोगी से बार बार बातचीत में चिकित्सक उसके रोग के चित्र के बारे में ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार यथा सम्भव पूरी तरह जानने का प्रयास करे, ताकि अत्यधिक असाधारण और विशिष्ट (चारित्रिक) लक्षणों को स्पष्टत: जानने में सफल हो जाए, ताकि चिकित्सा आरम्भ करने के लिए तद्नुसार प्रथम एण्टिसोरिक या अधिकाधिक लक्षणों की समानतायुक्त अन्य औषधि का चुनाव कर सके।''

210वें अनुच्छेद में सोरिक मूल के एकांगी (one-sided) रोगों की चिकित्सा के विषय में कहते हैं कि:

''सोरिक मूल के वे सभी रोग जिनके नाम मैंने ऊपर दिए हैं, उनके महत्वपूर्ण मुख्य लक्षण से पहले ही सभी अन्य लक्षणों का लोप हो जाने के फलस्वरूप उनका एकांगीपन आरोग्य होना कठिन प्रतीत होता है। इस चरित्र के वे रोग हैं जिनकी संज्ञा मानसिक रोग होती है। जो भी हो, वे स्पष्टत: दूसरे रोगों से भिन्न विशेष वर्ग नहीं बनाते, क्योंकि अन्य दूसरे सभी तथाकथित शारीरिक रोगों में स्वभाव और मानसिकता की दशा सर्वदा बदल जाती है; और, यदि हम समस्त लक्षणों के साथ रोग का सही चित्र तैयार करके उनके आधार पर सफल होम्योपैथिक चिकित्सा करने में सक्षम होते हैं तो रोग के सभी मामलों में रोगी के स्वभाव में विशेषरूप से देखे गये परिवर्तनों को आरोग्य करने के लिए हमें बुलाया जाता है।''

इस अनुच्छेद के 'स्वभाव और मानसिकता की दशा' के संदर्भ में उन्होंने निम्नलिखि टिप्पणी दी है। वे लिखते हैं कि:

''उदाहरण के तौर पर क्या हमें ऐसे रोगियों से अक्सर भेंट नहीं होती है जो अनेक वर्षों से बहुत दर्दपूर्ण रोगों से पीड़ित होते हैं, फिर भी मृदुल, सौम्य स्वभाव वाले होते हैं, जिस की वजह से चिकित्सक रोगी का मान रखने और सहानुभूति प्रकट करने में संकोच अनुभव करता है! परन्तु, यदि रोग को शान्त कर देता है और रोगी के स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित कर देता है – जैसा कि होम्योपैथिक चिकित्सा में अक्सर किया जाता है – जो कि बीमार होने से पहले के रोगी स्वाभाविक गुण थे उनमें रोग की दशा में रोगी के स्वभाव में आए भयंकर परिवर्तन से वह अक्सर आश्चर्यचकित और भयभीत हो जाता है। उसको अक्सर अकृतज्ञता, क्रूरता, गहरे क्रोध और मानवता के प्रति अत्यधिक अपमानजनक प्रवृत्ति का सामना करना पड़ता है। जो स्वास्थ्य के समय सहनशील थे, वे रोगी हो जाने पर अक्सर जिद्दी, उग्र, जल्दबाज

Dr S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

अथवा यहाँ तक कि असहनशील और स्वेच्छाचारी अथवा व्यग्र या हताश हो जाते हैं; जो पहले शालीन और विनम्र थे वे अक्सर कामुक और बेशर्म हो जाते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति की बुद्धि अक्सर कुण्ठित हो जाती है, जबकि सामान्य मन्द-बुद्धि ज्यादा चतुर और विचारवान हो जाता है और निर्णय लेने में सुस्त व्यक्ति कभी कभी अत्यधिक प्रत्युत्पन्नमति (presence of mind) और तुरत निर्णय लेने वाला हो जाता है,.... इत्यादि।''

211वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि रोगी के स्वभाव में आए परिवर्तन होम्योपैथिक औषधि के चुनाव में बहुत सहायक होते हैं। वे कहते कि:

''यह इतनी अधिक सीमा तक लाभदायक है कि रोगी के स्वभाव की दशा अक्सर मुख्यत: निश्चित रूप से चारित्रिक लक्षण होने के कारण, सही अवलोकन करने वाले चिकित्सक से जरा भी छुपी नहीं रह सकती है, इसलिए होम्योपैथिक औषधि का चुनाव तय करना सहज हो जाता है।''

212वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''चिकित्सा सम्बन्धी कारकों के निर्माता ने रोगों के इस मुख्य लक्षण, मन और स्वभाव की परिवर्तित दशा के प्रति भी विशेषरूप से ध्यान रखा है, क्योंकि संसार में ऐसा कोई शक्तिशाली पदार्थ नहीं है जिसका परीक्षण करने पर वह स्वस्थ व्यक्ति के मस्तिष्क और स्वभाव को बहुत विशेषता के साथ प्रभावित न कर सके; अत: प्रत्येक औषधि भिन्न प्रकार से ऐसा करती है।''

213वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''इसलिए, यदि हम प्रत्येक रोग के मामले में, यहाँ तक कि उन मामलों में भी जो एक्यूट हों, अन्य लक्षणों के साथ, मन और स्वभाव से सम्बन्धित लक्षणों का भी अवलोकन न करें, और रोगी को राहत देने के लिए, यदि साथ ही रोग के अन्य लक्षणों के समान, औषधियों में से ऐसी रोग शक्ति का चुनाव न कर सकें, जो मन और स्वभाव के समान दशा भी उत्पन्न करने में सक्षम हो, तो हम कभी भी आराम से प्राकृतिक - कहने का तात्पर्य है, होम्योपैथिक - रूप में आरोग्य करने में सफल नहीं हो सकेंगे।''

इस अनुच्छेद के 'मन और स्वभाव के लक्षणों' के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है। वे कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

''यथा एकोनाइट शान्त, स्थिर चित्त, और सौम्य स्वभाव वाले रोगी को कदाचित ही अथवा कभी भी तेज गति से या स्थायी आरोग्य नहीं कर सकेगी, जबकि नक्स वोमिका सौम्य और निरुत्साही रोगी में, और पल्सेटिला प्रसन्न, उत्साही और जिद्दी रोगी में, तथा जहाँ रोगी अविचलित हो और न भौचक्का ही हो और न ही चिढ़ा हो तो इग्नेशिया जरा भी कारगर नहीं होगी।''

तात्पर्य यह है कि यदि हम किसी भी रोग में, यहाँ तक कि एक्यूट रोग में भी रोगी के समस्त लक्षणों के साथ ही उसके मन और स्वभाव के समान लक्षण उत्पन्न कर सकने की शक्ति वाली औषधि का चुनाव न कर सकें तो हम प्राकृतिक होम्योपैथिक आरोग्य करने में कभी भी सफल नहीं हो सकेंगे।

214वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन मानसिक रोगों के सम्बन्ध में निर्देशित करते हुए कहते हैं कि:

''मानसिक रोगों से सम्बन्धित आरोग्य के बारे में मुझको जो निर्देश देने हैं वे थोड़ी सी टिप्पणियों में ही सीमित हैं, क्योंकि वे रोग भी अन्य दूसरे रोगों की तरह ही आरोग्य करने होते हैं, अर्थात्, एक ऐसी औषधि के द्वारा जिसमें स्वस्थ व्यक्ति के शरीर और मस्तिष्क में हस्तगत रोग के यथासम्भव, समान लक्षण उत्पन्न कर सकने की क्षमता हो, अन्यथा किसी भी तरीके से आरोग्य नहीं हो सकता।''

215वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''सब के सब तथाकथित मानसिक और भावनात्मक रोग शारीरिक रोगों से जरा भी अधिक भिन्न नहीं होते हैं, जिनमें मन और स्वभाव की विकृति के लक्षणों की विशिष्ट वृद्धि होती जाती है, जबकि शारीरिक लक्षण (कमोबेश तेजी के साथ) कम होते जाते हैं, जब तक कि एकांगीपन को प्राप्त नहीं हो जाते, मानों यह मन और स्वभाव के अदृश्य अतिसूक्ष्म अंग का लगभग एक स्थानिक रोग हो।''

216वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि ऐसे मामले भी विरल नहीं होते हैं जब कोई घातक होने की आशंका वाला रोग मानसिक लक्षणों के तेजी के बढ़ जाने के कारण उन्माद आदि में बदल जाता है तब क्या होता है। वे कहते हैं कि:

''ऐसे मामले विरल नहीं होते हैं जिनमें शारीरिक रोग जिसकी घातक होने की आशंका हो - फेफड़ों का पूयन (suppuration) या किसी प्रमुख आन्तरिक अंग की विकृति या कोई अन्य एक्यूट चरित्र का रोग यथा प्रसव आदि - पागलपन, एक

Dr. S. K. Mangalam, Email: drmangam@gmail.com

प्रकार का विषाद-रोग या पहले से विद्यमान मनोवैज्ञानिक लक्षणों के तेजी से बढ़ जाने के कारण उन्माद में बदल जाता है, जबकि शारीरिक लक्षण अपने सभी खतरे खो बैठते हैं और बाद में पूर्ण स्वास्थ्य तक सुधर जाते हैं या वे उस सीमा तक कम हो जाते है कि उनकी अस्पष्ट उपस्थिति केवल उस चिकित्सक द्वारा जानी जा सकती है जिसको अध्यवसाय और गहराई तक अवलोकन कर सकने का उपहार मिला हो। इस प्रकार वे एकांगी (one-sided) रोग में परिवर्तित हो जाते हैं, मानो वह स्थानिक रोग हो, जिसमें मानसिक अशान्ति, जो शुरु में बहुत कम थी, प्रमुख लक्षण का रूप ले लेती है और बड़े पैमाने पर दूसरे (शारीरिक) लक्षणों का स्थान ले लेती है, और शारीरिक रोग की उग्रता को यह प्रशामक (palliative) की तरह शान्त कर देती है, ताकि, थोड़े से शब्दों में, शरीर के स्थूल अंगों के जो कष्ट थे, वे परिवर्तित हो कर पूरी तरह आत्मिक, मानसिक और भावनात्मक अंगों के रोग की तरह व्यवहार करने लगते हैं, जिन्हें शल्यचिकित्सक अभी तक कभी भी और भविष्य में भी कभी अपनी छूरी से नहीं पा सकेगा।''

217वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''इन रोगों के पूरे प्रतिभास (phenomena) से हमें अपने आप को बहुत सावधानी के साथ, दोनों शारीरिक लक्षणों और वास्तव में हमेशा, खासतौर से मस्तिष्क और स्वभाव की प्रबल दशा के प्रमुख लक्षण से सम्बन्धित सटीक चरित्र के साथ जानकारी बनानी चाहिए, ताकि सम्पूर्ण रोग को समाप्त करने के लिए, उन औषधियों में से एक रोगजनक शुद्ध होम्योपैथिक औषधीय शक्ति की खोज की जा सके, कहने का तात्पर्य यह है कि, ऐसी औषधि जिसके लक्षणों की तालिका में न केवल विद्यमान शारीरिक रोग लक्षण बल्कि उक्त मानसिक और भावनात्मक दशा के साथ भी यथा सम्भव अत्यधिक समानता हो।''

अर्थात् इस प्रकार के रोगों में चिकित्सक रोगी के शारीरिक लक्षणों के साथ-साथ मानसिक और स्वभाव के प्रबल एवं प्रमुख लक्षण के चरित्र की सटीक और सही जानकारी प्राप्त करके रोगी को आरोग्य करने के लिए ऐसी होम्योपैथिक औषधि का चुनाव करे जिसमें शारीरिक लक्षणों के साथ ही मानसिक और भावनात्मक लक्षणों के साथ यथा सम्भव अत्यधिक समानता हो।

218वें अनुच्छेद में इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

Dr. S.K. Mangalik Email: drmamgain@gmail.com

''लक्षणों के इस संकलन में सर्वप्रथम तथाकथित पूर्व शारीरिक रोग के लक्षणों का सही प्रतिभास होना चाहिए, जो कि इसके एकांगी होने से पहले शारीरिक लक्षणों के भ्रष्ट होकर बढ़ने में था, और यह मस्तिष्क और स्वभाव का रोग बना। इसकी पूरी जानकारी रोगी के मित्रों (*साथ रहने वालों*) के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।''

219वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:
''शारीरिक रोग के इन पूर्व लक्षणों की, इनके अब भी बचे हुए संकेतों, यद्यपि वे कम इन्द्रिय गोचर हो चुके होते हैं (लेकिन, तथापि, कभी कभी, जब सुस्पष्ट अन्तराल और भौतिक रोग का अस्थायी उपशमन होता है), अभी भी स्पष्ट हो जाते हैं, से तुलना, उनकी, यद्यपि अस्पष्ट, उपस्थिति को सिद्ध करने का काम करेगी।''

220वें अनुच्छेद में स्पष्ट करते हैं कि:
''इसके साथ रोगी के मित्रों द्वारा वर्णित और स्वयं चिकित्सक द्वारा सही तरीके से अवलोकित इस मस्तिष्क और स्वभाव की दशा से रोग का पूर्ण चित्र तैयार कर लेते हैं, जिसके लिए रोग का होम्योपैथिक आरोग्य सम्पन्न करने के लिए, ऐसी औषधि जो स्पष्टरूप से समान लक्षण उत्पन्न करने में सक्षम हो और विशेष रूप से मस्तिष्क के रोग के समरूप हो और यदि मानसिक रोग पहले से ही कुछ समय तक रहा हो, तो एण्टिसोरिक औषधियों के बीच से ही खोजनी चाहिए।''

221वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:
''तथापि, यदि, रोगी की सामान्य शान्त दशा में एक लपट की तरह पागलपन या उन्माद (भय, खीज, शराब के दुरुपयोग, इत्यादि, से) अचानक एक्यूट रोग की तरह प्रकट हो जाए, यद्यपि ऐसा हमेशा आन्तरिक सोरा के कारण होता है, फिर भी जब यह इस प्रकार एक्यूट तरीके से पैदा हो जाए तो इसकी तुरत एण्टिसोरिक औषयिों से चिकित्सा नहीं करनी चाहिए, बल्कि सबसे पहले अन्य वर्ग की परीक्षित औषधियों में से इसके लिए इंगित औषधि (यथा, एकोनाइट, बेलेडोना, स्ट्रैमोनियम, हायोसिएमस, मर्करी, आदि) द्वारा उच्च पोटेन्सी में, अल्प, होम्योपैथिक मात्राओं से इसे शान्त करने के लिए चिकित्सा करनी चाहिए जिससे सोरा तात्कालिक समय के लिए अपनी पुरानी प्रसुप्त अवस्था में चला जाएगा, जिसके कारण रोगी स्वस्थ दिखलाई पड़े।''

222वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन आगे कहते है कि:

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

''परन्तु ऐसे रोगी को, जो इन ऐण्टि-सोरिक औषधियों के उपयोग से किसी एक्यूट मानसिक अथवा भावनात्मक रोग से स्वस्थ हो गया है, उसको कभी भी आरोग्य हुआ नहीं मानना चाहिए, इसके विपरीत, उसकी क्रॉनिक धातुदोष सोरा से लम्बी एण्टि-सोरिक चिकित्सा करने का प्रयास करके पूरी तरह स्वस्थ करने में कुछ भी समय नहीं गंवाना चाहिए, क्योंकि, यह सत्य है कि जो (*धातुदोष*) अब एक बार फिर प्रसुप्त अवस्था में चला गया है, लेकिन एक बार फिर से जागृत होने के लिए तैयार है; यदि ऐसा कर दिया जाय और यदि रोगी बतलाए गए पथ्य और परहेज का निष्ठापूर्वक पालन करे तो फिर दूसरे ऐसे ही आक्रमण का भय नहीं रहता है।''

'समय नहीं गंवाना चाहिए' के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है। वे कहते हैं कि:

''ऐसा बहुत ही कम होता है, जब लम्बे समय से चल रहा मानसिक अथवा भावनात्मक रोग (आन्तरिक रोग के लिए पुन: शरीर के भौतिक अंगों में स्वत: स्थानान्तरण हो कर) अनायास समाप्त हो जाए; ऐसे कुछ ही मामले कभी कभार मिले हैं, जब पागलखाने का कोई पूर्व रोगी प्रकटत: स्वस्थ हो कर बाहर आया है। तथापि, अभी तक तो सभी पागलखाने भरे ही रहे हैं और वहाँ भर्ती होना चाहने वाले अन्य पागल व्यक्तियों की भीड़ में किसी को ही मुश्किल से तब अवसर मिलता है जब वहाँ किसी की मृत्यु हो जाए। उनमें से कभी कोई एक भी स्थायी तौर पर आरोग्य नहीं हुआ है! यह अभी तक की जा रही आरोग्य न करने वाली निरर्थक चिकित्सा का अनेकों प्रमाणों के बीच एक अन्य विश्वसनीय प्रमाण है, जिसको हास्यास्पद ढंग से आडम्बरयुक्त एलापैथिक चिकित्सा कला द्वारा तर्कसंगत औषधि के रूप में सम्मानित किया जाता रहा है। दूसरी ओर कितनी ही बार सच्ची आरोग्य कला वास्तविक शुद्ध होम्योपैथी के द्वारा ऐसे भाग्यहीन मानव अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को और उनके आनन्दित मित्रों और संसार को पुन: प्राप्त हुए हैं।''

223वें अनुच्छेद में वे एण्टि-सोरिक चिकित्सा की अवहेलना करने के परिणाम के बारे में कहते कि:

''लेकिन, यदि एण्टि-सोरिक चिकित्सा न की जाए, तब हम निश्चितरूप से आशा करेंगे कि बहुत हल्का सा कारण भी पागलपन का पुन: हल्का दौरा पैदा कर देता है, उसके बाद अधिक तेज गति से नया और देर तक रहने वाला तथा उग्र दौरा हो जाता है, जिसके दौरान अक्सर सोरा स्वयं को पूरी तरह विकसित कर लेता है और

Dr S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

या तो आवधिक अथवा निरन्तर मानसिक पागलपन में चला जाता है, जो कि तब एण्टि-सोरिकों द्वारा आरोग्य करना अत्यधिक कठिन हो जाता है।''

224वें अनुच्छेद में वे ऐसे मानसिक रोगों के बारें में बतलाते हैं जो पूरी तरह विकसित नहीं हुए हैं। वे कहते हैं कि:

''यदि मानसिक रोग पूरी तरह विकसित नहीं हुआ है, और यदि अभी भी शंका है कि यह वास्तव में शारीरिक कष्ट से उपजा है, या इसके बजाय शिक्षा, गलत आदतों, चरित्रहीनता, मस्तिष्क की अवहेलना, अंधविश्वास अथवा अज्ञान के परिणाम स्वरूप हुआ है; तो इस बिन्दु का निर्णय करने का तरीका यह होगा, कि यदि यह बाद वाले कारणों में से किसी एक से उत्पन्न हुआ हो तो यह मित्रतापूर्ण संवेदी उपदेश से, सांत्वनादायक तर्कों द्वारा, गम्भीर संवादों और समझदारीपूर्ण सलाह द्वारा या तो कम हो जाएगा या सुधर जाएगा, जबकि इसके विपरीत शारीरिक रोग पर आधारित असली चरित्र की मानसिक व्याधि, इस प्रकार की कार्य प्रणाली से तेजी के साथ बढ़ जाएगी तथा रोगी अवषादग्रस्त और अधिक उदास, झगड़ालू, शोकाकुल और गम्भीर हो जाएगा, प्रतिहिंसाशील पागल और अधिक उत्तेजित, और बकवादी मूर्ख एवं साफ तौर से और अधिक मूढ़ हो जाएगा।''

इस अनुच्छेद के संदर्भ में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी की है। वे कहते हैं कि:

''इन मामलों में ऐसा प्रतीत होगा मानों इन तर्कसंगत संवादों की सच्चाई से मस्तिष्क ने बेचैनी और दु:ख अनुभव किया और शरीर पर ऐसी क्रिया की मानों खोई हुई समरसता पुनर्स्थापित करना चाही हो, लेकिन शरीर ने खुद के रोग के माध्यम से मस्तिष्क और स्वभाव के अंगों पर प्रतिक्रिया की और उन पर नए कष्टों को थोप कर उनको और अधिक अशान्त कर दिया।''

225वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि वास्तव में कुछ भावनात्मक रोग होते हैं जो शारीरिक रोगों से उत्पन्न नहीं होते। वे कहते हैं कि:

''तथापि, जैसा अभी कहा जा चुका है, निश्चय ही कुछ भावनात्मक रोग ऐसे होते हैं, जो उक्त स्थिति में मात्र शारीरिक रोगों से ही विकसित नहीं हुए होते है, लेकिन जो उलटे, शरीर तो मामूली अस्वस्थ होता है, लेकिन वे भावनात्मक कारणों से उत्पन्न होते और बने रहते हैं, यथा, निरन्तर बेचैनी, चिन्ताएँ, खीज, गलतियाँ और बार-बार होने वाला अत्यधिक भय और भीति। इस प्रकार के भावनात्मक रोग कुछ समय में शारीरिक स्वास्थ्य को अक्सर अत्यधिक सीमा तक खराब कर देते हैं।''

Dr. S.K. Mangal: Email: drmangal@gmail.com

226वें अनुच्छेद में वे इसी संदर्भ में आगे कहते हैं कि:

''केवल ऐसे भावनात्मक रोग ही, जो पहले मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं और फिर इसके द्वारा जारी रखे जाते है, शरीर पर अत्यधिक प्रभाव डालने से पहले, जब तक वे ताजा होते हैं, मनोवैज्ञानिक औषधियों द्वारा, यथा विश्वास के प्रदर्शन, मित्रतापूर्ण संवाद और अक्सर पूरी तरह गुप्त चतुराई द्वारा मस्तिष्क की दशा को (और उपयुक्त पथ्य और परहेज, द्वारा प्रकटत: शरीर के स्वास्थ्य में भी) तेजी से बदल कर वे स्वस्थ दशा में बदले जा सकत हैं।''

227वें अनुच्छेद में ऐसे रोगों का मूल कारण सोरिक धातुदोष को बतलाते हुए वे कहते हैं कि:

''परन्तु इन रोगों का मूल कारण भी सोरा धातुदोष ही होता है, जो अभी तक अपने पूर्ण विकास तक नहीं पहुँचा है, और प्रकटरूप से आरोग्य हो चुका रोगी सुरक्षा के लिहाज से, तर्कसंगत, एण्टि-सोरिक चिकित्सा का पात्र होना चाहिए, ताकि वह फिर से, जैसा कि आसानी से हो सकता है, इसी के समान मानसिक रोग की दशा को प्राप्त न हो जाए।''

228वें अनुच्छेद में वे शारीरिक रोग के परिणाम स्वरूप मानसिक और भावनात्मक रोगों के सम्बन्ध में पुन: कहते हैं कि:

''शारीरिक रोगों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न मानसिक और भावनात्मक रोगों में, जो केवल होम्योपैथिक एण्टि-सोरिक औषधियों, सावधानीपूर्वक नियन्त्रित जीवनचर्या और रोगी के प्रति चिकित्सक और उसके सम्बन्धियों द्वारा सहानुभूतिपूर्ण मानसिक पथ्य की तरह उपयुक्त मनोवैज्ञानिक व्यवहार ही निष्ठापूर्वक किया जाना चाहिए। उग्र उन्माद के लिए शान्त निर्भीकता और ठण्डे, दृढ़ निश्चय के साथ - शोकाकुल, झगड़ालु कुहराम के लिए, चेहरे के भावो और इशारों में नि:शब्द सहानुभूति प्रदर्शित करके - निरर्थक बकवाद के लिए, मौन जो पूरी तरह उपेक्षित न हो - घृणित और नृशंस व्यवहार और ऐसे ही चरित्र के वार्तालाप के लिए पूरी तरह उपेक्षा के द्वारा विरोध करना चाहिए। रोगी के पास गये बिना हमें रोगी के आस पास की वस्तुओं को केवल तोड़ फोड़ और चोटों से बचाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, और सब वस्तुओं को इस प्रकार संजोना चाहिए और रोगी को किसी भी प्रकार की सजा या यातना देने से बचा जाना चाहिए। ऐसा सब कुछ बहुत आसानी से किया जा सकता है, क्योंकि औषधि खिलाने में - यही एकमात्र परिस्थिति होती है जिसमें जबरदस्ती न्यायसंगत

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

समझी जा सकती है – होम्योपैथिक पद्धति में उपयुक्त औषधि की अल्प मात्राएँ कभी भी स्वाद खराब नहीं करती हैं, फलतः रोगी को बतलाए बिना भी उसके पेय मे दी जा सकती हैं, इसलिए किसी प्रकार से मजबूर करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।''

उपरोक्त अनुच्छेद में वर्णित 'सजा या यातना' के सम्बन्ध में उन्होंने एक टिप्पणी दी है। जिसमें उन्होंने बतलाया है कि उस समय पागलपन के रोगियों के साथ जो वास्तव में दया के पात्र होते हैं उनके साथ पागलखानों में चिकित्सक कैसा अमानवीय और यातनादायक व्यवहार करते थे।

229वें अनुच्छेद में वे निर्देशित करते हैं कि ऐसे मानसिक रोगियों के साथ जो दया के पात्र होते हैं कैसा व्यवहार करना चाहिए। वे कहते हैं कि:

''दूसरी ओर, ऐसे रोगियों के साथ विरोध, जोर दे कर समझाना, कठोर दण्ड और फटकार या कमजोर समर्पण बिल्कुल नहीं होने चाहिएँ, ये भी मानसिक और भावनात्मक रोगों के लिए उतने ही हानिकारक तरीके हैं। क्योकि ऐसे रोगी अत्यधिक उत्तेजित हो जाते हैं और उनके कष्ट तिरस्कार, धोखा और छल से बढ़ते हैं जिनका वे (*चिकित्सक*) पता लगा सकते हैं। चिकित्सक और उनकी देखभाल करने वालों को हमेशा ऐसा दिखावा करना चाहिए मानों वे सही हैं और वे उन पर विश्वास करते हैं।

उनके संवेगों और स्वभाव पर सभी प्रकार के वाह्य विक्षुब्ध कर सकने वाले प्रभाव यथासम्भव दूर कर देने चाहिएँ; रोगी शरीर की श्रृंखला में, उनके धूमिल उत्साह में कोई मनोरंजन के भाव नहीं होते, कोई आल्हादकारी विनोद नहीं होता, निर्देशों का कोई तरीका, बातचीत का कोई शान्तिदायक प्रभाव, पुस्तकें या दूसरी चीजें जिनके लिए आत्मा लालायित हो या क्षुब्ध होती हो, उन्हें इनके लिए कोई उत्साह नहीं होता; बल्कि केवल देख-भाल की जरूरत होती है; जब शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार हो जाता है तब ही उनके मस्तिष्क में शान्ति और सुख की चमक आती है।''

उन्होंने उक्त अनुच्छेद के लिए एक टिप्पणी जोड़ी है जो निम्नलिखित है। उनका कहना है कि:

''उग्र पागल उन्मादी और अवषादी की चिकित्सा केवल ऐसे संस्थान में ही हो सकती है जिसमें उनकी चिकित्सा के लिए विशेष प्रबन्ध हों लेकिन रोगी के परिवार के बीच नहीं।''

Dr S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

230वें अनुच्छेद में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ऐसे मानसिक और भावनात्मक रोगियों की सफल चिकित्सा केवल होम्योपैथी द्वारा ही हो सकती है। वे कहते हैं कि:

''यदि प्रत्येक विशिष्ट मानसिक या भावनात्मक रोग के लिए (जिनकी अविश्वसनीयरूप से असंख्य किस्में होती हैं) एण्टि-सोरिक औषधियों का चुनाव करना हो तो जो रोग की दशा के साथ ईमानदारी से तैयार किए गए चित्र के अनुरूप होम्योपैथिकरूप से उपयुक्त औषधि हो, यदि वह औषधियाँ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों उनमें से अथक खोज के द्वारा सर्वोपयुक्त होम्योपैथिक औषधि सुनिश्चित करें, जिसके इस प्रकार के शुद्ध प्रभाव ज्ञात हों, और साथ ही जिसमे ऐसे रोगी की भावनात्मक और मानसिक दशा का असंदिग्ध रूप से प्रत्यक्ष एवं प्रमुख लक्षण विद्यमान हो, दी जाए तब जल्दी ही स्पष्ट सुधार हो जाएगा, जो सुधार रोगी को अनुपयुक्त (एलोपैथिक) दवाओं को बड़ी मात्रा में बार बार मृत्यु तक खिलाने से प्राप्त नहीं हो सकता। वास्तव में, मैं लम्बे अनुभव के बाद विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि चिकित्सा के अन्य सभी कल्पनीय तरीकों की श्रेष्ठता लम्बे समय के भावनात्मक और मानसिक रोगों में जो मूलत: शारीरिक रोगों से उपजे हों या उनके साथ विकसित हुए हों होम्योपैथिक पद्धति से अधिक किसी भी पद्धति में नहीं है।''

231वें अनुच्छेद सहित कुछ अगले अनुच्छेदों में महर्षि हैनिमैन अब सविराम और अदल बदल कर होने वाले रोगों के विषय में निर्देश देना शुरु कर रहे हैं। इस अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''सविराम रोग तथा वे भी जो खास अवधियों पर होते हैं, - अधिसंख्य सविराम ज्वर, और प्रकटत: ज्वर रहित रोग जो सविराम ज्वरों की तरह खास अन्तराल से होते हैं - तथा वे भी जिनमें कुछ खास रोग दशाएँ दूसरे प्रकार की रोग दशाओं के साथ खास अन्तराल पर अदल बदल कर होती हैं, विशेष ध्यान की पात्र होती हैं।''

232वें अनुच्छेद में वे अदल बदल कर होने वाले रोगों के विषय में कहते हैं कि:

''ये बाद वाले, अदल बदल कर आने वाले रोग भी अनेक होते हैं, परन्तु ये सभी क्रॉनिक रोग के वर्ग से सम्बद्ध होते हैं, वे सामान्यत: सोरा की विकसित अभिव्यक्ति मात्र होते हैं, कभी कभी, परन्तु कदाचित ही, सिफिलिस धातुदोष के साथ जटिल हुए रहते हैं, अत: पहले मामले में उन्हें एण्टि-सोरिक औषधियों द्वारा, जब कि बाद वाले मामले में, एण्टि-सिफिलिटिक औषधियों के साथ अदल बदल कर जैसा कि क्रॉनिक रोगों पर मेरी पुस्तक में सिखाया गया है, आरोग्य किया जा सकता है।''

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

'रोग भी अनेक होते हैं' के विषय में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है। वे कहते हैं कि:

''दो या तीन दशाएँ एक दूसरे के साथ अदल बदल कर आ सकती हैं। उदाहरण के तौर पर दोहरे अदल बदल कर आने वाले रोगों के मामले यथा एक प्रकार का चक्षुप्रदाह गायब होने के एकदम बाद टाँगों में लगातार खास दर्द हो सकते हैं, जो बाद में टाँगों का दर्द समाप्त होते ही पुन: लौट आता है, इत्यादि, - शरीर या इसके किसी अंग में आक्षेप (spasms) और ऐंठन (convulsions) किसी अन्य व्याधि के साथ तुरत अदल बदल कर आ जाते हैं -सामान्य अस्वस्थता में तीहरे अदल बदल कर आने वाली दशाओं के मामलों में स्वास्थ्य में प्रकटत: वृद्धि और शरीर और मानसिक शक्तियों की असाधारण उमंग (अनावश्यक उत्साह, शरीर की असामान्य गतिविधि, आराम की अत्यधिक चाहत, असाधारण भूख, इत्यादि) हो सकती है, और जिसके बाद अनायास, खिन्नता, विषाद, स्वभाव में असह्य रोगभ्रम विकार, पाचन, नींद, इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं की विकृति प्रकट हो जाते हैं, जो, फिर से और उसी प्रकार अचानक स्वाभाविक सामान्य अस्वस्थता को, और अनेक अन्य तथा विभिन्न अदल बदल वाली दशाओं को भी स्थान दे देते हैं। जब नई दशा प्रकट होती है, तो अक्सर पहले वाली दशा का अनुभव कर सकने वाला कोई चिन्ह बाकी नहीं रहता। अन्य मामलों में नई दशा उत्पन्न होने पर पहले वाली अदल बदल कर आने वाली दशा के कुछ चिन्ह शेष रह जाते हैं; दूसरी दशा के उत्पन्न होने तथा जारी रहने के समय पहले वाली दशा के कुछ लक्षण बाकी रहते हैं। कभी कभी अदल बदल कर होने वाली रोग दशाएँ बिल्कुल विपरीत चरित्र की होती हैं, यथा, विषाद का उल्लासपूर्ण विक्षिप्तता या उन्माद के साथ आवधिकता (periodicity) से अदल बदल कर होना।''

233वें अनुच्छेद में अनूठे सावधिक रोगों के बारे में वे कहते हैं कि:

''अनूठे आवधिक रोग वे होते है जहाँ अपरिवर्तनीय चरित्र की कोई रोग दशा, लगभग निश्चित अवधि पर आती है, जब कि बीच की अवधि में रोगी प्रकटत: स्वस्थ रहता है, और उतनी ही निश्चित अवधि में चली जाती है; ऐसा प्रकटत: उन ज्वरहीन रोग दशाओं में देखा जाता है जो आवधिक तरीके से (निश्चित समय पर) आती और चली जाती हैं, साथ ही उन ज्वर वाले चरित्र की दशाओं में भी, अर्थात् अनेक भिन्न प्रकार के ज्वरों में भी ऐसा होता है।''

Dr. S. K. Mangini Email: drmangini@gmail.com

234वें अनुच्छेद में बतलाते हैं कि ज्वर-रहित विशिष्ट आवधिक दशाएँ क्रॉनिक रोगों से सम्बद्ध होती हैं। वे कहते हैं कि:

''प्रकटत: जिन्है ज्वर-रहित, विशिष्ट, आवधिक बार बार होने वाली रोग दशाओं के संकेत एक बार में अकेले रोगी में ही मिलते हैं (वे छिट पुट अथवा संक्रामक के रूप में प्रकट नहीं होते हैं) वे हमेशा क्रॉनिक रोगों से सम्बद्ध होते हैं, उनमें से अधिकाँशत: सोरिक ही होते है, लेकिन कदाचित ही कोई सिफलिस के साथ जटिल होता है, और उसकी चिकित्सा उसी तरीके से सफलतापूर्वक की जाती है; फिर भी कभी कभी बीच में उनकी सविरामता को भंग करने के लिए पोटेन्टाइज चायना की एक अल्प मात्रा मध्यवर्ती औषधि के रूप में देने की जरूरत पड़ जाती है।''

235 वें अनुच्छेद में वे सविराम ज्वरों के सम्बन्ध में कहते हैं कि:

''सविराम ज्वरों के सम्बन्ध में जो छिटपुट या संक्रामक ज्वर (दलदली स्थानों में होने वाले संक्रामक नहीं), हम अक्सर देखते हैं कि हर दौरे की उसी तरह दो विपरीत आवर्ती दशायें होती हैं (ठण्ड - गर्मी, गर्मी - ठण्ड), अक्सर तीन भी (ठण्ड, गर्मी, पसीना) हो सकती हैं। अत: उनके लिए सामान्य वर्ग की परीक्षित औषधियों (सामान्य, एण्टि-सोरिक नहीं) में से जो औषधि स्वस्थ शरीर में इसी प्रकार की दो या (तीनों) दशायें उत्पन्न करने में सक्षम (इस प्रकार की औषधियाँ अचूक होती हैं) या लक्षणों में से प्रबलतम, सुस्पष्ट और सर्वाधिक आवर्ती (alternating) दशा के लिए यथासम्भव होम्योपैथिक तरीके से समानता वाली (या तो ठण्ड की दशा, या गर्मी की दशा, अथवा पसीने की दशा, प्रत्येक के सहायक लक्षणों के अनुसार जो भी प्रबलतम और विशिष्ट हो) होनी चाहिए, परन्तु रोगी के स्वास्थ्य में ज्वर न रहने वाले अन्तराल के समय के लक्षण सर्वाधिक उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि के चुनाव के लिए प्रमुख मार्गदर्शक होने चाहियें।''

इस अनुच्छेद के सविराम ज्वरों के सम्बन्ध में उन्होंने एक लम्बी टिप्पणी दी है जिसमें तत्कालीन पैथोलॉजी के आधार पर सविराम ज्वरों के वर्गीकरण के साथ कहा है कि वे केवल एक ही सविराम ज्वर मानते हैं, जबकि होम्योपैथी में सविराम ज्वर में ठण्ड, गर्मी, पसीने, प्यास तथा संलग्न कष्टों की अनेक विभिन्न स्थितियों के अनुसार विभिन्न विशिष्टताओं के आधार पर भिन्न भिन्न लक्षणों के लिए तत्समान लक्षण पैदा करने वाली अनेक औषधियाँ उपलब्ध हैं और तद्नुसार होम्योपैथिक चिकित्सा द्वारा आरोग्य सम्पन्न करने का विधान है। महर्षि हैनिमैन ने इस टिप्पणी में इसी विषय की विस्तृत व्याख्या की है।

Dr. S.K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

236वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि इन सविराम ज्वरों में औषधि कब और कैसे देना उपयुक्त होता है। वे कहते हैं कि:

''इन मामलों में ज्वर का दौरा समाप्त होने के एकदम बाद या थोड़ा पहले ही औषधि देने का सबसे उपयुक्त और गुणकारी समय होता है, जैसे ही रोगी को इसके प्रभाव से कुछ अंशों में सुधार होता है, तभी वह समय होता है जब शरीर में, बिना किसी बड़ी गड़बड़ या उग्र उथल पुथल पैदा किए वान्छित स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना करने के लिए सब परिवर्तन करने का उपयुक्त समय होता है; जबकि औषधि की क्रिया, भले ही वह कितनी ही विशेषता के साथ उपयुक्त हो, यदि वह रोग के दोरे से तुरत पहले दी जाय और रोग की प्राकृतिक पुनरावृत्ति के समय से मेल खाए तो शरीर में ऐसी प्रतिक्रिया करती है, प्रस्पिर्धा करती है कि, यदि इससे जीवन खतरे में न भी पड़े तो भी ऐसी कि प्रकृति द्वारा बहुत भारी शक्तिहीनता का दौरा पड़ जाता है। परन्तु यदि औषधि रोग का दौरा समाप्त होने के तुरत बाद अर्थात् जब ज्वरहीन अन्तराल शुरु होता है और अगले दौरे की तैयारियाँ शुरु होने से काफी पहले, उस समय शरीर की जीवनीशक्ति स्वयं को औषधि द्वारा शान्ति से बदल देने के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थिति में होती है और इस प्रकार स्वस्थ दशा में पुनर्स्थापित हो जाती है।''

इस अनुच्छेद में आए 'भारी शक्तिहीनता का दौरा पड़ जाता है' के लिए वे निम्नलिखित टिप्पणी में लिखते हैं कि:

''घातक मामलों में ऐसा देखा गया है कि जिन मामलों में ठण्ड की दशा में ओपियम की हल्की मात्रा से भी रोगी का जीवन तेजी के साथ समाप्त हो गया, ऐसे मामले किसी तरह भी विरल नहीं हैं।''

237वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''परन्तु यदि ज्वर रहित दशा बहुत थोड़ी हो, जैसा कि कुछ बहुत खराब ज्वरों में होता है, अथवा, यदि यह पिछले दौरे के बाद के कुछ कष्टों द्वारा अशान्त हो, उस दशा में होम्योपैथिक औषधि उस समय दी जानी चाहिए जब पसीना सूखना शुरु हो जाता है या अगले दौरे का प्रतिभास (phenomena) समाप्त होने के लिए घटना शुरु होने लगता है।''

238वें अनुच्छेद में पिछले अनुच्छेद के निर्देश को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि:

''अक्सर, उपयुक्त औषधि की पहली मात्रा से ही अनेक दौरे समाप्त हो कर स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना हो जाती है, लेकिन अधिकांश मामलों में इस प्रकार के दौरे के बाद

Dr. S. K. Mamgain Email: drmamgain@gmail.com

अगली मात्रा दे देनी चाहिए। तथापि, ज्यादा अच्छा हो, जब लक्षणों का चरित्र नहीं बदला है तो मात्रा की पुनरावृत्ति के नए आविष्कार के अनुसार वही औषधि (270वें अनुच्छेद की टिप्पणी देखें) बिना दिक्कत औषधीय पदार्थ की शीशी को हर बार 10–12 झटके दे कर पोटेन्टाइज करते हुए दी जा सकती है। फिर भी, कभी कभी ऐसे मामले होते हैं, हालाँकि कभी कभार ही, जब सविराम ज्वर कई दिन ठीक रहने के बाद लौट आता है। स्वस्थ दशा के बाद उसी ज्वर का लौट आना तब ही सम्भव है जब हानिकारक मूल तत्त्व जिसके कारण ज्वर हुआ था, स्वास्थ्य लाभ करने वाले पर अभी भी कार्यरत है, जैसा कि दलदली स्थानों में होता है। यदि यह कारण दलदली ज्वर है तो ऐसे मामलों में स्थायी स्वास्थ्यलाभ अक्सर तभी हो सकता है जब रोगी इस रोगकारक घटक से दूर चला जाए, जोकि पहाड़ी स्थान पर चले जाना ही सम्भव उपाय है।''

239वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि लगभग प्रत्येक औषधि अपनी शुद्ध क्रिया में विशेष ज्वर यहाँ तक कि अपनी आवर्ती दशाओं के साथ सविराम ज्वर भी उत्पन्न करती है। वे कहते हैं कि:

''जैसे कि लगभग प्रत्येक औषधि अपनी शुद्ध क्रिया में दूसरी औषधियों से उत्पन्न ज्वरों से भिन्न, विशेष ज्वर पैदा करती है, यहाँ तक कि अपनी आवधिक दशाओं के साथ सविराम ज्वर भी, होम्योपैथिक औषधियों के वृहत् अधिकार-क्षेत्र में सभी अनेकों भिन्न प्रकार के प्राकृतिक सविराम ज्वरों में से ऐसे अनेकों ज्वरों के लिए, यहाँ तक कि अभी तक स्वस्थ व्यक्तियों पर परीक्षित औषधियों के थोड़े से संग्रह में भी औषधि मिल सकती है।''

240वें अनुच्छेद में इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं कि:

''यदि चुनी गई औषधि किसी व्याप्त संक्रामक सविराम ज्वर के लिए होम्योपैथिक स्पेसिफिक पाई गई किसी एक या अन्य रोगी को पूरी तरह आरोग्य नहीं करती है जिसके कारण आरोग्य बाधित हो रहा है, और यदि ऐसा दलदली स्थान के प्रभाव के कारण नहीं है, तो इसके पीछे हमेशा सोरिक धातुदोष होता है, ऐसे मामले में पूरा आरोग्य प्राप्त होने तक एण्टि-सोरिक औषधि ही उपयोग करनी चाहिए।''

241वें अनुच्छेद में संक्रामक रोगों के लिए होम्योपैथिक स्पेसिफिक औषधि के बारें बतलाते हुए कहते हैं कि:

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

''ऐसी परिस्थितियों में जब सविराम ज्वर केवल स्थानिक (endemic) न हो कर, बल्कि महामारी हो वे क्रॉनिक रोगों के चरित्र की, अकेले दौरे की होती हैं; प्रत्येक अकेली महामारी अनूठे और सभी व्यक्तियों में एक जैसे तरीके से आक्रमण करती है, और जब यह चरित्र सम्पूर्ण लक्षणों के साथ सभी रोगियों में एक जैसा होता है, तो यह सभी रोगी मामलों के लिए उपयुक्त हौम्योपैथिक औषधि की खोज के लिए हमारा मार्गदर्शन करती है, जो कि उन रोगियों के लिए भी जिनका स्वास्थ्य महामारी होने से पूर्व लगभग सामान्य था, कहने का तात्पर्य है कि, जो विकसित सोरा से पीड़ित नहीं हैं, उनके लिए सार्वभौम रूप से कार्यकारी होती है।''

242वें अनुच्छेद में वे इसी संदर्भ में आगे कहते हैं कि:

''तथापि, यदि ऐसी किसी सविराम ज्वर की महामारी में पहले दौरे बिना आरोग्य हुए रह जाएँ, या रोगी अनुपयुक्त एलोपैथिक चिकित्सा के कारण कमजोर हो जाएँ; तब अन्तर्निहित सोरा जो, यद्यपि प्रसुप्त (latent) अवस्था में था, दुख है! इतने अधिक व्यक्तियों में, विद्यमान रह जाता है, विकसित हो जाता है और सविराम ज्वर पर हावी हो जाता है, और सब प्रकार से सविराम ज्वर की महामारी के रूप में लगातार जारी रहता है, अत: जो औषधियाँ पहले दौरे में (कदाचित ही एण्टि-सोरिक) उपयोगी हो सकती थीं, अब और अधिक उपयुक्त नहीं हो सकती हैं तथा बिल्कुल भी काम नहीं करती हैं। अब हमें केवल एक सोरिक सविराम ज्वर से निपटना पड़ता है और इसको सामान्यत: सल्फर या हिपर सल्फ्यूरिस की अति उच्च पोटेन्सी की अति अल्प और कभी कभार पुनरावृत्त (repeated) मात्राओं से शान्त करना पड़ेगा।''

243वें अनुच्छेद में वे बहुत घातक सविराम ज्वरों के बारे में बतलाते हैं जो दलदली क्षेत्रों में नहीं रहने वाले व्यक्तियों को हो जाते हैं। वे कहते हैं कि:

''उन बहुत घातक सविराम ज्वरों में जो दलदली क्षेत्रों में नहीं रहने वाले, किसी अकेले व्यक्ति पर आक्रमण करते हैं, हमें पहले ऐसे मामलों में भी, जैसा कि सामान्यत: एक्यूट मामलों में, जो अपने सोरिक मूल के मामलों के समान होते हैं, कुछ दिन के लिए जो कुछ सेवा की जा सकती है, जिस प्रकार किसी विशेष मामले के लिए अन्य (एण्टि-सोरिक नहीं) श्रेणी की परीक्षित औषधियों में से कोई होम्योपैथिक औषधि चुन कर उपयोग करनी चाहिए; लेकिन, तिस पर भी यदि इस प्रक्रिया से सुधार विलम्बित हो, तो हमें पता चल जाता है कि हमें सोरा के विकास

Dr. S. K. Mangain Email: drmangain@gmail.com

के बिन्दु के साथ वास्ता पड़ा है और यह कि इस मामले में केवल एण्टि-सोरिक औषधियाँ ही पूर्ण आरोग्य कर सकती हैं।''

244वें अनुच्छेद में उन्होंने उन के बारे में निर्देष दिए हैं जो दलदली क्षेत्रों में तथा उन क्षेत्रों में होते हैं, जहाँ अक्सर पानी भर जाता है। वे कहते हैं कि:

''दलदली क्षेत्रों तथा उन क्षेत्रों में, जहाँ अक्सर पानी भर जाता है ऐसे स्थानिक (endemic) की तरह होने वाले सविराम ज्वर, पुरानी पद्धति के चिकित्सकों के लिए भारी समस्या खड़ी कर देते हैं, फिर भी, कोई स्वस्थ व्यक्ति जो अपनी जवानी में दलदली क्षेत्रों में रहने का आदी हो जाता है और स्वस्थ रहता है, बशर्ते कि वह त्रुटिहीन पथ्य परहेज का पालन करे और उसकी सहनशक्ति कमजोरी और थकान या हानिकारक उत्कंठाओं के कारण दुर्बल न हुई हो। तो ऐसा हो सकता है कि, ऐसा स्थानिक (endemic) सविराम ज्वर पहली बार होने पर उस पर अधिक से अधिक केवल एक बार आक्रमण कर दे, लेकिन सिनकोना के घोल की एक या दो उच्चतर पोटेन्सी की अल्प मात्रा में, साथ ही वह अभी संकेत की गई अच्छी तरह नियमित जीवनचर्या का पालन करता रहे, तो रोग से तेजी के साथ स्वतन्त्र हो जाएगा। परन्तु ऐसे व्यक्ति जो काफी शारीरिक व्यायाम और स्वस्थ मानसिक और शारीरिक जीवनचर्या का पालन करते हैं दलदली सविराम ज्वर से इस प्रकार की सिनकोना की एक या कुछ अल्प मात्राओं से आरोग्य नहीं किए जा सकते - ऐसे व्यक्तियों में सोरा विकसित होने के प्रयास में रहता है, और सर्वदा उनके रोग के मूल में रहता है और उनका सविराम ज्वर एण्टि-सोरिक चिकित्सा के बिना दलदली क्षेत्रों में रहते समय आरोग्य नहीं किया जा सकता। ऐसा भी कभी कभी होता है कि जब ऐसे रोगी देरी किए बिना दलदली क्षेत्र छोड़ कर सूखे और पहाड़ी स्थान पर चले जाते हैं यदि रोग ने उनको गहरे तक प्रभावित नहीं किया होता है, कहने का तात्पर्य है कि यदि सोरा पूरी तरह विकसित नहीं हो चुका है, फलत: अपनी प्रसुप्त दशा में वापस जा सकता है, तो प्रकटत: स्वास्थ्य लाभ हो जाता है (उनको ज्वर छोड़ देता है), लेकिन उनको एण्टि-सोरिक चिकित्सा के बिना कभी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ नहीं हो सकता।''

इस अनुच्छेद में तत्कालीन एलोपैथिक चिकित्सकों द्वारा सिनकोना के बड़ी मात्राओं के उपयोग के कुप्रभाव के बारे में टिप्पणी दी है जो आज के समय में समीचीन प्रतीत नहीं होती अत: वह नहीं दी जा रही है।

Dr. G. K. Mangairi Email: drmangairi@gmail.com

चिकित्सा के तीसरे चरण में महर्षि हैनिमैन ने 146वें अनुच्छेद से 244वें अनुच्छेदों में विभिन्न प्रकार के रोगों के स्वरूप और उनमें क्या आरोग्य करना है, इस विषय की विस्तृत व्याख्या की है। अब अगले चरण में 245वें अनुच्छेद से 3रे अनुच्छेद के 'जो साथ ही हस्तगत रोगी के मामले में औषधि की उपयुक्त क्रिया के तरीके के अनुसार ही उसका अनुकूलन करना जानता है (औषधि का चुनाव, अत्यधिक इंगित औषधि) और औषधि को तैयार करने का सही तरीका और उसकी आवश्यक मात्रा (औषधि की उपयुक्त मात्रा) और औषधि की मात्रा की पुरावृत्ति का समय जानता है' के विषय में बतलाया है कि चिकित्सा के समय चिकित्सक को किन किन बातों का ध्यान रखना होता है।

245वें अनुच्छेद से महर्षि हैनिमैन अगले चरण की बात शुरु करते हुए कहते हैं कि रोगों की प्रमुख किस्मों की चिकित्सा में हमें क्या ध्यान रखना होता है यह जान लेने के बाद खुराक और पथ्य के साथ ही औषधियों के उपयोग की विधि आदि को स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि:

''इस प्रकार रोगों की प्रमुख विविधता के लिए, और उनसे जुड़ी परिस्थितियों पर होम्योपैथिक चिकित्सा में क्या ध्यान देना है यह जान लेने के बाद अब औषधियों के विषय में और उनके उपयोग के तरीके के साथ ही आहार और पथ्य की बातें भी बतलाते हैं।

एक्यूट और क्रॉनिक रोगों में प्रत्येक को अनुभव करने योग्य लक्षणों में स्पष्टत: राहत में, जब तक वह रहे, ऐसी वह स्थिति होती है जब किसी भी औषधि की पुनरावृत्ति न की जाए, क्योकि उपयोग की गई औषधि ने जो कुछ लाभ किया उसको पूरा करने के लिए वह तेजी के साथ जारी रहता है। किसी भी औषधि की नई मात्रा, यहाँ तक कि जो पिछली बार दी गई थी वह भी, जिसने स्वागत योग्य परिणाम बतलाया था, इस राहत की राह में बाधा पैदा कर सकती है।''

इस अनुच्छेद के इस दूसरे पैराग्राफ को छठे संस्करण में उन्होंने हटा दिया है।

246वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''दूसरी ओर, राहत में जिस होम्योपैथिक औषधि का सही चुनाव हो चुका है, उसकी अति अल्प मात्रा के परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य के सुधार की गति धीमी हो और जब इसकी क्रिया के समय कोई बाधा उत्पन्न न हो, तो वह औषधि जो अपनी प्रकृति के अनुसार उक्त मामले में जो कुछ करने में समर्थ है तो वह चालीस, पचास या सौ दिनों में सम्पूर्ण लाभ पहुँचा देगी। यद्यपि ऐसा विरल होता है, तथापि इसके विपरीत

Dr. S. K. Mangalam Email: drmamgain@gmail.com

चिकित्सक और रोगी के लिए भी यह अधिक महत्वपूर्ण होता है कि यदि यह सम्भव हो सकता कि यह अवधि आधा, चौथाई या और अधिक कम हो जाती ताकि आरोग्य और अधिक जल्दी हो जाता। ऐसा प्रसन्नतापूर्वक हो भी जाता, जैसा कि हाल के और बार बार दोहराए गए अवलोकनों से तीन परिस्थितियों में देखा गया है; पहली, यदि अत्यधिक सावधानी के साथ चुनी गई औषधि पूर्णत: होम्योपैथिक थी; दूसरे, यदि यह अल्पतम मात्रा में दी गई थी, ताकि यह जीवनीशक्ति में यथासम्भव अल्पतम उत्तेजना उत्पन्न करती और फिर भी वान्छित परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती; और तीसरे, यदि इस अल्पतम परन्तु सर्वोत्तम चुनी गई औषधि की इस शक्तिशाली मात्रा की उपयुक्त अन्तराल पर पुनरावृत्ति की (repeated) गई होती, जिसको अनुभव द्वारा आरोग्य की गति को अधिकतम सीमा तक सर्वोपयुक्त घोषित कर दिया गया होता, फिर भी जीवनीशक्ति जिसे समान औषधीय रोग उत्पन्न करने के लिए प्रभावित किया जाना था, स्वयं में प्रतिकूल प्रतिक्रिया करने के लिए उत्तेजित और जागृत नही होती।''

इस अनुच्छेद में कही गई 'पुनरावृत्ति' के सम्बन्ध में उन्होने एक लम्बी टिप्पणी दी है जिसमे कहा है कि ऑर्गेनन के पूर्व संस्करणों में चुनी गई उपयुक्त औषधि की अल्पतम मात्रा दे कर उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक कि रोग के लक्षणों में सुधार होना रुक न जाए। इन अल्प मात्राओं की जल्दी जल्दी पुनरावत्ति भी नहीं करनी चाहिए जिससे रोगी को लाभ के स्थान पर हानि ही हो जाती है।

अगली टिप्पणी में उनका कहना है कि:

''जो कुछ मैंने ऑर्गेनन के पाँचवें संस्करण के इस अनुच्छेद की लम्बी टिप्पणी में जो कुछ इन जीवनीशक्ति की अवॉछित प्रतिक्रियाओं से बचने के लिए कहा है, उस समय तक के अनुभव के अनुसार न्यायसंगत था। परन्तु पिछले चार या पाँच वर्षो में इन सारी कठिनाइयों का परिवर्तित परन्तु परिपूर्ण तरीके से समाधान कर लिया गया हैं। अब वही सावधानीपूर्वक चुनी गई औषधि यदि आवश्यक हो तो महीनों तक इस प्रकार नित्य दी जा सकती है, यथा, क्रॉनिक रोग की चिकित्सा के लिए एक या दो सप्ताह तक निम्न पोटेन्सी में दे चुकने के बाद, इसी प्रकार (यहाँ पर सिखाए गए तरीके से नए शक्तिकरण (dynamization) की निम्नतम कोटि (lowest degrees) से शुरु करके उच्चतर शक्तिकरण की ओर कदम बढ़ाए जा सकते हैं।''

246वें अनुच्छेद को छठे संस्करण में उन्होंने पूरी तरह दोबारा लिखा:

Dr S.K. Mangalik, Email: drmamgain@gmail.com

''चिकित्सा के दौरान प्रत्येक प्रगतिशील और स्पष्टरूप से बढ़ता हुआ स्वास्थ्य लाभ एक ऐसी स्थिति है जो जब तक बनी रहती है किसी भी औषधि की पुनरावृत्ति का निषेध कर देती है, क्योंकि औषधि लेने के बाद जो भी सुधार हुआ वह तेजी के साथ पूर्णता की ओर बढ़ता जाता है। ऐसा एक्यूट रोगों के मामले में अक्सर होता है, परन्तु दूसरी ओर, अधिक क्रॉनिक मामलों में उपयुक्त तरीके से चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की अकेली मात्रा भी कभी कभी स्वास्थ्य में सुधार धीमी गति से बढ़ते हुए ही पूरा कर देती है, और ऐसी औषधि ऐसे मामले में प्राकृतिक रूप से 40, 50, 60, 100 दिनों में सम्पन्न कर सकती है। तथापि, ऐसा मामला यद्यपि विरल होता है, इसके अतिरिक्त, चिकित्सक और रोगी के लिए भी यह बात बहुत महत्व की होती है कि यदि सम्भव होता कि यह अवधि आधी, चौथाई और इससे भी थोड़ा कम हो जाती, ताकि आरोग्य और तेजी से प्राप्त हो जाता। ऐसा बहुत प्रसन्नता के साथ किया जा सकता है, जैसा कि हाल के और बार बार दोहराए गए अवलोकनों से मुझे निम्ननिखित परिस्थितियों ने सिखाया है; पहली, यदि अत्यधिक सावधानी के साथ चुनी गई औषधि पूर्णत: होम्योपैथिक थी; दूसरे, यदि यह बहुत उपयुक्त और उच्चतर पोन्टाइज की गई, पानी में घोल कर अल्प मात्रा में निश्चित अन्तराल पर लेकिन अत्यधिक सावधानी के साथ, जैसा कि अनुभव ने सिखाया है, और प्रत्येक मात्रा की कोटि (degree) पहली वाली और बाद वाली से कुछ हट कर दी जाए ताकि जीवनीशक्ति जिसे समान औषधीय रोग में परिवर्तित करना है, अनुपयुक्त प्रतिक्रिया और विद्रोह करने के लिए उत्तेजित और जागृत नहीं हो जाए, जैसा कि हमेशा अनुपयुक्त और बार बार दी गई मात्राओं से हो जाता है; और तीसरे, यदि इस अल्पतम परन्तु सर्वोत्तम चुनी गई औषधि की इस शक्तिशाली मात्रा की उपयुक्त अन्तराल पर पुनरावृत्ति की (repeated) गई होती, जिसको अनुभव द्वारा आरोग्य की गति को अधिकतम सीमा तक सर्वोपयुक्त घोषित कर दिया गया होता, फिर भी जीवनीशक्ति जिसे समान औषधीय रोग उत्पन्न करने के लिए प्रभावित किया जाना था, स्वयं में प्रतिकूल प्रतिक्रिया करने के लिए उत्तेजित और जागृत नहीं होती। तथाकथित टाइफस ज्वरों और अन्य निरन्तर ज्वरों की चिकित्सा में, जो औषधि कारगर सिद्ध होती है उसकी, अल्प मात्राओं में, पुनरावृत्ति, उपरोक्त निर्देशों के अनुसार ही नियन्त्रित करनी चाहिए। शुद्ध सिफिलिटिक रोगों में मैंने सामान्यत: धातविक मर्करी (XΦ) की अकेली मात्रा को पर्याप्त पाया है; और फिर भी अक्सर, जब सोरा के साथ हल्की सी जटिलता अनुभव की गई तब इस प्रकार की दो या तीन मात्रा छ: या आठ दिन के अन्तर पर देने की जरूरत पड़ी। ऐसे मामलों में जहाँ कोई विशेष

Dr S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

औषधि अविलम्ब इंगित हुई, परन्तु रोगी अत्यधिक उत्तेजनशील और कमजोर है, अधिक भौतिक, उच्चतम पोटेसी की औषधि यद्यपि बहुत अल्प मात्रा में देने के बजाए, उसी औषधि का एक सरसों के दाने के बराबर ग्लोब्यूल औषधि में संसेचित करके और सुखा कर एक बार सूंघना, एक अधिक प्रभावशाली और सुनिश्चित प्रक्रिया है; ऐसा उस शीशी के मुख को जिसमें यह रखी हो पहले एक नथुने से फिर (यदि अधिक प्रबल मात्रा देनी हो तो) दूसरे नथुने से क्षणिक साँस ले कर प्रभावित किया जा सकता है; इस प्रकार दी गई इस औषधि की क्रिया उतनी ही देर रहती है जितनी देर भौतिक मात्रा में दिए जाने पर होती है, अतः सूँघना भी थोड़े अन्तराल से पुनरावृत्त नहीं करना चाहिए।''

247वें अनुच्छेद में वे औषधि की पुनरावृत्ति के बारे में ऑर्गेनन के पाँचवें संस्करण में निर्देशित करते हुए कहते हैं कि:

''इन परिस्थितियों में, सर्वोपयुक्त चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की अल्पतम मात्राओं की पुनरावृत्ति चौदह, बारह, दस, आठ, सात दिन के अन्तर पर, अक्सर श्रेष्ठ यहाँ तक कि अविश्वसनीय परिणामों के साथ और जहाँ एक्यूट रोग से मिलते जुलते क्रॉनिक रोगों के मामलों में शीघ्रता की आवश्यकता हो अधिक कम अन्तर पर की जा सकती है, लेकिन एक्यूट रोगों में और अधिक कम अन्तर पर – प्रत्येक चौबीस, बारह, आठ, चार घण्टों में और अत्यधिक एक्यूट में प्रत्येक घणटे से ले कर अक्सर प्रत्येक पाँच मिनट पर – प्रत्येक मामले में कमोवेश रोग की तथा उपयोग की गई औषधि की तीव्रता के अनुपात में, जिस प्रकार पिछली टिप्पणी में समझा दिया गया है, पुनरावृत्ति की जा सकती है।''

इस अनुच्छेद को उन्होंने छठे संस्करण में नए सिरे से लिखा। उन्होंने लिखा कि:

''उसी औषधि की अपरिवर्तित मात्रा की बार बार पुनरावृत्ति का तो क्या कहना एक बार भी पुनरावृत्ति (थोड़े अन्तर से ताकि आरोग्य होने में विलम्ब न हो) अव्यवहारिक है। जीवनीशक्ति ऐसी अपरिवर्तित मात्राओं को बिना प्रतिरोध के, कहने का तात्पर्य है कि, औषधि के रोग लक्षणों को जिन्हें आरोग्य करना है उनकी अपेक्षा अन्य लक्षणों को व्यक्त किए बिना स्वीकार नहीं करती है, क्योकि पूर्व मात्रा ने जीवनीशक्ति में पहले ही वान्छित परिवर्तन कर दिया है, अतः उसी औषधि की पूरी तरह समान अपरिवर्तित ऊर्जस्वी (dynamic) मात्रा को जीवनीशक्ति की वही दशाएँ नहीं मिलती हैं। इस प्रकार की अपरिवर्तित मात्राओं से रोगी वास्तव में अन्य तरीके से और अधिक रोगी हो जाता है, पहले से भी अधिक रोगी, क्योंकि अब दी गई औषधि के

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

केवल वे ही लक्षण जो मूल रोग के लिए होम्योपैथिक थे, आरोग्य की ओर कोई कदम आगे नहीं बढ़ा सकते, केवल रोग की दशा की शुद्ध वृद्धि ही रह जाती है। परन्तु, यदि बाद वाली मात्रा हर बार जरा सा बदल कर दी जाए अर्थात् कुछ उच्च पोटेन्टाइज कर दी जाए (269वें से 270वें अनुच्छेद) तब जीवनीशक्ति बिना बाधा के उसी औषधि से (प्राकृतिक रोग की अनुभूति घटते हुए) परिवर्तित हो सकती है और इस प्रकार आरोग्य निकटतर आ सकता है।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में वे कहते हैं कि:

''सर्वश्रेष्ठ रूप से चुनी गई औषधि के साथ भी ऐसा नहीं करना चाहिए, उदाहरण के लिए उसी पोटेन्सी की जिसने पहले राहत पहुँचाई थी रोगी को उसकी दूसरी या तीसरी मात्रा एक पैलट (pellet) सूखी हुई भी नहीं देनी चाहिए। इसी प्रकार, यदि औषधि पानी में घोल कर पहली मात्रा ने लाभ पहुँचाया था तो यहाँ तक कि कुछ दिन तक बिना हिले रखी गई बोतल में से दूसरी या तीसरी यहाँ तक कि अधिक छोटी मात्रा भी और लाभकारी सिद्ध नहीं होगी, हालाँकि, भले ही मूल उपक्रम (preparation) दस झटकों से, या उपरोक्त कारणों से इस असुविधा से बचने के लिए मैंने बाद में सुझाया था केवल दो झटकों से तैयार किया गया था। बल्कि प्रत्येक मात्रा में इसके डायनामाइजेशन की कोटि में सुधार करके, जैसा कि मैंने यहाँ सिखाया है, यदि मात्राओं की बार बार भी पुनरावृत्ति कर दी जाए, यहाँ तक कि औषधि बहुत सारे झटकों द्वारा बहुत अधिक पोटेन्टाइज भी कर दी जाए इससे कुछ अप्रिय नहीं होता। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों श्रेष्ठ रूप से चुनी गई औषधि यदि अनेक विभिन्न रूपों में दी जाए तो क्रॉनिक रोगों में जीवनीशक्ति भलि प्रकार रोग को निचोड़ कर उसको बुझा देगी।''

248वें अनुच्छेद में उन्होंने औषधि की मात्रा के पुनरावर्तन (repeatition) के विषय पर ऑर्गेनन के पाँचवें संस्करण में इस प्रकार कहा था:

''परिस्थितियों के अनुसार उसी औषधि की मात्रा की कई बार पुनरावृत्ति की जा सकती है, लेकिन तभी तक जब तक स्वास्थ्य में सुधार होता रहे या वह औषधि लाभ पहँचाना बन्द कर दे और बचा हुआ रोग, नए लक्षणों का समूह उपस्थित करते हुए, अन्य होम्योपैथिक औषधि की माँग करे।''

इस अनुच्छेद को ऑर्गेनन के छठे संस्करण में उन्होंने नए सिरे से लिखा:

''इस उद्देश्य के लिए, हम औषधीय घोल को फिर से (8, 10 या 12 झटकों द्वारा) पोटेन्टाइज करते हैं, जिसमें से हम रोगी को, लम्बे समय के क्रॉनिक रोगों में नित्य

Dr. G. K. Mangalii. Email: drmangali@gmail.com

या हर दूसरे दिन, एक्यूट रोगों में प्रत्येक दो से छः घण्टे पर और आग्रही (urgent) मामलों में हर घण्टे पर या और जल्दी जल्दी एक या (बढ़ाते हुए) चाय के चम्मच जितनी कई मात्राएँ देते हैं। इस प्रकार क्रॉनिक रोगों में, प्रत्येक सही तरीके से चुनी गई होम्योपैथिक औषधि, यहाँ तक कि वे भी, जो लम्बे समय तक क्रिया करती हैं, उनकी पुनरावृत्ति महीनों तक बढ़ती हुई सफलता के साथ नित्य की जा सकती है। यदि घोल (सात से पन्द्रह दिन में) समाप्त हो जाता है और अभी भी इंगित है तो उसी औषधि की उच्चतर पोटेन्सी की एक या (तथापि कभी कभार) कई पैलट (pellet) से अगला घोल बनाना आवश्यक हो जाता है जिसको हम तब तक जारी रख सकते हैं जब तक कि बिना एक या दो अन्य प्रकार के कष्ट जो उसने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं किए हों, उनका अनुभव न करे। क्योंकि, यदि ऐसा होता है और यदि बचा हुआ रोग बदले हुए लक्षणों के समूह के रूप में प्रकट हो, तब पहले दी गई औषधि के स्थान पर होम्योपैथिकरूप से अधिक उपयुक्त सम्बन्धित औषधि का चुनाव करके, आवर्ती (repeated) मात्राओं में हर बार घोल को अच्छी तरह झटके देकर संशोधित करके और इस प्रकार पोटेन्सी की कोटि को बढ़ाते हुए देना चाहिए। दूसरी ओर, क्रॉनिक रोग के मामले की चिकित्सा अन्त की ओर भलि प्रकार इंगित औषधि के नित्य पुनरावर्तन (repeatition) के दौरान यदि तथाकथित होम्योपैथिक रोग वृद्धि (161वाँ अनुच्छेद) जिसके द्वारा रोग लक्षणों का संतुलन फिर से कुछ बढ़ता हुआ प्रतीत हो (मूल रोग के समान ही औषधीय रोग लगातार अपने को स्पष्ट करे)। औषधि की मात्राएँ ऐसे मामले में और कम करके अधिक अन्तर पर पुनरावर्तन करना चाहिए और यथासम्भव कई दिनों के लिए रोक ही देना चाहिए जिससे पता चल सके कि स्वास्थ्यलाभ के लिए और अधिक औषधीय सहायता की जरूरत है या नहीं है। होम्योपैथिक औषधि की अधिकता के कारण उत्पन्न स्पष्ट लक्षण जल्दी समाप्त हो जायेंगे और परिणाम स्वरूप अबाधित स्वास्थ्य रह जाएगा। यदि तरलीकृत अल्कोहल की एक छोटी सी शीशी यथा एक ड्राम की, जिसमें औषधि के एक ग्लोब्यूल को झटके दे कर घोल दिया गया हो, हर दो, तीन या चार दिन के अन्तर पर सूँघने के लिए उपयोग किया जाए, इसे भी हर बार दस से बारह बार तक सूँघने से पहले आठ से दस बार अच्छी तरह झटके दे देने चाहिएँ।''

* पोटेन्टाइज घोल तैयार करने के सम्बन्ध में महर्षि हैनिमैन नें स्पष्ट करते हुए कहा है कि:

Dr. S. K. Mangalini Email: drmangalini@gmail.com

''40, 30, 20, 15 या 8 टेबलस्पून पानी में, कुछ अल्कोहल मिला कर या चारकोल (लकड़ी के कोयले) का टुकड़ा डाल कर घोल बना लें, ताकि सुरक्षित रहे। यदि चारकोल डाला गया है तो इसको एक धागे के सहारे शीशी में लटका दें और जब झटके देने हों तो इसको बाहर निकाल लें। भलि प्रकार पोटेन्टाइज औषधीय ग्लोब्यूल (कभी कभार ही एक से अधिक ग्लोब्यूल की आवश्यकता होती है) को अलग शीशी में लेकर और उसमे 7-8 टेबलस्पून पानी डाल कर, शीशी को अच्छी तरह झटके देने के बाद इसमें से एक टेबलस्पून घोल ले कर एक गिलास में (7-8 टेबलस्पून) पानी में मिला कर और भलि प्रकार हिला कर इसमें से एक मात्रा रोगी को दें। यदि रोगी असामान्य रूप से उत्तेजित होने वाला और संवेदनशील हो, तो उक्त गिलास में से एक टेबलस्पून घोल दूसरे पानी के गिलास में इसी प्रकार मिला कर इसमें से टेबलस्पून भर या अधिक की मात्रा में दें। बहुत अधिक संवेदनशील रोगी भी होते हैं तब इसी प्रकार तीसरे गिलास में घोल तैयार करके देने की जरूरत पड़ सकती है। घोल का ऐसा प्रत्येक गिलास नित्य नया तैयार करना चाहिए। ज्यादा अच्छा हो उच्च पोटेन्सी के ग्लोब्यूल को कुछ ग्रेन शूगर ऑफ मिल्क में पीस कर तब वान्छित मात्रा के पानी में घोल तैयार करें।''

249वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''किसी रोग के मामले में प्रत्येक औषधि जो अपनी क्रिया के दौरान नये और कष्टकर लक्षण उत्पन्न करे, जो आरोग्य किए जाने वाले रोग से सम्बद्ध न हों, तो वह वास्तविक सुधार करने में समर्थ नहीं होती है, उसको होम्योपैथिकरूप से चुनी गई नहीं माना जा सकता है, अत: यदि रोग वृद्धि काफी है तो दूसरी औषधि देने से पहले पहली औषधि की क्रिया के अनुरूप अधिक सही औषधि चुन कर इसको आंशिक रूप से एण्टिडोट कर देना चाहिए; या यदि कष्टकर लक्षण बहुत उग्र नहीं हों, तो अनुपयुक्तरूप से चुनी गई औषधि का स्थान लेने के लिए दूसरी औषधि तुरत दे देनी चाहिए।''

'सुधार करने में समर्थ नहीं होती है' के लिए उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है जिसमे वे कहते हैं कि:

''सभी अनुभवों से यह स्पष्ट हुआ है कि विशेषरूप से उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की मात्रा मुश्किल से भी इतनी छोटी नहीं बनाई जा सकती है कि वह रोग में इन्द्रियगोचर स्वास्थ्य-लाभ प्रभावित कर सके, जिसके लिए यह उपयुक्त है (275वें अनुच्छेद से 278वाँ अनुच्छेद), जब थोड़ा या बिल्कुल लाभ न हो, चाहे यह तनिक

Dr. S. K. Mangalini, Email: drmangalin@gmail.com

सा ही हो, इस भ्रम में कि औषधि की मात्रा छोटी (बहुत छोटी मात्रा) थी, उसी औषधि की पुनरावृत्ति या मात्रा की वृद्धि करें, जैसा कि पुरानी चिकित्सा पद्धति में किया जाता था और इस प्रकार हम अन्यायपूर्ण और हानिकारक व्यवहार करें कि रोग में वृद्धि हो। नए लक्षणों की उत्पत्ति – निरपवादरूप से यही सिद्ध करती है कि हस्तगत रोग के मामले में पहले दी गई औषधि अनुपयुक्त थी, परन्तु कभी भी ऐसा इंगित नहीं करती कि मात्रा बहुत हल्की थी।''

ऑर्गेनन के छठे संस्करण में 249वें अनुच्छेद में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी जोड़ी थी:

''यदि सुशिक्षित और कर्त्तव्यनिष्ठता के साथ सावधान चिकित्सक चुनी गई औषधि यथासम्भव अल्पतम मात्रा में, जैसा उसे करना ही चाहिए, देना शुरु करे तो वह कभी ऐसी स्थिति में नहीं होगा कि उसे अपनी प्रैक्टिस में एण्टिडोट की जरूरत पड़े। रोग के समान श्रेष्ठरूप से चुनी गई औषधि की अल्पतम मात्रा भी शरीर के प्रत्येक भाग में व्यवस्था पुनर्स्थापित कर देगी।''

250वें अनुच्छेद में वे सावधान चिकित्सक को आग्रही (urgent) मामलों में कुछ ही घण्टों में राहत मिलना शुरु न होने पर निर्देशित करते हैं कि:

''जब, सावधान चिकित्सक को, जो रोग की दशा की सही तरीके से जाँच करता है, आग्रही मामलों में छः, आठ या बारह घण्टों में यह स्पष्ट हो जाए कि पिछली बार चुनी गई औषधि में कहीं कुछ चूक हुई है, क्योंकि रोगी की दशा, तथापि तनिक ही, स्पष्टरूप से, नए लक्षण और कष्ट प्रकट होने के कारण हर घण्टे खराब हो रही है, उसके लिए यह केवल मान्य ही नहीं बल्कि उसका कर्त्तव्य है कि वह रोग की वर्तमान दशा के लिए न केवल काम चलाऊ, बल्कि यथासम्भव सर्वोपयुक्त होम्योपैथिक औषधि दे कर अपनी गलती का सुधार करे।''

251वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन ने उन औषधियों के सम्बन्ध में निर्देशित किया है जिनमें अदल बदल कर क्रिया करने की शक्ति होती है। वे कहते हैं कि:

''कुछ ऐसी औषधियाँ हैं (यथा, इग्नेशिया, ब्रायोनिया और रस टॉक्स भी तथा कभी कभी बेलेडोना) जिनमे मनुष्य के स्वास्थ्य में प्रमुखतः अदल बदल कर क्रियाएँ करने की शक्ति होती है – एक प्रकार की प्राथमिक क्रिया जिसके लक्षण आंशिक रूप से एक दूसरे के विपरीत होते हैं। इनमें से कोई सी दृढ़ सिद्धान्तों के आधार पर चुनी गई होम्योपैथिक औषधि देने के बाद यदि चिकित्सक पाए कि कोई सुधार नही हो रहा है, ऐसे अधिकांश मामलों वह (एक्यूट रोगों में यहाँ तक कि कुछ ही घण्टों में)

Dr. S. K. Mangalini Email: drmamgain@gmail.com

नई और समानरूप से अल्प मात्रा में वही औषधि दे कर अपना उद्देश्य प्राप्त कर लेगा।''

इस अनुच्छेद के लिए उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है:

''जैसा कि मैंने विशेषरूप से (मेटीरिया मेडिका प्योरा के प्रथम भाग में) ''इग्नेशिया'' की प्रस्तावना में वर्णन किया है।''

252वें अनुच्छेद में वे उपयुक्त प्रकार से चुनी गई औषधि से यदि स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो तो रोगी की जीवन चर्या, पथ्य आदि में सुधार करना जरूरी होता है। वे कहते हैं कि:

''यदि क्रॉनिक (सोरिक) रोगों में अन्य औषधियों के उपयोग के समय हम पाएँ, कि सर्वश्रेष्ठ चुनी गई होम्योपैथिक (एण्टिसोरिक) औषधि उपयुक्त (अल्पतम) मात्रा में देने पर स्वास्थ्य में सुधार नहीं करती, तो यह इस बात का सुनिश्चित संकेत है कि रोग को जारी रखने वाला कारण अभी भी बना हुआ है, और यह कि रोगी की जीवन चर्या में या जिस परिस्थिति वह रहता है उसमें कोई ऐसी परिस्थिति है जिसका स्थायी आरोग्य प्राप्ति के लिए निवारण करना जरूरी है।''

253वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि किन संकेतों के आधार पर चिकित्सक सुनिश्चित कर पाता है कि रोगी के स्वास्थ्य में सुधार या वृद्धि हो रही है। वे कहते हैं कि:

''सभी रोगों में, विशेषत: जो एक्यूट प्रकृति वाले होते हैं और जो हर किसी को प्रतीत नहीं होते, हमको रोगी के मस्तिष्क और उसके पूरे स्वभाव में हल्के सुधार या वृद्धि के बारे में निश्चित सुझावक संकेत मिल जाते हैं। तनिक से सुधार के मामले में हमें बड़े अंशों में राहत दिखलाई पड़ जाती है। बढ़ी हुई शान्ति और मन की प्रफुल्लता, उत्साह - एक प्रकार से प्राकृतिक दशा। इसके विपरीत तनिक सी रोग वृद्धि के मामले में हमें इसका बिल्कुल उलटा देखने को मिलता है - स्वभाव, मस्तिष्क की दशा, सम्पूर्ण आचरण और सम्पूर्ण हावभाव, स्थिति और क्रिया आदि बाधित, असहाय, दयनीय देखने को मिलते हैं जिनको निकट अवलोकनों द्वारा जाना जा सकता है, लेकिन शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में वे लिखते हैं कि:

''तथापि स्वभाव और मन में सुधार के संकेत की आशा औषधि देने के तुरत बाद की जा सकती है, जब उसकी मात्रा पर्याप्त (यथासम्भव) अल्प हो; अति उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की भी बड़ी मात्रा अधिक उग्र क्रिया करती है, पहले स्वभाव

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

और मन में अत्यधिक और लम्बे समय के लिए गड़बड़ उत्पन्न कर देती है, जिसके कारण हम जल्दी सुधार नहीं देख पाते। यहाँ मुझे स्पष्ट कर ही देना चाहिए कि यह अति आवश्यक नियम की अवहेलना उन चिकित्सकों द्वारा होती है, जो होम्योपैथी में हठी और नौसीखिया हैं और पुरानी पद्धति से होम्योपैथी में परिवर्तित हुए हैं। ये लोग पुराने पूर्वाग्रहों के कारण ऐसे मामलों में निम्नतम पोटेन्सी की औषधियों की अल्पतम मात्राओं का तिरस्कार करते हैं, अत: वे ऐसे मामलों में आगे बढ़ने के तरीके में सुविधा और कृपा अनुभव कपने में असफल हो जाते हैं जिसे हजारगुना अनुभव ने सम्मानजनक प्रदर्शित किया है; वे वह सब नहीं कर सकते जिसे होम्योपैथी करने में समर्थ है, अत: वे इसके अनुयायी कहलाने का दावा नहीं कर सकते।''

254वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:
''अन्य नये या बढ़ते हुए लक्षण, अथवा इसके विपरीत, बिना किन्हीं नए लक्षणों के उत्पन्न हुए मूल लक्षणों का कम होना, सावधानीपूर्वक अवलोकन और जाँचकर्ता चिकित्सक के मन से वृद्धि या सुधार के सम्बन्ध में जल्दी ही सब शंकाएँ दूर कर देगा; यद्यपि, रोगियों के बीच ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो इस वृद्धि या सुधार का ब्योरा देने में असमर्थ होते हैं या जो इसको स्वीकार नहीं करते।''

255वें अनुच्छेद में वे इसी सम्बन्ध में आगे कहते हैं कि:
''परन्तु ऐसे व्यक्तियों के मामले में हम रोगी के सम्पूर्ण लक्षणों के सम्बन्ध में प्रत्येक लिखित लक्षण के सम्बन्ध में पूछ कर अपने आप को संतुष्ट कर सकते हैं कि जिनके विषय में उन्हें शिकायत थी उनमें कोई नए असामान्य लक्षण तो उत्पन्न नहीं हुए, और पुराने किसी लक्षण में वृद्धि तो नहीं हुई। यदि ऐसा है, और मन ओर स्वभाव में अब तक कुछ सुधार देखा गया है, तो औषधि ने निश्चय ही रोग में स्पष्ट कमी की है, या, यदि इसके लिए पर्याप्त समय नहीं हुआ है, तो ऐसा जल्दी ही हो जाऐगा। अब यह जानते हुए कि औषधि पूरी तरह उपयुक्त है और सुधार होने में अधिक समय लगता है तो इसका कारण या तो रोगी के व्यवहार पर निर्भर करता है, अथवा, अन्य बाधक परिस्थितियों, या, औषधि की मात्रा पर्याप्त अल्प नहीं होने के कारण अर्थात् औषधि की मात्रा बड़ी होने से प्रभाव देर तक होते रहने से होम्योपैथिक रोगवृद्धि हुई है।''

आजकल अधिकतर रोगी ऐसे होते हैं जो अक्सर रोग के लक्षणों में हुए सुधार को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, दूसरे इनमें से अधिकांश ऐसे व्यक्ति होते हैं जो लक्षणों में

Dr. S. K. Mangalik Email:drmangain@gmail.com

उत्पन्न थोड़े से अन्तर का अवलोकन ही नहीं करते, (1) शायद उनके मन में यही धारणा रहती है कि होम्योपैथिक औषधि से एकदम पूरा आराम मिल जाता है, (2) आज के युग में लोग पुराने लोगों की तरह लक्षणों में तापमान, दिन, रात, या उन परिस्थितियों पर बारीकी से घ्यान नहीं देते जिनमें रोग लक्षणों में वृद्धि या सुधार होता है, (3) अधितर रोगियों का ध्यान केवल किसी एक प्रमुख कष्ट पर ही रहता है ओर वे सीधे यही कहते हैं कि दवा से कोई अन्तर नहीं पड़ा जबकि अन्य लक्षणों में काफी लाभ हो चुका होता है यद्यपि उस एक प्रमुख कष्ट में भी कुछ राहत हो चुकी होती है तथापि वे स्वीकार नहीं करते। क्योंकि मैं (डा0 ममगाई) रोगियों के लक्षणों का पूरा ब्योरा लिख कर रखने का प्रयास करता हूँ, अत: रोगी से सब लक्षणों के बारें में छानबीन करने पर सही स्थिति का पता चल जाता है, और अपनी ओर से यह सारा काम तर्क संगत ढंग से करता हूँ ओर रोगी को अक्छी तरह अंतर समझाता हूँ तो रोगी को भी संतोष हो जाता है।

256वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''दूसरी ओर, यदि रोगी कुछ नई दुर्घटनाओं और महत्वपूर्ण लक्षणों का जिक्र करता है तो इससे स्पष्ट होता है कि चुनी गई औषधि ठीक से होम्योपैथिक नहीं रही है; तब भी जब सौम्य स्वभाव वाला रोगी विश्वास दिलाए कि वह अच्छा अनुभव कर रहा है, (जैसा कि अक्सर फेफड़ों के फोड़ों के साथ यक्ष्मा के रोगियों में होता है), हमको उनका विश्वास नहीं करना चाहिए, बल्कि उसकी दशा में वृद्धि हुई माननी चाहिए जो जल्दी ही पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी।''

257वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''सच्चे चिकित्सक को चाहिए कि वह उन दवाओं को, जिनके उपयोग से संयोगवश, उसे अक्सर सफलता मिली हो और जिनका उपयोग करने से उसे अच्छे प्रभाव के अवसर मिले हों उन्हें मनभावन (favourite) औषधियाँ न बना ले। यदि वह ऐसा करता है तो कुछ विरल (rarer) उपयोग की कुछ औषधियाँ जो होम्योपैथिकरूप से अधिक उपयोगी हो सकती थीं, अक्सर उनकी अनदेखी हो जाएगी।''

258वें अनुच्छेद में कहते हैं कि एक सच्चा चिकित्सक अपनी प्रैक्टिस में उन औषधियों की भी अनदेखी नहीं करेगा जिनसे किन्ही कारणों से उसे असफलता मिली हो। वे कहते हैं कि:

Dr G K Mamgain, Email:drmamgain@gmail.com

''सच्चा चिकित्सक, और तो क्या, अपनी प्रैक्टिस में संदिग्ध कमजोरी के कारण उन औषधियों की भी अनदेखी नहीं करेगा, जिन्हें उसने यदा कदा उपयोग किया और (इसलिए, उसकी अपनी गलती से) त्रुटिपूर्ण चुनाव के कारण अच्छे परिणाम नहीं मिले या किन्हीं अन्य (झूठे) कारणों से उनका बहिस्कार करे क्योंकि वे हस्तगत रोग के मामले में होम्योपैथिक नहीं थीं; उसे अपने मस्तिष्क में सच्चाई को रखना चाहिए, कि प्रत्येक रोग के लिए औषधीय कारकों में केवल एक ही निरपवाद रूप से वरीयता के योग्य होगी जो समस्त चारित्रिक लक्षणों की समानता के साथ अत्यधिक सटीक होगी, ताकि कोई तुच्छ पक्षपात इस गम्भीर चुनाव में हस्तक्षेप न कर सके।''

259वें अनुच्छेद में वे औषधि की अति सूक्ष्म मात्राओं के कारण रोगी को उन सभी बस्तुओं से दूर रखने की राय देते हैं जिनसे औषधि की क्रिया में बाधा पड़ सकती है। वे कहते हैं कि:

''होम्योपैथिक चिकित्सा में आवश्यक और उचित मात्राओं की सूक्ष्मता पर विचार करते हुए, हम आसानी से समझ सकते हैं कि चिकित्सा के दौरान आहार और दिनचर्या में से, उन सब बातों को अवश्य दूर कर देना चाहिए जिनकी कोई औषधीय क्रिया होती हो ताकि किसी वाह्य औषधीय क्षोभक (irritant) से व्याकुल हो कर बुझ या बाधित न हो जाए।''

इस अनुच्छेद के लिए उन्होंने टिप्पणी दी है जिसमें वे रात के समय दूर बजती बॉसुरी के मध्यम स्वरों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि:

''रात के सन्नाटे में कहीं दूर बजती हुई बाँसुरी के मध्यम स्वर, जो दिन के शोर गुल में शक्तिहीन होकर सुनाई नहीं पड़ते, उनसे कोमल हृदय में भावनाएँ उमड़ती हैं और धार्मिक आनन्द में पिघल जाती हैं।''

260वें अनुच्छेद में 259वें अनुच्छेद के संदर्भ में वे आरोग्य के लिए ऐसी बाधाओं में सावधानीपूर्ण जॉच पड़ताल की जरूरत पर जोर देते हुए कहते हैं कि:

''अत: क्रॉनिक रोगों से प्रभावित रोगियों के मामले में आरोग्य के लिए इस प्रकार की बाधाओं में सावधानीपूर्ण जॉच पड़ताल बहुत अधिक जरूरी होती है, क्योंकि, इस प्रकार के आहार और जीवनचर्या में गलती के हानिकारक प्रभावों से अन्य रोग, जो अक्सर नजर अंदाज हो जाते हैं, के कारण उनके रोग बढ़ जाते हैं।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में आहार आदि में किन बातें से रोग वृद्धि हो सकती है, उन पर प्रकाश डालते हुए यथा, चाय, कॉफी, अनेक तरह के मादक पेय, औषधीय गुण

Dr. S. K. Mangalik Email: drmangalik@gmail.com

वाली बनस्पतियाँ, बासी भोजन, अनेक प्रकार के मांस, अधिक मात्रा में भोजन, नमक, चीनी, मसाले, आदि, गरम किए गये कमरे, शरीर से लगे हुए ऊनी कपड़े, बन्द अपार्टमेन्टों में आलसी जीवन, अधिक यौनाचार, देर तक जागना, गन्दा साहित्य पढ़ना, क्रोध, शोक, मानसिक या शारीरिक अतिश्रम, दलदली या नमी वाले स्थानों में निवास आदि जिनसे रोग वृद्धि हो सकती है, रोगियों को ऐसी चीजों और परिस्थितियों से बचने की सलाह देने का निर्देश दिया है।

261वें अनुच्छेद में वे क्रॉनिक रोगों के मामलों में जीवनचर्या में से आरोग्य की राह में आने वाली बाधाओं को हटाने तथा सात्विक जीवन की राय देने के निर्देश देते हैं। वे कहते हैं कि:

''क्रॉनिक रोगों में औषधि सेवन के दौरान उपयुक्त जीवनचर्या के लिए आरोग्य की राह में आने वाली बाधाओं को हटाने, और सादे चरित्र का मनोरंजन सब प्रकार के मौसम में खुली हवा में व्यायाम (नित्य घूमना, हल्का शारीरिक श्रम), उपयुक्त, पौष्टिक, अनौषधीय आहार और पेय, इत्यादि करने की राय दें।''

262वें अनुच्छेद में दूसरी ओर एक्यूट रोगों में, मानसिक विकार के मामले छोड़ कर रोगी के तीमारदारों को राय देने के लिए कहते हैं कि:

''दूसरी ओर एक्यूट रोगों में – मनोविकारों के मामलों को छोड़ कर – संवेदी, त्रुटिहीन आन्तरिक जागरूक जीवनरक्षक चेतना की क्षमता बहुत स्पष्टता और सही तरीके से निर्णय लेती है कि चिकित्सक को केवल रोगी के मित्रों और सेवादारों को राय देने की जरूरत होती है कि प्रकृति की आवाज की राह में कोई बाधा न डालते हुए रोगी खाने केलिये जिस वस्तु की तीव्र इच्छा जाहिर करे उसे दे दें या कोई हानिकारक वस्तु लेने के लिए बाध्य न करें।''

263वें अनुच्छेद में वे आगे कहते हैं कि:

''एक्यूट रोग से प्रभावित रोगी में भोजन और पेय के सम्बन्ध में निश्चय ही मुख्यत: जिन वस्तुओं से उसे शान्तिदायक राहत मिलती है उन के लिए इच्छा, यद्यपि, दृढ़ता से औषधीय चरित्र के लिए नहीं बल्कि एक प्रकार से केवल इच्छापूर्ति के लिए कह रहा हूँ। ऐसी इच्छापूर्ति से जो हल्की सी बाधा सीमित सीमा में आती है, रोग के मौलिक निवारण में विरोध कर सकती है, वह होम्योपैथिकरूप से चुनी गई उपयुक्त औषधि द्वारा समाप्त कर दी जाएगी और तथापि, इस बाधा से उस वस्तु जिसकी वह

Dr. S. K. Mangalani Email: drmangalani@gmail.com

अत्यधिक तीव्रता से इच्छा कर रहा था, उसके मिल जाने पर प्राप्त ताजगी से भी, जीवनीशक्ति स्वतन्त्र हो जाएगी। इसी प्रकार, एक्यूट रोगों में कमरे का तापमान और ओढ़ने के कपड़ों की गरमी या ठण्डापन पूरी तरह रोगी की इच्छा में सुख के अनुसार प्रबन्ध करना चाहिए। उसको हर प्रकार के मस्तिष्क के अतिश्रम और उत्तेजनात्मक भावनाओं से आजाद रखना चाहिए।''

रोगी की इच्छाओं के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं कि:

तथापि, ऐसा कभी कभार ही होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, शुद्ध प्रदाहक रोगों में, जहाँ एकोनाइट अत्यावश्यक होती है, जिसकी क्रिया वनस्पति अम्लों से नष्ट हो जाती है, रोगी की इच्छा लगभग हमेशा केवल शुद्ध ठण्डे पानी के लिए होती है।''

264वें अनुच्छेद में औषधियों की प्रामाणिकता की बात करते हुए वे कहते हैं कि: ''सच्चे चिकित्सक को प्रामाणिक और शुद्ध शक्ति की औषधियाँ उपलब्ध होनी चाहिएँ, ताकि वह उनकी चिकित्सीय शक्ति पर विश्वास कर सके, उसे स्वयं ही उनकी प्रामाणिकता जाँचने योग्य होना चाहिए।''

265वें अनुच्छेद में आगे उनका कहना है कि:

''यह उसके विवेक का मामला होना चाहिए कि वह इस बात से पूरी तरह सन्तुष्ट हो कि रोगी को हमेशा सही दवा मिली है। अत:, इसके अतिरिक्त, वह रोगी को स्वयं तैयार की गई सही औषधि प्रदान करे।''

यहाँ पर एक बात क्षमा याचना के साथ कहना चाहूँगा कि आज महर्षि हैनिमैन के समय से लगभग दो सदी बाद उनके समय की अपेक्षा मेटीरिया मेडिका में बहुत सारी भलि प्रकार परीक्षित औषधियों का समावेश हो चुका है, अत: उन सबका चिकित्सक द्वारा स्वयं तैयार कर पाना और उनकी गुणवत्ता की जाँच करना व्यवहारिक नहीं रहा है। अत: चिकित्सक को होम्योपैथिक फार्मेसियों द्वारा तैयार औषधियों पर ही निर्भर रहना सम्भव रह गया है। परन्तु पिछले पाँच दशक के अनुभव में मैंने (डा0 ममगाई) पाया है कि भारतीय फार्मेसियों द्वारा तैयार इस प्रकार उपलब्ध औषधियाँ पूरी तरह कारगर होती हैं और न केवल एक्यूट मामलों में बल्कि क्रॉनिक रोगों के मामलों में भी पूरी तरह निर्भर योग्य होती हैं। इतना ही नहीं आग्रही (urgent) मामलों में जहाँ आज की तथाकथित आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा रोगी को राहत पहुँचाने में असफल रहती है, ये

Dr S. K. Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

होम्योपैथिक औषधियाँ पूरी तरह कारगर सिद्ध होती हैं। उदाहरण स्वरूप यहाँ पर एक हाल ही के रोगी मामले का विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आँतों से रक्तस्राव के कारण अरक्तता का एक रोगी

होम्योपैथिक एवं तथाकथित उन्नत एलोपैथिक चिकित्सा का निजी अनुभव से एक तुलनात्मक उदाहरण देना असंगत नहीं होगा। दिनांक 18 दिसम्बर, 2019 को मेरे पास एक 62 बर्षीय रोगी को लाया गया जो दिनांक 6 नवम्बर, 2019 से पीड़ित था। उसके रोग का विवरण इस प्रकार था:

- 6 नवम्बर, 2019 के दिन रोगी को खून की उलटी हुई और उसके बाद उक्त रोगी को अत्यन्त कमजोरी हो गई।
- आँतों से रक्त स्राव होने लगा जो लगातार जारी रहा जिसके कारण रोगी का मल जले हुए खून की तरह काले रंग का होने लगा।
- रोगी का हीमोग्लाबिन 5 ग्राम प्रतिशत हो गया।
- रोगी को कोई दर्द नहीं था।
- प्रतिष्ठित उन्नत अस्पतालों में दिखाया गया।
- रोगी को खून की कमी दूर करने के लिए 6 नवम्बर से 17 दिसम्बर, 2019 तक 27 यूनिट खून चढ़ाया जा चुका था लेकिन खून चढ़ाने और अनेक दवाओं के बाद भी रक्त स्राव होते रहने के कारण हीमाग्लोबिन फिर से बहुत जल्दी 5 ग्राम प्रतिशत आ जाता था। चिकित्सक यही निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि खून का स्राव किस जगह से हो रहा है। स्राव रोका भी नहीं जा सका था।
- भूख नहीं थी।

खून के रंग के आधार पर होम्योपैथिक औषधि अति अल्प मात्रा में दी गई। रोगी के स्वास्थ्य में तेजी से सुधार होना शुरु हो गया।

7 जनवरी को मुझे बतलाया गया कि रोगी का मल सामान्य रंग का हो चुका था और सब ओर से लाभ था। पर रोगी ने जैसा बतलाया गया था उसके विपरीत खाने में बदपरहेजी कर दी। जिसके कारण रोग पुन: लौट आया। किसी भी गम्भीर रोग के जल्दी से लौट आने पर अक्सर फिर सुधार में कुछ अधिक समय लग जाता है।

फिर से विचार कर अन्य होम्योपैथिक औषधि उसी प्रकार अल्प मात्रा में दी और पथ्य और परहेज के बारे में सख्ती के साथ सावधानी बरतने का निर्देश दिया, अब रोगी पूरी तरह परहेज करने लगा, जिससे धीरे धीरे फिर सुधार होना शुरु हुआ, भूख भी लगना शुरु हो गई और रोगी के स्वास्थ्य में बिना खून चढ़ाए मात्र सादे भोजन से ही

Dr S K Mamgain, Email:drmamgain@gmail.com

निरन्तर सुधार जारी है। जिससे सिद्ध होता है कि जीवनीशक्ति जब तक अपना उत्तरदायित्व न सम्भाल ले और जीवन की सामान्य प्रक्रिया शुरु न हो जाय, तब तक और बाद में भी, किसी भी बाहरी सहायता से स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो सकता। साथ ही अपने देश में बनी होम्योपैथिक औषधियों की गुणवत्ता भी सिद्ध हो गई जिनसे रोगी सहजता के साथ स्वास्थ्य लाभ पाने लगा, जैसा मै पिछले पाँच दशक से देख रहा हूँ।

*

अब आगे के अनुच्छेदों में वे तीसरे अनुच्छेद में वर्णित अगले चरण 'औषधि को तैयार करने का सही तरीका और उसकी आवश्यक मात्रा (औषधि की उपयुक्त मात्रा) के सम्बन्ध में निर्देश देना शुरु करते हैं।

266वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि:

''पशु और वनस्पति जगत से प्राप्त पदार्थों में, अधिक अच्छी तरह अपरिष्कृत अवस्था में उनके अपने औषधीय गुण निहित होते हैं।''

इस अनुच्छेद की लम्बी टिप्पणी में वे कहते हैं कि:

''सभी पशु और वानस्पतिक पदार्थों में कमोबेश औषधीय शक्ति होती है, जो अपने विशिष्ट तरीके से मानव के स्वास्थ्य को बदल देने में समर्थ होती हैं। ऐसे पौधे और पशु अति प्रबुद्ध राष्ट्रों द्वारा भोजन के रूप में उपयोग किए जाते हैं, इसका सर्वोपरि लाभ यह होता है कि इनमें प्रचुर मात्रा में पौष्टिक तत्त्व होते हैं; वे दूसरों से इस बात में भिन्न होते हैं कि अपरिपक्व (raw) दशा में उनकी औषधीय शक्तियाँ या तो अधिक नहीं होतीं या घरेलू उपयोग के लिए पाकशाला में पकाने की प्रक्रिया में उनका हानिकारक रस निचोड़ देने, खमीर उठा देने, धूमायन (smoking) और उबाल देने, आदि के द्वारा ऐसे अनेक पदार्थों के औषधीय भाग समाप्त या कम हो जाते हैं। नमक, सिरका और अन्य मसाले डाल देने से पशु और वनस्पति पदार्थ निश्चिय ही अपने हानिकारक औषधीय गुण खो देते है, फिर भी इनके उपयोग से विघ्नकारक परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं।

लेकिन इन प्रक्रियाओं से अधिक औषधीय गुण वाले पौधों की शक्ति भी आंशिक रूप से या पूरी तरह समाप्त हो जाती है। विभिन्न प्रकार की सब आइरिस, हॉर्स रैडिस, एरम की विभिन्न किस्मों, पियोनी की जड़ों, के पूरे औषधीय गुण पूरी तरह पका देने से नष्ट हो जाते हैं। बहुत विषाक्त पौधों के रस ऑच पर पकाने से अक्सर निष्क्रिय हो जाते हैं। लम्बे समय तक सामान्य तापमान में रखे रह जाने से

Dr S.K. Mangairi, Email: drmangain@gmail.com

भी बहुत घातक पौधों के रस बिलकुल शक्तिहीन हो जाते हैं और उनमें तेजी से सुरा जैसा खमीर हो जाता है (और इस प्रकार उनकी औषधीय शक्ति समाप्त हो जाती है) और उसके बाद तुरत सड़ जाने की प्रक्रिया के कारण विशिष्ट औषधीय गुणों से हीन होकर उनकी तलछट जम जाती है, अगर उसे अच्छी तरह धो दिया जाये तो वह सामान्य स्टार्च की तरह रह जाता है। जब अनेक हरे पौधों को एक दूसरे के ऊपर ढेर लगा देते हैं तो उनके पसीजने के करण से भी उनकी अधिकांश औषधीय शक्ति नष्ट हो जाती है।''

267वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''हम स्वदेश में उपलब्ध पौधों के ताजे निचोड़े गए रस को तुरत वाइन की स्पिरिट को, जो लैम्प में जलाने के लिए पर्याप्त शक्ति वाली हो, में पूरे और निश्चित तरीके से मिला कर प्राप्त करते हैं। जब यह एक रात और दिन अच्छी तरह ढक्कन लगी बोतल में रखा रहे और इसके रेशेदार और अल्ब्युमिन जैसे पदार्थ बैठ जाएँ, तब स्वच्छ ऊपरी भाग को औषधीय उपयोग के लिए छान लेना चाहिए। वनस्पति के रस का किण्वन (fermentation) वाइन की स्पिरिट मिला देने से तुरत पूरी तरह रुक जाएगा और भविष्य के लिए भी असम्भव हो जाएगा, और इसको अच्छी तरह कार्क लगी बोतलों में रख कर, सूर्य के प्रकाश से दूर रखने पर इस पूरे वानस्पतिक रस की औषधीय शक्ति (पूरी तरह और बिना खराब हुए) हमेशा के लिए सुरक्षित रह जाएगी।''

यहाँ पर उन्होंने टिप्पणी की है कि:

''कभी कभी वानस्पतिक रसों के साथ मिलाने से पहले, यथा, उनको सुरक्षित रखने के लिए रस निकालने से पहले अल्कोहल में रख दिया जाता है, परन्तु इस रूप में उपयोग करने के लिए कभी उनका उपयोग नहीं किया जाता है।''

अगली टिप्पणी में उन्होंने कहा है कि:

''यद्यापि ताजे निकाले गए रस के रेशेदार और अल्ब्युमिन पदार्थों की तलछट जमने के लिए उसके साथ बराबर मात्रा में अल्कोहल मिलाना सर्वोपयुक्त अनुपात है, फिर भी उन पौधों के लिए जिनमें अत्यधिक म्यूकस होती है (जैसे, सिम्फाइटम ऑफिसिनैलिस, वायोला ट्राइकलर, सोलेनम नाइग्रम, इत्यादि) सामान्यत: इस उद्देश्य के लिए दोगुने अनुपात में अल्कोहल मिलाने की जरूरत पड़ती है। जिन पौधों में बहुत कम रस होता है यथा, ओलिएण्डर, बक्सस, टैक्सस, लिडम, सेबाइना, इत्यादि, उनको पहले अकेले बारीक कूट लिया जाए और फिर दोगुने अल्कोहल में घोल दिया जाए, ताकि,

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

इसको निचोड़ कर और दबा कर अल्कोहल को निकाला जा सके; बाद में यह बचा हुआ भाग जब सूख जाए, शूगर ऑफ मिल्क के साथ दस लाखवें भाग तक पिसाई (trituration) करके फिर घोल में अगली पोटेन्सी बनाएँ (271वाँ अनुच्छेद)।''

268वें अनुच्छेद में उन पदार्थों के सम्बन्ध में निर्देश दिया है जो ताजी दशा में उपलब्ध नहीं हो सकते। उन्होंने कहा है कि:

''अन्य विदेशी पौधे, छालें, बीज और जड़ें जो ताजी दशा में उपलब्ध नहीं हो सकते, समझदार चिकित्सक उनको कभी भी चूर्ण की दशा में विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करेगा, परन्तु उनके औषधीय उपयोग से पहले उनकी मौलिकता की अपरिष्कृत और पूरी दशा से अपने को संतुष्ट कर लेगा।''

औषधियों को चूर्ण की हालत में सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है। वे कहते हैं कि:

''उनको चूर्ण के रूप में सुरक्षित रखने के लिए जिन सावधानियों की आवश्यकता होती है, अक्सर उनकी औषधि विक्रेताओं द्वारा अब तक अवहेलना की जाती रही है, अत: पशु और वानस्पतिक पदार्थों के अच्छी तरह सुखाए गए चूर्ण अच्छी तरह कार्क लगी बोतलों में भी खराब हुए बिना सुरक्षित नहीं रखे जा सकते। हाँलाकि पूरी तरह सूखे अपरिष्कृत वानस्पतिक पदार्थों में, उनकी बनावट से जुड़ी अनिवार्य दशा के कारण बिना पिसी दशा में, फिर भी, कुछ नमी रह जाती है, लेकिन जो महीन पिसी हुई दशा के लिए बहुत अधिक होती है, जो उसमें नहीं रहनी चाहिए थी, जिसमे दवा को वान्छित रूप से सूखी दशा में खराब होने से सुरक्षित रहना चाहिए था। पशु या वानस्पतिक पदार्थ जब महीन चूर्ण के रूप में जो कुछ पूरी तरह सूखी दशा में कर सकता है, उसके लिए वह कुछ नमीयुक्त चूर्ण बिना, तिस पर भी कार्क लगी बोतल में पहले से इस नमी को दूर किए बिना, रखने से तेजी से खराब हुए बिना, सुरक्षित नहीं रह सकता। अत:, उठे हुए किनारों वाली टिन की प्लेट में, जो खौलते पानी से भरे बरतन में तैर सके, रखें और इस चूर्ण को तब तक चलाते रहें जब तक कि चूर्ण के सारे कण सूख कर सूखी धूल की तरह अलग अलग न हो जाएँ, आपस में चिपकें नहीं, चूर्ण को पूरी तरह सुखाने का यही सबसे अच्छा तरीका है। इस सूखी हुई अवस्था में इस महीन चूर्ण को बोतल में कार्क अच्छी तरह लगा कर और सील करके, उनकी पूरी मूल औषधीय शक्ति के साथ, कृमि और फफूंदी द्वारा प्रभावित हुए बिना, धूप से बचा कर और ढक्कनदार बक्से में खराब हुए बिना, हमेशा के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि सभी पशु और वानस्पतिक पदार्थों को वायु-रोधक

Dr. S. K. Mangalam Email: drmangam@gmail.com

(air-tight) बरतनों में न रखें, सूर्य और दिन के प्रकाश से न बचाएँ तो धीरे धीरे कुछ समय बाद इनकी औषधीय शक्ति पूरी तरह समाप्त हो जाती है।''

269वें अनुच्छेद में बतलाते है कि चिकित्सा के लिए होम्योपैथिक पद्धति में पहले कभी नहीं सुनी गई अपरिष्कृत पदार्थो की एक विशेष प्रक्रिया द्वारा जागृत की गई ऊर्जाशक्ति का उपयोग किया जाता है। महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि:

''औषधि की होम्योपैथिक पद्धति अपने विशिष्ट उपयोग के लिए अपरिष्कृत औषधीय पदार्थो की, यहाँ तक कि उनकी भी जो अपनी अपरिष्कृत अवस्था में मनुष्य शरीर पर तनिक भी औषधीय शक्ति का प्रमाण नहीं देती हैं, ऊर्जाशक्ति की कोटि (degree) को, अभी तक कभी भी नहीं सुनी गई एक अनूठी प्रक्रिया द्वारा विकसित करती है, जो अब तक कभी भी आजमायी नहीं गई थी, जिसके द्वारा वे असीमित और प्रबल रूप से प्रभावशाली आरोग्यकारी बन जाती हैं।''

पदार्थो में छुपी हुई औषधीय ऊर्जाशक्ति को अनूठी प्रक्रिया जिसे डायनामिज्म या पोटेंटाइजेशन कहा जाता है, के द्वारा असीमित और प्रबल रूप से प्रभावशाली आरोग्यकारी औषधि बन जाने को उचित प्रमाणित करने के लिए इस अनुच्छेद के बाद महर्षि हैनिमैन ने कई टिप्पणियों में अनेक उदाहरणों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। यथा घर्षण द्वारा विभिन्न भौतिक और निर्जीव प्राकृतिक पदार्थो में गर्मी, आग, गन्धहीन पदार्थो में गन्ध, स्टील में मैग्नेटिज्म आदि का पैदा हो जाना, जबकि यह प्राकृतिक नियम है जिसके द्वारा अपरिष्कृत औषधीय पदार्थो और यहाँ तक कि उन पदार्थो में भी जिन्होंनें कभी कोई औषधीय गुण प्रकट नहीं किया, उन शक्तियों के माध्यम से शरीर की दशा में शारीरिक और रोगजनक परिवर्तन हो जाते हैं। ऐसा किसी उदासीन पदार्थ के साथ एक खास अनुपात में पीसने और झटके देने से हुआ है। महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि ''यह आश्चर्यजनक भौतिक और विशेषत: शारीरिक और रोगजनक प्राकृतिक नियम मुझसे पहले किसी ने नहीं खोजा था। अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वर्तमान प्रकृति के विद्यार्थी और चिकित्सक अभी तक भी अज्ञात औषधियों की होम्योपैथिक सिद्धान्तों (डायनामाइज्ड) के अनुसार तैयार इन अत्यल्प मात्राओं की आरोग्यकारक शक्तियों में विश्वास न करें।''

आगे उनका कहना है कि:

''प्राकृतिक वस्तुओं के गुणों में यह असाधारण परिवर्तन उनमें प्रसुप्त, अब तक अनुभव न की गई और छुपी हुई ऊर्जा की शक्तियों को विकसित करता है जो प्राणि जीवन के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। यह प्रभाव उनके अल्पतम कणों को सूखे या तरल अनौषधीय पदार्थ के साथ रगड़ कर या झकझोर कर एक दूसरे से अलग करते

Dr. S. K. Mangalin; Email: drmangalin@gmail.com

हुए पैदा किया जाता है। यह प्रक्रिया डायनामाइजिंग, पोटेन्टाइजिंग (औषधीय शक्ति को विकसित करना) और इसके उत्पाद विभिन्न कोटि (degrees) के डायनामाइजेशन या पोटेन्सी कहलाते हैं।'' उदाहरण स्वरूप उन्होंने कहा कि जिस प्रकार स्टील की छड़ को रेती से घिसने से उसमें प्रसुप्त चुम्बक शक्ति पैदा हो जाती है और उसे जितना अधिक रगड़ते है उतना ही वह शक्तिशाली होती जाती है। उसी प्रकार डाइनामाइजेशन, पोटेन्टाइजेशन से पदार्थ में छिपी हुई औषधीय शक्ति अधिकाधिक विकसित होती जाती है।

एक अन्य टिप्पणी में वे कहते हैं कि इस सम्बन्ध में यह संकेत मिलता है कि यदि इन प्राकृतिक पदार्थो की शक्ति बढ़ा कर, इस विकसित दशा में इसे केवल जीवित संवेदनशील तन्तुओं के बहुत नजदीक लाया जाय या (खाने या सूँघने के माध्यम से) इनके सम्पर्क में लाया जाय तो पशुओं और मनुष्यों के स्वास्थ्य में परिवर्तन किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक चुम्बक की शक्ति बढ़ा देने से (dynamized) अपनी चुम्बकीय शक्ति को स्टील की एक सुई में प्रदर्शित कर सकता है। इससे स्टील हर प्रकार से अपरिवर्तित रहता है, जबकि यह दूसरी किसी धातु में कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, इसी प्रकार शक्तिकृत (dynamized) औषधियाँ निर्जीव पदार्थो पर कोई क्रिया नहीं कर सकतीं।

वे आगे लिखते हैं कि हम नित्य सुनते हैं कि होम्योपैथिक औषधीय पाटेन्सी मात्र तरलीकरण (dilution) होती है, जबकि वे इसके बिल्कुल विपरीत होती है अर्थात् प्राकृतिक पदार्थो में छिपी हुई विशिष्ट औषधीय शक्तियों को घिसने या झटके देने के द्वारा प्रकट करना और प्रकाश में लाना होता है। शक्तिकरण के लिए अनौषधीय माध्यम का चुनाव केवल एक द्वितीयक दशा होती है।

उदाहरण के लिए नमक के एक ग्रेन का घोल सामान्य तरलीकरण होता है, काफी पानी में नमक का ग्रेन तरल में घुल जाएगा और कदापि औषधीय नमक में विकसित नहीं होगा तो हमारे भलि प्रकार शक्तिकरण (dynamization) के द्वारा शानदार शक्ति तक उन्नत हो जाता है।

270वें अनुच्छेद में औषधीय पोटेन्सी तैयार करने की विधि का निर्देश ऑर्गेनन के पॉचवें संस्करण में महर्षि हैनिमैन ने निम्नलिखित तरीके से दिया है। वे कहते हैं कि:

''इस प्रकार ताजी वनस्पति की दो बूँदें बराबर मात्रा के अल्कोहल में मिला कर 98 बूँद अल्कोहल के साथ दो बार झटके दे कर पोटेन्टाइज की जाती हैं, जिससे पहली शक्ति विकसित हो जाती है और यही प्रक्रिया उनतीस अन्य शीशियों के बीच दोहराई

Dr. S. K. Mangal: Email: drmangal@gmail.com

जाती है, जिनमें से प्रत्येक शीशी अल्कोहल की 99 बूँदों से तीन चौथाई तक भरी होती है और हर अगली शीशी में एक बूँद पिछली शीशी (जिसको पहले ही दो बार झटके दे दिए गए होते हैं) में से दो बार झटके दिए जाते हैं और इस प्रकार अन्त में तीसवीं शक्ति का विकास हो जाता है (डेसीलिनिथ अर्थात् दस लाख को उसीसे दस बार गुणा करने से बनी हुई संख्या, X) जो कि सर्वाधिक उपयोग की जाती है।''

महर्षि हैनिमैन ने इस अनुच्छेद की टिप्पणी में कहा है कि उन्होंने अनेक अनेक परीक्षणों ओर अनुभवों के बाद प्रत्येक शीशी को अनेक झटके देने की अपेक्षा दो झटके देने का मानक तय कर दिया है। तथापि ऐसे भी होम्योपैथ हैं जो रोगियों को देखने जाने पर अपने साथ तरल दशा में दवाएँ ले जाते हैं जो उचित नहीं है, इस प्रकार उनकी पोटेन्सी बहुत बढ़ जाती है। परन्तु उनमें सही अवलोकन करने की क्षमता नहीं होने के कारण वे इस बात को नहीं जान पाते हैं। परीक्षण के तौर पर उन्होंने एक ग्रेन सोडा को आधे आउन्स अल्कोहल मिले पानी में लेकर एक शीशी में तीन चौथाई तक भर कर इस घोल को लगातार आधे घण्टे तक झटके दिए जिससे यह तरल तीसवीं शक्ति के बराबर विकसित हो चुका था।

उन्होंने इस अनुच्छेद को ऑर्गेनन के छठे संस्करण में पूरा ही दोबारा लिखा। जो इस प्रकार है:

''शक्ति के इस विकास को सर्वश्रेष्ठ पाने के लिए, शक्तिकृत किए जाने वाले पदार्थ का एक छोटा भाग यथा एक ग्रेन तीन घण्टे तक आगे वर्णन किए गये तरीके से* एक सौ ग्रेन शूगर ऑफ मिल्क में तीन बार पाउडर के रूप में एक मिलियन्थ (दस लाखवें) भाग तक पीसा जाता है (triturated)। नीचे दिए गए कारणों से इस पाउडर का एक ग्रेन, एक भाग अल्कोहल और चार भाग डिस्टिलड जल के मिश्रण में घोल कर इसकी एक बूँद एक शीशी में ले लें। इसमें 100 बूँद शुद्ध अलकोहल डाल लें और इसको पोटेन्टाइज की जाने वाली शीशी में तीन चौथाई तक भर लें और इसे किसी सख्त परन्तु लचीली वस्तु पर (सम्भवत: चमड़े से बाइण्ड की गई पुस्तक पर) हाथ से एक सौ तगड़े झटके मारे जाएँ। यह पहली कोटि (degree) की शक्तिकृत औषधि है जिससे शूगर की छोटी ग्लोब्यूल** सिक्त (moistened) की जा सकती हैं और इनको सुखाने के लिए तुरत ब्लॉटिंग पेपर फैला दिया जाय और फिर अच्छी तरह कार्क लगी शीशी में भर कर पहली कोटि की शक्ति का चिन्ह (1) लगा कर रख ली जाएँ। इसका एक ग्लोब्यूल*** अगले शक्तिकरण के

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

लिए दूसरी नई शीशी में (घुलाने के लिए) एक बूँद पानी के साथ ले लिया जाए, और फिर 100 बूँद अच्छे अल्कोहल के साथ उसी प्रकार 100 शक्तिशाली झटकों के साथ शक्तिकृत किया जाना चाहिए।''

इस अनुच्छेद में वर्णित पोटन्सी तैयार करने सम्बन्धि विभिन्न तारान्कित बातों के लिए टिप्पणियाँ दी हैं। यथा:

*एक चमकदार पोर्सलीन की खरल में जिसके तल भाग को गीली बारीक बालू से रगड़ कर खुरदुरा कर लिया गया हो, एक सौ ग्रेन का एक तिहाई शूगर ऑफ मिल्क लेकर, इसके ऊपर शक्तिकृत की जाने वाली दवा का एक ग्रेन पाउडर (पारे, पेट्रालियम, आदि, की एक बूँद) रखा जाय। शक्तिकरण के लिए शूगर ऑफ मिल्क विशुद्ध किस्म की होनी चाहिए। औषधि और शूगर ऑफ मिल्क को कुछ क्षण तक मिलाने के बाद सात से आठ मिनट तक जोर के साथ खुरदुरी की गई मूसली से पीसा (triturated) जाना चाहिए, फिर पोर्सलीन के स्पैचुला से खरल के तल से और मूसली के निचले भाग से तीन से चार मिनट तक अच्छी तरह खुरच कर मिलाया जाना चाहिए। इसके बाद इसमें बिना कुछ मिलाए उसी प्रकार 6-7 मिनट तक पीस कर और 3-4 मिनट तक स्पैचुला से खरल के तल और मूसली के निचले भाग से खुरच कर मिलाया जाना चाहिए। अब इसमें दूसरी बार एक सौ ग्रेन का एक तिहाई शूगर ऑफ मिल्क मिला कर और पहले की तरह दो बार 6-7 मिनट तक पीस कर और खरल और मूसली से खुरच कर तथा मिला कर, तीसरी बार एक सौ ग्रेन का एक तिहाई शूगर ऑफ मिल्क मिला कर खरल करने की पहले वाली प्रक्रिया उसी प्रकार दोहराई जानी चाहिये। इस प्रकार तैयार पाउडर को एक शीशी में अच्छी तरह कार्क लगा कर और उस पर पदार्थ का नाम और उत्पाद का चिन्ह /100 दे कर धूप से सुरक्षित स्थान पर रक्ष देना चाहिए। उत्पाद की शक्ति को बढ़ाने के लिए पहले उत्पाद के पाउडर का एक ग्रेन ले कर हर बार एक तिहाई शूगर ऑफ मिल्क के साथ तीन बार पहले बताई गई प्रक्रिया के अनुसार खरल करना चाहिए और उसी प्रकार नाम और चिन्ह /10000 लगा कर सुरक्षित रख लेना चाहिए। इस प्रकार तैयार पहली शक्तिकरण के पाउडर के हर ग्रेन में मूल पदार्थ का 1/100 भाग रह जाएगा, दूसरे शक्तिकरण में 1/10000 और तीसरे में 1/1000,000 भाग। प्रत्येक शक्तिकरण की प्रक्रिया में हर बार कुल एक एक घण्टे का समय लगेगा। शक्तिकरण की प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद हर बार दूसरे शक्तिकरण से पहले खरल, मूसली और स्पैचुला को भी गरम पानी से धो कर और सुखा कर आधे घण्टे तक उबालना चाहिए। ज्यादा अच्छा हो कि इन बरतनों को दहकते अंगारों पर रखा जाए।

Dr. G. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

** थिम्बल के आकार के काँच, पोर्सलीन या चाँदी के बने एक बेलनाकार बरतन में जिसके नीचे की ओर छोटा छेद हो, उसमें औषधि किए जाने वाले ग्लोब्यूल रखे जाएँ। उनको थोड़े से शक्तिकृत अल्कोहल से भिगो दिया जाय और हिला कर तेजी से सुखाने के लिए ब्लॉटिंग पेपर पर गिरा दिया जाना चाहिये।

एक टिप्पणी में वे कहते है कि औषधीय पदार्थों के सूखे पाउडर के शक्तिकरण की तीन कोटियाँ (degrees) हैं, जिन्हें यदि सही तरीके से तैयार कर लिया जाए तो औषधीय पदार्थों के शक्तिकरण की ये अच्छी शुरुआत हो जाएगी।

''*** पहले निर्देशों के अनुसार उच्च पोटेन्सी तैयार करने के लिए निम्न पोटेन्सी की एक बूँद 100 बूँद अल्कोहल के साथ ली जानी चहिए। जिस औषधि का शक्तिकरण करना है उसके साथ इस शक्तिकृत औषधि का अनुपात (100:1) कुछ झटकों द्वारा बिना अधिक शक्ति का प्रयोग किए पूरी तरह उच्च कोटि तक अच्छी शक्ति बढ़ाने के लिए बहुत सीमित पाया गया है, जिसने मुझे विश्वास दिला दिया है कि यह प्रक्रिया बहुत थका देने वाला अनुभव है।

यदि ऐसा एक ग्लोब्यूल लिया जाय जिसके 100 ग्लोब्यूल का भार एक ग्रेन हो और उसको अल्कोहल की 100 बूँदों के साथ शक्तिकृत किया जाय तो अनुपात 1:50,000 या और अधिक हो जाएगा, क्योंकि ऐसे 500 ग्लोब्यूल पूरी तरह भीगने के लिए मुश्किल से एक बूँद सोख पाऐंगे। औषधि और तरलीकरण माध्यम के बीच इस उच्चतम असंगत अनुपात के अल्कोहल से दो तिहाई तक भरी हुई शीशी को एक साथ कुछ झटके देने से काफी अधिक शक्ति विकसित हो सकती है। लेकिन यदि औषधि के इतने हल्के तरलीकरण 1:100 माध्यम को एक शक्तिशाली मशीन के द्वारा अनेक झटके दिये जाने से जो औषधि विकसित होती है वह विशेष रूप से उच्चतर शक्ति की कोटि की होती है, वह तत्काल प्रभावी होती है, परन्तु विशेष रूप से दुर्बल रोगियों की जीवनीशक्ति को उग्र, यहाँ तक कि खतरनाक प्रचण्डता से सौम्य प्रतिक्रिया किए बिना, चिरस्थायी प्रभावित करती है। परन्तु इसके विपरीत मेरे द्वारा वर्णन किए तरीके से उच्चतम शक्ति विकसित होती है और सौम्यतम क्रियाकारी होती है, फिर भी यदि वह सही तरीके से चुनी गई हो तो सब कष्टकर अंगों को आरोग्यकारी ढंग से छूती है। इस प्रकार तैयार की गई परिपूर्ण औषधियों की, यहाँ तक कि लम्बे समय तक क्रिया करने वाली (उदाहरण के लिए बेलेडोना) इन निम्नतम कोटि की पोटेन्सी की अल्प मात्राएँ एक्यूट ज्वरों में थोड़े अन्तर पर दोहराई जा सकती हैं। क्रॉनिक रोगों की चिकित्सा में कम कोटि की शक्ति से शुरु करना श्रेष्ठ

Dr. S. K. Mangain: Email: drmamgain@gmail.com

रहता है और जब जरूरी हो उच्च शक्ति की परन्तु सौम्य क्रिया की कोटि की ओर बढ़ा जा सकता है।''

छठे संस्करण में उन्होंने एक नई टिप्पणी जोड़ी कि:

''इस प्रकार शक्तिकरण से तैयार की गई औषधि में श्रमसाध्य परीक्षणों और प्रति-परीक्षणों द्वारा मैंने पाया कि वे बहुत शक्तिशाली परन्तु साथ ही क्रिया करने में बहुत सौम्य होती है; अर्थात् पूरी तरह परिपूर्ण। औषधि का भौतिक भाग शक्तिकरण की हर कोटि के बाद 5,000 गुणा कम होता जाता है, और फिर भी शक्ति में अविश्वसनीय रूप से वृद्धि होती जाती है, ताकि तीसरी शक्ति की कोटि में पहुँचने तक मूल औषधि का केवल 125 के बाद 18 शून्य रह जाता है।''

एक अन्य टिप्पणी में वे कहते हैं कि:

''स्वास्थ्य में पूरा सुधार और जीवनीशक्ति अच्छी हो जाने के बावजूद, बहुत ही विरल मामलों में, कोई चिन्ताजनक पुराना स्थानिक कष्ट यथावत् बना रह सकता है, ऐसे में हौम्योपैथिक औषधि जो गुणकारी सिद्ध हुई है, हाथ से बहुत से झटके दे कर बढ़ती हुई पोटेन्सी में देना पूरी तरह अनुमन्य भी है और जरूरी भी है। तब स्थानिक कष्ट अक्सर आश्चर्यजनक ढंग से समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार बढ़ाते हुए तीसवीं शक्ति में मूल औषधि का अंश संख्या में बताना एकदम असम्भव होगा। यह असामान्य रूप से प्रकट हो जाता है कि इस प्रकार शक्तिकरण (इसके आन्तरिक औषधीय तत्त्व का वास्तविक विकास) से भौतिक भाग अन्ततः इसके व्यक्तिगत आत्म स्वरूप तत्त्व में घुल जाता है। अतः इसके अपरिष्कृत रूप को केवल इसके आत्म स्वरूप तत्त्व का अविकसित रूप समझा जा सकता है।''

छठे संस्करण में पुनः लिखे गए 270वें अनुच्छेद में वर्णित पोटेन्सी तैयार करने की विधि के सम्बन्ध में टिप्पणी में उन्होंने लिखा कि इस प्रकार तीसवीं पोटेन्सी के ग्लोब्यूल तैयार कर लिए जाँय। अपरिष्कृत दवाओं के इस हेरफेर के माध्यम से तैयार की गई प्रस्तुतियाँ, इस प्रकार शरीर के केवल रोगी अंगों को प्रबलता से प्रभावित करने की पूरी सीमा तक पहुँच जाती हैं। इस भाँति, कृत्रिम रोग अवस्था के माध्यम से, जीवनीशक्ति पर प्राकृतिक रोग के प्रभाव को निष्प्रभाव कर देती है। इस यान्त्रिक प्रक्रिया के माध्यम से यदि यह शक्तिकरण, उपरोक्त शिक्षा के अनुसार लगातार किया जाय तो हस्तगत दवा, जो अपरिष्कृत अवस्था में केवल एक पदार्थ, अक्सर एक अनौषधीय पदार्थ थी, उसमें एक परिवर्तित प्रभाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु इस प्रकार उच्च से उच्चतर शक्तिकरण द्वारा, अन्ततः यह एक आत्म-शक्ति स्वरूप औषधीय शक्ति में परिवर्तित हो जाती है और साथ ही अति सूक्ष्म हो जाती है, जो, वास्तव में स्वयं हमारी इन्द्रियों की

Dr. S.K. Mangalam, Email: drmangam@gmail.com

अनुभूति में नहीं आती है, परन्तु जिसके कारण सूखा औषधीय ग्लोब्यूल, जब पानी में घोल कर दिया जाता है, तो आरोग्य का वाहक बन जाता है, और इस दशा में, इस अदृश्य आरोग्य शक्ति को रोगी शरीर में व्यक्त करता है।

271वें अनुच्छेद में औषधियों की पोटेन्सी तैयार करने के विषय में वे आगे पाँचवें संस्करण में कहते हैं, कि:

''सल्फर को छोड़ कर, जो काफी समय से केवल उच्च तनुकृत (diluted) (X) टिन्चर के रूप में उपयोग होता रहा है - औषधीय उपयोग के लिए दूसरे सभी पदार्थ यथा शुद्ध या ऑक्सीकृत और सल्फ्यूरेटेड धातुएँ तथा दूसरे खनिज, पेट्रालियम, फॉस्फोरस तथा पौधों के अंग और रस भी जो केवल सूखी हुई अवस्था में ही मिल सकते हैं, जन्तुओं के पदार्थ, उदासीन लवण, इत्यादि, इन सबको पहले तीन घण्टों तक चूर्ण रूप में पीस कर (trituration) दस लाखवीं (तीसरी) शक्ति तक पोटेन्टाइज की जाय फिर इसके एक ग्रेन को घोल कर सत्ताइस शीशीयों के माध्यम से तीसवीं शक्ति तक, जिस प्रकार वानस्पतिक रस शक्तिकृत किए जाते हैं उसी प्रकार ले जाएँ।''

छठे संस्करण में उन्होंने पाँचवें संस्करण के इस अनुच्छेद को पूरी तरह दोबारा लिखा। वे कहते हैं कि:

''यदि चिकित्सक होम्योपैथिक औषधियाँ स्वयं तैयार करे, लोगों को रोग से बचाने के लिए जैसा कि उसको समुचित रूप से करना ही चाहिए, यदि आरोग्य करने के उद्देश्य के लिए कदाचित निचोड़े गए रस की जरूरत न हो तो वह ताजे पौधे का ही उपयोग करे क्योंकि थोड़े से ही अपरिष्कृत पदार्थ की आवश्यकता होती है। इसके अल्प भाग को झटके देकर आगे शक्तिकरण करने से पहले वह कुछ ग्रेन खरल में ले और फिर 100 ग्रेन शूगर ऑफ मिल्क के साथ अलग से तीन बार में दस लाखवें तक शक्तिकरण (270वाँ अनुच्छेद) करे, यही प्रक्रिया अन्य अपरिष्कृत सूखे और तैलाक्त प्रकृति के पदार्थों के लिए भी अपनाए।''

इस अनुच्छेद के 'होम्योपैथिक औषधियाँ स्वयं तैयार करे' के सम्बन्ध में उन्होंने टिप्पणी में कहा है कि:

''भविष्य में जब तक होम्योपैथिक औषधियों का पूरी तरह उपयुक्त निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा निर्माण न होने लगे और उनको होम्योपैथिक अस्पतालों में प्रशिक्षित होम्योपैथिक चिकित्सकों, जिनकी थ्योरी और प्रक्टिकल में परीक्षा हो चुकी हो और इस प्रकार वैधरूप से योग्य हों, न केवल उनको, बल्कि और रोगियों - गरीब और अमीर - को भी नि:शुल्क देने के लिए उपलब्ध कराने की अपरिहार्यता में अर्न्तदृष्टि नहीं आ

Dr. S.K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

जाती, तब ही चिकित्सक आरोग्यकारक इन उपकरणों के प्रति आश्वस्त हो सकते हैं।''

272वें अनुच्छेद में वे एक समय में एक ही औषधि देने की राय देते हैं। वे कहते हैं कि:

''किसी भी मामले में एक समय में एक अकेले, सादे औषधीय पदार्थ से अधिक देना उपयुक्त नहीं है।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में उनका कहना है कि:

''जिन मामलों में लक्षणों के एक भाग के लिए एक औषधि और दूसरे भाग के लिए दूसरी औषधि होम्योपैथिक रूप से उपयुक्त लगे, उसके लिए कुछ होम्योपैथों ने परीक्षण के लिए दोनों औषधियाँ एक साथ या लगभग एक साथ उपयोग कीं; परन्तु ऐसे खतरनाक परीक्षण की मैं ईमानदारी से निन्दा करता हूँ, यद्यपि ऐसा कभी कभी उपयुक्त प्रतीत होता हो, परन्तु कभी भी आवश्यक नहीं हो सकता।''

ऑर्गेनन के छठे संस्करण में इस 272वें अनुच्छेद को नए सिरे से लिखा। वे लिखते हैं कि:

''इस प्रकार का एक ग्लोब्यूल (ऐसे ग्लोब्यूल (270वाँ अनुच्छेद) यदि सूर्य के प्रकाश और गरमी से बचा कर रखे जाएँ, तो उनके औषधीय गुण अनेक वर्षों तक बने रहते हैं।) नए रोग के मामले में जीभ पर रखना अल्पतम मात्रा होती है। इस प्रकार औषधि से केवल कुछ स्नायु स्पर्श हो पाते हैं। वही ग्लोब्यूल जब थोड़ी सी शूगर ऑफ मिल्क के साथ कुचल कर और हर बार उपयोग से पहले काफी पानी में अच्छी तरह घोल कर (247वाँ अनुच्छेद) दिया जाय तो अनेक दिनों के उपयोग के लिए कहीं अधिक शक्तिशाली औषधि बन जाएगा। इसकी प्रत्येक मात्रा, कितनी ही छोटी क्यों न हो, उलटे, अनेक स्नायुओं को स्पर्श करेगी।''

273वें अनुच्छेद में औषधियों के मिश्रण के उपयोग की शंका दूर करते हुए कहते हैं कि:

''यह समझ के बाहर है कि इसमें कुछ शंका बाकी रहती है कि किसी रोग की प्रकृति के अनुसार और अधिक तर्कसंगत तरीके से अच्छी तरह ज्ञात अकेली औषधि एक समय में देना, या अनेक भिन्न प्रकार से क्रिया करने वाली औषधियों का मिश्रण देना उपयुक्त होता है।''

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

छठे संस्करण में महर्षि हैनिमैन ने इस 273वें अनुच्छेद को दोबारा नए सिरे लिखा जो आगे लिखे अनुसार है:

''चिकित्सा के अन्तर्गत किसी रोगी मामले में यह आवश्यक है अत: इसकी आज्ञा नहीं दी जा सकती है कि रोगी को एक समय में, एक अकेले, सादे औषधीय पदार्थ से अधिक औषधि दी जायें, यह समझ के बाहर है कि इस बात में भी कुछ शंका की गुंजाइश हो कि किसी रोग की प्रकृति के अनुसार और अधिक तर्कसंगत तरीके से अच्छी तरह ज्ञात अकेली, सादी औषधि एक समय में देना, या अनेक भिन्न प्रकार से क्रिया करने वाली औषधियों का मिश्रण देना उपयुक्त होता है। होम्योपैथी में, जो आरोग्य की एक सच्ची, साधारण और प्राकृतिक कला है, ऐसा करने की अनुमति बिल्कुल भी नहीं है कि दो भिन्न प्रकार के औषधीय पदार्थ एक ही समय में दिए जाएँ।''

उपरोक्त अनुच्छेद में 'सादी औषधि' के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी दी है:

''दो एक दूसरे के विपरीत पदार्थ, अपरिवर्तनीय अनुपात में रासायनिक बन्धुत्व (affinity) से मिल कर नेट्रम तथा मध्यम लवणों में निष्क्रिय हो कर एकजुट हो जाते हैं, इसी प्रकार जमीन में सल्फ्यूरेटेड धातुएँ मिलती हैं और तकनीकी कला से सल्फर और एल्कलाइन लवणों और मिट्टी के निरन्तर संयोग वाले अनुपात से यथा नेट्रम सल्फ और कैल्केरिया सल्फ, आदि उत्पन्न होते हैं, साथ ही वे भी जो अल्कोहल और एसिड और सम्भवत: फॉस्फोरस के सहित आसवन (distillation) से यथा ईथर आदि पैदा होते हैं, उनको होम्योपैथिक चिकित्सक द्वारा सादे औषधीय पदार्थ के समान ही मानना चाहिए और रोगियों के लिए उपयोग करना चाहिए। दूसरी ओर वे रस जो पौधों के तथाकथित एल्कलॉयड जो एसिड के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं वे उत्पादन में बहुत भिन्न प्रकार से अनावृत्त (exposed) होते है उदाहरण के लिए चिनिन, स्ट्रिकनिन, मॉर्फिन, आदि, तथापि, केवल एल्कलॉइड ही पौधों के घटक नहीं होते हैं। अत: ये होम्योपैथिक चिकित्सक द्वारा सादी औषधियों की तरह स्वीकार नहीं किए जा सकते, क्योंकि ये उसको इनकी प्राकृतिक अवस्था में यथा पेरुवियन छाल, नक्स वोमिका, ओपियम आदि पौधों में हमेशा ही इनके आरोग्यकारक सारे गुणों के साथ उपलब्ध रहते हैं।।''

274वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि चिकित्सक को सादी औषधियों में ही उसकी वान्छित आरोग्यकारक कृत्रिम रोग शक्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। उनका कहना है कि:

Dr. S. K. Mangain, Email: drmangain@gmail.com

''क्योंकि सच्चे चिकित्सक को सादी औषधियों को अकेली और अमिश्रित ही उपयोग करने से उसे उसका वान्छित परिणाम मिल जाता है (होम्योपैथिक औषधि की कृत्रिम रोग शक्तियाँ जो प्राकृतिक रोगों को पूरी तरह वश मे करके, बुझा कर स्थायी आरोग्य कर देती है), प्रबुद्ध चिकित्सक इस कहावत को ध्यान में रखते हुए कि, ''जब सादे साधन पर्याप्त हों तो जटिल साधनों का उपयोग करने का प्रयत्न गलत होता है'' कभी भी अकेले, सादे औषधीय पदार्थ के अतिरिक्त अन्य कोई भी औषधीय पदार्थ साथ में देने की बात नहीं सोचेगा, इन कारणों से भी, क्योंकि अकेली औषधियाँ तो उनके विशिष्ट प्रभाव स्वस्थ दशा के व्यक्तियों पर अच्छी तरह परीक्षणों से ज्ञात हो चुके होते हैं, परन्तु पहले से ही यह जान लेना असम्भव है कि दो या अधिक औषधीय पदार्थ संयोजित होने के बाद, मानव शरीर पर एक दूसरे के प्रभाव को रोकेंगे या बदल देंगे और क्योंकि, दूसरी ओर सादा औषधीय पदार्थ जब रोगों में उपयोग किया जाता है, जिसके समस्त लक्षण सही तरीके से ज्ञात होते हैं, और यदि इसका चुनाव होम्योपैथिक तरीके से किया गया है तो यह अकेला ही प्रभावशाली सहायता प्रदान करता है; और मान लो यदि मामला खराब हो जाता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि इसका चुनाव लक्षणों की समानता पर कड़ाइ से नहीं हुआ था, अतः इससे लाभ नहीं हुआ, तथापि ऐसा भी इतना उपयोगी होता है कि इससे हमारी चिकित्सा कारकों के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है, क्योंकि, ऐसे मामले में उत्पन्न नए लक्षण से उन लक्षणों की पुष्टि होती है जो इस पदार्थ ने स्वस्थ मानव शरीर पर परीक्षणों के दौरान पहले ही प्रदर्शित किए थे, जिससे लाभ होता है जो सभी संयोजित (all compound) औषधियों के उपयोग से नहीं हो सकता।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में वे लिखते हैं कि:

''जब अच्छी प्रकार विचार किए गये रोग के मामले में ज्ञानवान चिकित्सक पूर्ण रूप से होम्योपैथिक औषधि का चुनाव कर ले और इसका आन्तरिक उपयोग कर ले, तो वह काढ़े देने और विभिन्न जड़ियों की सिकाई करने, औषधीय एनीमा देने और यह या वह मरहम मलने का काम अज्ञानी एलोपैथिक की दिनचर्या के लिए छोड़ देगा। *(अर्थात् उसको इन सब प्रकार की चिकित्सा की आवश्कता ही नहीं पड़ेगी।)*''

महर्षि हैनिमैन की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है, पिछले लगभग पाँच दशक के चिकित्सा अनुभव में मुझे (डा0 ममगाईं) चर्म रोगों में केवल नारियल के तेल के अतिरिक्त किसी मरहम, रियूमेटिक दर्दो में किसी औषधीय तेल की मालिश के लिए देने या कब्ज आदि के लिए किसी रेचक (कब्ज दूर करने की औषधि या एनीमा) देने की

Dr. S.K. Mamgain, Email: drmangain@gmail.com

आवश्यकता ही नहीं पड़ी केवल होम्योपैथिक औषधियों की अति अल्प मात्राओं से ही रोगियों को वान्छित आरोग्य की प्राप्ति हो गई। मेरे अपने अनुभव के परिणाम मेरी वेब साइट www.homoeopathy-milddose.co पर पाठकों के लिए मेरे लेखों में 'रोगियों के इतिहास (case history and articles)' और 'यू ट्यूब चैनल' पर डॉक्यूमेण्टरी विडियो में प्रमाण के रूप में पढ़ने और देखने के लिए उपलब्ध हैं। उक्त वेब साइट पर यह सब देखने के लिए Log in पर क्लिक करके 'साइन इन' पेज पर Login as Guest पर क्लिक करिये।

275वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि किसी भी हस्तगत रोगी के मामले में औषधि की उपयुक्तता केवल सही होम्योपैथिक औषधि पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि उसकी सही मात्रा आदि भी आवश्यक होती हैं। वे कहते हैं कि:

''किसी भी रोग के हस्तगत मामले में औषधि की उपयुक्तता केवल इसके सही होम्योपैथिक चुनाव पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि इसी प्रकार इसके उपयुक्त आकार या वस्तुत: मात्रा की अल्पता पर भी निर्भर करती है। यदि हम औषधि की बहुत प्रबल मात्रा देते हैं, जो भले ही हस्तगत रोग के लिए बिल्कुल होम्योपैथिक रूप से चुनी गई हो, तो इसके जीवनीशक्ति पर स्वभावगत लाभकारी चरित्र के बावजूद और इसकी होम्योपेथिक क्रिया की समानता के सद्गुण के कारण जीवनीशक्ति द्वारा पहले से ही प्राकृतिक रोग से बहुत संवेदनशील हो चुके पीड़ित अंगों पर आक्रमण करके, निश्चित ही इसके केवल आकार और अनावश्यक और अत्यधिक प्रबल प्रभाव के कारण हानिकारक सिद्ध हो जाती है।''

276वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन कहते हैं कि भले ही होम्योपैथिक दृष्टिकोण से औषधि पूरी तरह उपयुक्त हो परन्तु मात्रा बड़ी होने से हानि ही करेगी। उनका कहना है कि:

''इस कारण से कोई औषधि भले ही होम्योपैथिक रूप से रोग के लिए उपयुक्त हो, हानि करेगी यदि प्रत्येक मात्रा बड़ी हो, मात्रा जितनी बड़ी अर्थात् जितनी प्रबल होगी हानि उतनी ही अधिक होगी, चुनी गई औषधि जितना अधिक होम्योपैथिक होगी और पोटेन्सी* जितना अधिक उच्च होगी वह अनहोम्योपैथिक और रोग की दशा के साथ किसी सम्बन्ध के बिना (एलोपैथिक) औषधि की उतनी ही बड़ी मात्रा की अपेक्षा कहीं अधिक नुकसान पहुँचाएगी**, क्योंकि उक्त मामले में तथाकथित होम्योपैथिक

Dr. S. K. Mangain: Email: drmangain@gmail.com

रोग वृद्धि (157वें से 160वाँ अनुच्छेद) हो जाती है - कहने का तात्पर्य यह है कि औषधि की अत्यधिक बड़ी मात्रा के द्वारा जीवनीशक्ति आन्दोलित हो कर, मूल रोग द्वारा शरीर के अत्यधिक कष्टयुक्त और अत्यधिक क्षोभित अंगों में उत्पन्न अत्यधिक समान औषधीय रोग हो जाता है, जो यदि उपयुक्त मात्रा की तीव्रता से होता, तो वह सौम्यता से आरोग्य कर देती और रोगी मूल रोग से और अधिक कष्ट नहीं पाता अर्थात् होम्योपैथिक तरीके से रोग निर्मूल हो जाता, परन्तु इस प्रकार वह हानिकारक उँचाई तक बढ़ जाता है, और रोगी औषधीय रोग अत्यधिक वृद्धि से और भी अधिक कष्ट तथा साथ ही अनावश्यक शक्ति की हानि पाता है।''

* पोटेन्सी के सम्बन्ध में वे टिप्पणी करते हुए लिखते है कि:

''पिछले कुछ वर्षो के समय के होम्योपैथिक चिकित्सक बड़ी मात्राओं की प्रशंसा करते हैं, वे ऐसा या तो औषधि की निम्न पोटेन्सी का चुनाव करने से, जैसा मैं अधिक अच्छी तरह से न जानने के कारण बीस वर्ष पहले किया करता था या चुनी गई औषधि पूरी तरह से होम्योपैथिक नहीं होने के कारण से या वे सही तरीके से निर्मित नहीं होने से, करते हैं।''

** छठे संस्करण में 276वें अनुच्छेद में इन तारक चिन्हों से आगे का भाग उन्होंने इस प्रकार दोबारा लिखा:

''सही तरीके से चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की बड़ी मात्राएँ, खासतौर से जब उनकी अक्सर पुनरावृत्ति की जाती है तो नियमत: अत्यधिक कष्ट देती हैं। वे अक्सर रोगी को मृत्यु के संकट में डाल देती हैं या फिर उक्त रोग को लगभग असाध्य बना देती हैं। वे निश्चय ही, जहाँ तक जीवनीशक्ति की अनुभूति का सम्बन्ध है मूल रोग को तो समाप्त कर देती हैं, परन्तु रोगी को जिस क्षण से होम्योपैथिक औषधि की प्रबल मात्रा ने प्रभाव किया उसी क्षण से मूल रोग से पीड़ित नहीं रहता, बल्कि, फलस्वरूप प्रबल समान औषधीय रोग से प्रभावित हो जाता है जिसे समाप्त करना अत्यधिक कठिन हो जाता है।''

उपरोक्त स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने एक टिप्पणी की है जिसमें उदाहरण सहित बतलाया है कि सिफिलिस के मामले में मर्करी की बड़ी और लगातार मात्राओं से किस प्रकार लगभग असाध्य मर्करी रोग विकसित हो जाते हैं जबकि मर्करी से होम्योपैथिक तरीके से तैयार एक या कुछ सौम्य क्रियाकारी मात्राओं से शैकर व्रण सहित, यदि वह बाहरी उपयोग की दवाओं से नष्ट न कर दिया गया होता (जैसा कि एलोपैथी में हमेशा ही कर दिया जाता है), तो पूरा यौन रोग निश्तिरूप से समाप्त हो गया होता। इसी प्रकार सविराम ज्वर में एलोपैथ बड़ी मात्रा में नित्य कुनैन दे कर करते हैं, जबकि जहाँ

Dr. S. K. Mangain. Email: drmangain@gmail.com

सही इंगित होने पर उच्च शक्ति की चायना की अति अल्प मात्रा से, उन मामलों में भी जिनमे स्पष्टरूप से सोरिक प्रभाव नहीं रहा हो, दलदली सविराम ज्वर सफलतापूर्वक समाप्त हो गया होता। इस प्रकार साथ ही सोरा के विकास के साथ एक क्रॉनिक चायना रोग उत्पन्न हो जाता है जो रोगी के महत्वपूर्ण आन्तरिक अंगों, विशेषत: तिल्ली और यकृत को क्षति पहुँचा कर धीरे धीरे मार नहीं भी देता है, तो भी उसको वर्षो तक कष्ट सहने के लिए स्वास्थ्य की दुखदायी अवस्था में डाल देता है। होम्योपैथिक औषधियों की बड़ी मात्राओं के दुरुपयोग से उत्पन्न ऐसे दुर्भाग्य के लिए होम्योपैथिक एण्टिडोट का विचार करना भी मुश्किल होता है। अर्थात्, ऐसे मामलों के लिए कोई ऐण्टिडोट भी नहीं मिलता है।

277वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि इसी कारण से उपयुक्त होम्यापैथिक औषधि की अल्पतम मात्रा ही सौम्य उपचारात्मक प्रभाव के लिए यथोचित होती है। उन्हीं के शब्दों में:

> ''और इसी कारण से, यदि किसी औषधि की मात्रा काफी कम हो और इसका चुनाव सही होम्योपैथिक तरीके से किया गया हो तो अधिक हितकारी और आश्चर्यजनकरूप से गुणकारी होगी, इस प्रकार चुनी गई औषधि की मात्रा अल्पता की कोटि (degree) में जितना अधिक कम कर दी जाएगी उपचार का प्रभाव उतना ही अधिक मृदुता के साथ होगा।''

278वें अनुच्छेद में वे स्पष्ट करते हैं कि अब प्रश्न उठता है कि अल्पता की यह उपयुक्त कोटि क्या हो। इसको उन्होंने इस बात को आगे लिखे अनुसार स्पष्ट किया है:

> ''यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि निश्चित और सौम्य उपचार के लिए अल्पता की यह सर्वाधिक उपयुक्त कोटि कितनी हो, दूसरे शब्दों में किसी रोग के मामले के सर्वोत्तम आरोग्य करने के लिए होम्योपैथिक रूप से चुनी गई प्रत्येक अलग औषधि की मात्रा कितनी छोटी होनी चाहिए? इस समस्या को हल करने के लिए और प्रत्येक विशिष्ट मात्रा निर्धरित करने के लिए कि होम्योपैथिक चिकित्सा के उद्देश्य के लिए कितनी मात्रा पर्याप्त होगी फिर भी इतनी अल्प कि सौम्यतम तरीके से और अति द्रुत गति से आरोग्य प्राप्त हो जाए – जैसा कि आसानी से समझा जा सकता है कि इस समस्या का हल जो कि थ्योरिटिकल अनुमान का काम नहीं है, न चतराईपूर्ण तर्को से ही और न ही मिथ्या वादानुवाद आदि से ही निकाल सकते हैं, उसको कैसे निकाल सकेत हैं। यह उतना ही असम्भव है जितना कि कल्पना किए जा सकने वाले रोगी

Dr. S. K. Mangain; Email: drmangain@gmail.com

मामलों की अग्रिम सारिणि तैयार करना। इसके हल का निर्धारण तो, प्रत्येक रोगी की संवेदनशीलता का शुद्ध परीक्षण, सावधानी पूर्वक अवलोकन तथा सही अनुभव द्वारा ही हो सकता है; और पुरानी पद्धति की अनुपयुक्त (एलोपैथिक) औषधियों की बड़ी मात्राओं का उल्लेख करना बेतुका है, जो शरीर के रोगी पक्ष को होम्योपैथिकरूप से स्पर्श तक नहीं कर सकता बल्कि केवल रोग से अप्रभावित अंगों पर आक्रमण करता है, जबकि इसके विपरीत, शुद्ध अनुभव होम्योपैथिक आरोग्य के लिए वान्छित मात्राओं की अल्पता के बारे में ही घोषणा करता है।''

279वें अनुच्छेद में महर्षि हैनिमैन शुद्ध अनुभव के आधार पर बतलाते हैं कि चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की उच्च पोटेन्सी की मात्रा कभी भी इतनी छोटी नहीं बनाई जा सकती है कि वह प्राकृतिक रोग से प्रबल नहीं रहेगी।

''यह शुद्ध अनुभव सर्वत्र यही प्रदर्शित करता है कि यदि रोग स्पष्टरूप से किसी महत्वपूर्ण जैव रस की विकृति पर निर्भर नहीं करता है (भले ही यह क्रॉनिक और जटिल रोगों से सम्बद्ध हो) और यदि चिकित्सा के दौरान अन्य सभी विजातीय औषधीय प्रभावों से रोगियों को बचाए रखा जाय, होम्योपैथिकरूप से चुनी गई और उच्च शक्ति की औषधि कभी भी इतनी हल्की नहीं बनाई जा सकती है कि वह प्राकृतिक रोग से शक्तिशाली नहीं हो और उसको आंशिक रूप से भी वश में करके शांत और आरोग्य करने योग्य न हो सके और जीवनीशक्ति की अनुभूति से रोग को शान्त करते हुए आरोग्य का प्रारम्भ न कर सके।''

280वें अनुच्छेद में अनुभव पर आधारित निर्विवाद सूक्ति (axiom) का वर्णन करते हैं कि होम्योपैथिक औषधियों की मात्राओं को इतना छोटा किया जा सकता है कि उनका उपयोग करने पर कदाचित ही अवलोकन योग्य रोग वृद्धि हो पाये। वे कहते हैं कि:

''अनुभव पर आधारित यह निर्विवाद सूक्ति प्रामाणिक मापदण्ड है जिसके द्वारा सभी होम्योपैथिक औषधियों को बिना अपवाद इतनी छोटी सीमा तक घटाया जा सकता है कि उनको खाने के बाद वे कदाचित ही अवलोकन योग्य होम्योपैथिक रोग वृद्धि कर सकें, मात्रा की न्यूनता को इस सीमा तक जाने दो, जो भले ही सामान्य भौतिकवादी चिकित्सक के विचारों को अविश्वसनीय प्रतीत हो; उनके निरर्थक वक्तव्य इस अचूक अनुभव के निर्णय के सामने समाप्त हो जाएँगे।''

मात्रा की अविश्वसनीय अल्पता पर विश्वास नहीं करने वाले चिकित्सको के लिए उन्होनें लम्बी टिप्पणी में ऐसी भारहीन वस्तुओं यथा कैलोरी, प्रकाश आदि, तथा गहरा

Dr. S. K. Munggain: Email: drmunggain@gmail.com

प्रभाव करने वाले कठोर शब्दों का भार नाप सकने आदि के अनेक उदाहरणों से अल्प मात्रा की इस सूक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है; जबकि होम्योपैथिक औषधियों में फिर भी कुछ तो रहता है, ऐसे चिकित्सक होम्योपैथिक सिद्धान्तो के अनुसार इन औषधियों का परीक्षण करके तो देखें।

इस 280वें अनुच्छेद को उन्होंने छठे संस्करण में नए सिरे से पुनः निम्नलिखितरूप से लिखा:

''औषधि की मात्रा जो बिना कोई कष्टकर लक्षण उत्पन्न किए कार्यकारी होती है उसे धीरे धीरे बढ़ती हुई पोटेन्सी में तब तक देना जारी रखा जाय जब तक कि रोगी सामान्य स्वास्थ्य के सुधार में अपने पुराने रोग के एकाधिक कष्टों की हल्की पुनरावृत्ति अनुभव न करने लगे। औषधि की हर बार झटके दे कर (247वाँ अनुच्छेद) संशोधित करते हुए धीरे धीरे बढ़ती हुई पोटेन्सी की संयत मात्राओं के माध्यम से आरोग्य की प्राप्ति निकट आ जाने का इंगित मिलता है। यह इंगित करता है कि जीवनीशक्ति को समान औषधीय रोगशक्ति द्वारा प्राकृतिक रोग की अनुभूतियों को अब और अधिक प्रभावित करने की आवश्यकता नहीं रही है (148वाँ अनुच्छेद)। इससे यह भी संकेत मिलता है कि अब जीवनीशक्ति प्राकृतिक रोग से स्वतन्त्र हो गई है और अब उसे पुराने कष्ट एकाधिक लक्षण अनुभव होना शुरु हुए हैं वे औषधीय रोग के कारण से हुए हैं, जिसे हम होम्योपैथिक रोग वृद्धि के नाम से जानते है।''

तात्पर्य यह है कि उपयुक्त होम्योपैथिक औषधि की अल्पतम मात्रा झटके दे कर धीरे धीरे औषधि की पोटेन्सी को संशोधित करते हुए तब तक देते रहें जब तक कि रोग की समस्त अनुभूतियाँ समाप्त हो कर नए सिरे से रोग की एकाधिक अनुभूति पुनः अनुभव न होने लगे। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि रोग पूरी तरह समाप्त हो चुका है, रोगी निरोग हो गया है; और रोग के जो कुछ लक्षण आने शुरु हए हैं वे मात्र होम्योपैथिक रोग वृद्धि है तथा इस बात की द्योतक है कि अब रोगी को और अधिक औषधि देने की जरूरत नहीं रही है।

281वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि प्रत्येक रोगी, खासतौर से अपने रोग वाले अंग में समानता की क्रिया के अनुरूप औषधीय कारक से अविश्वसनीय कोटि तक प्रभावित होने में सक्षम हो जाता है। वे कहते हैं कि:

''प्रत्येक रोगी विशेष रूप से अपने रोगी अंग में समानक्रियाकारी औषधीयकारक के द्वारा अविश्वसनीय कोटि तक प्रभावित होने में सक्षम हो जाता है, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो भले ही कितना ही हट्टा कट्टा हो, किसी क्रॉनिक रोग से या तथाकथित

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

स्थानिक रोग से पीड़ित होने पर, यदि वह स्वागत योग्य, होम्योपैथिकरूप से उपयुक्त औषधि कल्पनीय अल्पतम मात्रा में ले तो जल्दी ही प्रभावित अंग में वान्छित परिवर्तन अनुभव करने लगेगा, जबकि इसी मात्रा से एक दिन की उम्र के शिशु के स्वास्थ्य में ऐसा परिवर्तन नहीं करेगी जितना अधिक कि उक्त व्यक्ति के स्वास्थ्य में कर देगी। अनुभव के आधार पर इस त्रुटिहीन, और अचूक प्रमाण के विपरीत काल्पनिक संशयात्मकता (scepticism) कितनी तुच्छ और मूर्खतापूर्ण है।''

ऑर्गेनन के छठे संस्करण में उन्होंने इस अनुच्छेद को नए सिरे से दोबारा लिखा:

''रोगी निरोग हो गया है कि नहीं इसके लिए आश्वस्त होने के लिए, रोगी को बिना औषधि दिए आठ, दस या पन्द्रह दिन तक बिना औषधि दिए रखना चाहिए, इस बीच केवल शूगर ऑफ मिल्क की पुड़ियें देनी चाहिएँ। यदि अन्तिम कुछ कष्ट औषधि के कारण पूर्व मूल रोग के लक्षणों के समान विद्यमान रह जाते हैं, तो ये कष्ट कुछ घण्टो में या कुछ दिनों में समाप्त हो जाएँगे। यदि, स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए बिना औषधि वाले इन दिनों के दौरान मूल रोग का कुछ भी शेष दिखलाई न पड़े तो सम्भ्वत: रोगी निरोग हो गया। यदि बाद के दिनों में पूर्व रोग के कुछ अवशेष दिखलाई पड़ें, तो वे मूल रोग के पूरी तरह निरोग नहीं हो पाने से बचे अंश होते हैं, इनकी चिकित्सा नए सिरे से पहले निर्देशित तरीके से औषधि की उच्चतर पोटेन्सी से करनी चाहिए। यदि सुधार होना शुरु हो जाता है तो हर बार अल्प मात्राएँ पूर्ववत् धीरे धीरे बढ़ाते हुए देनी चाहिएँ, जबकि कम संवेदनशील रोगियों को उच्चतर पोटेन्सी जल्दी जल्दी दी जा सकती हैं परन्तु उनकी अपेक्षा जहाँ क्षोभ (irritability) स्पष्टत: अधिक हो हल्की और अधिक देर से दी जानी चाहिएँ। ऐसे भी रोगी होते हैं जिनकी संवेदनशीलता का अनुपात कम संवेदनशील व्यक्तियों के साथ 1000:1 होता है।''

282वें अनुच्छेद में उनका कहना है कि होम्योपैथिक औषधि की अल्पतम मात्रा जो केवल अत्यल्प रोग वृद्धि करने में समर्थ हो मात्र पहले से ही रोग से प्रभावित अंगों पर आक्रमण करती है।

''होम्योपैथिक औषधि की अल्पतम मात्रा जो केवल अत्यल्प रोग वृद्धि करने में समर्थ हो, क्योंकि इसमें मूल रोग के लक्षणों के यथा सम्भव अत्यधिक समान (लेकिन फिर भी अल्प मात्रा से ही शक्तिशाली) लक्षण उत्पन्न करने की क्षमता होती है अत: मूल रोग के साथ इसकी अत्यधिक समानता होने के कारण यह मुख्यत: पूरी तरह तत्समान उद्दीपन से केवल पहले से ही रोग से प्रभावित, उत्तेजित और अत्यधिक संवेदनशील हो चुके

Dr. G. K. Mangalin Email: drmangalin@gmail.com

अंगों पर आक्रमण करती है, जीवनीशक्ति जो उन अंगों का संचालन करती है उनमें प्राकृतिक रोग से कुछ अधिक कोटि की यह अत्यधिक तत्समान कृत्रिम रोग की दशा उस प्राकृतिक (मूल) रोग का स्थान ले लेगी, जिसके कारण जीवित शरीर अब केवल कृत्रिम औषधीय रोग से पीड़ित हो जाता है, जो अपनी प्रकृति और मात्रा की अल्पता के कारण जीवनीशक्ति द्वारा जो अपनी सामान्य स्थिति में आने के लिए प्रयासरत रहती है (और यदि रोग केवल एक्यूट था) के द्वारा जल्दी ही समाप्त कर दिया जाता है तथा शरीर पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो जाता है अर्थात् पूरी तरह स्वस्थ।''

छठे संस्करण में उन्होने इस अनुच्छेद को निम्नलिखित शब्दों में नए सिरे से पुनः लिखा:

''यदि चिकित्सा के दौरान, विशेषरूप से क्रॉनिक रोगों में, पहली मात्रा तथाकथित होम्योपैथिक रोग वृद्धि कर दे अर्थात् पहली बार ज्ञात किए गए रोग के मूल लक्षणों में वृद्धि हो, और इसी प्रकार प्रत्येक बार, तथापि, खिलाने से पहले झटके दे कर कुछ संशोधित (और अधिक पोटेन्टाइज) करने के बाद दोहराने पर भी (247वाँ अनुच्छेद) हो तो यह एक सुनिश्चित संकेत होगा कि औषधि की मात्राएँ एकदम अधिक बड़ी थीं।''

इस नये लिखे गए अनुच्छेद के लिए उन्होंने आगे लिखी टिप्पणी जोड़ी क्रॉनिक धातुदोषों के कारण उनकी उपस्थिति को दर्शाने वाले कष्ट यथा, खुजली, रतिज व्रण और मस्से आदि आन्तरिक चिकित्सा से ही इन वाह्य कष्टों सहित आरोग्य हो जाते हैं:

''तीन वृहत् क्रॉनिक धातुदोषों के रोग जो कि अभी तक भी चर्म की सतह पर ही बढ़ रहे हों, अर्थात्, हाल ही में उत्पन्न हुई खुजली, (यौन अंगों, भगौष्ठ, मुख या ओठ, इत्यादि पर) अछूते रतिज व्रण (chancre) और अंजीर जैसे मस्से की होम्योपैथिक चिकित्सा यथा सम्भव अल्पतम मात्राओं से शुरु करने और धीरे धीरे बढ़ाते जाने का नियम एकमात्र अपवाद है। इन्हे न केवल सहन करने बल्कि वास्तव में शुरु से ही उनकी अपनी स्पेसिफिक औषधियों की नित्य उच्च से उच्चतर पोटेन्सी की (सम्भवतः नित्य अनेक बार) माँग करती हैं। यदि यह प्रक्रिया अपनायी जाय तो आन्तरिक रोगों की चिकित्सा की तरह किसी खतरे का भय नहीं होता, कि औषधि की बड़ी मात्रा जबकि रोग को तो समाप्त कर देती है परन्तु उसके निरन्तर उपयोग से सम्भवतः एक औषधीय क्रॉनिक रोग की शुरुआत कर देती है। इन तीन धातुदोषों के वाह्य कष्टों में ऐसा नही होता, क्योकि उनकी चिकित्सा में दैनिक प्रगति से देखा तथा निर्णय किया जा सकता है कि दिन प्रतिदिन बड़ी मात्रा जीवनीशक्ति से कितनी कोटि तक रोग की अनुभूति को हटा देती है; क्योंकि चिकित्सक को इनके लोप हो

Dr. S. K. Mangalik, Email: drmangalik@gmail.com

जाने के माध्यम से यह प्रतीति हुए बिना कि अब आगे इन औषधियों की और आवश्यकता नहीं है इन तीनों का आरोग्य नहीं हो सकता। क्योंकि रोग कोई पदार्थ न हो कर केवल जीवनीशक्ति पर ऊर्जस्वी (dynamic) आक्रमण मात्र होते हैं, उनके आधार – भौतिक दोष नहीं (no materia peccans) – होते (जैसा कि पुरानी पद्धति के चिकित्सकों का काल्पनिक भ्रम है और पिछले हजार साल से रोगियों के ध्वंस के लिए उसी प्रकार चिकित्सा कर रहे हैं) इन रोगी मामलों में, इन तीनों धातुदोषों की स्थानिक चिकित्सा शुरु करके पहले ही उसका वाह्य रूप हटा कर, जला कर या बाँध कर अथवा काट कर अलग करके और रोगी को अन्तहीन तथा अधिक असाध्य रोगी किए बिना, निकाल दिए जाने के लिए कुछ भी पदार्थ नहीं होता है। ये तो जीवनीशक्ति के ऊपर आन्तरिक घातक धातुदोषों के ऊर्जस्वी (dynamic) और प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के वाह्य संकेत मात्र होते है, जिनको जीवनीशक्ति के ऊपर समान परन्तु शक्तिशाली होम्योपैथिक औषधि की क्रिया द्वारा इस बाहरी और भीतरी आत्मा-स्वरूप रोग शत्रु की अनुभूतियों को खींच कर पूरी तरह समाप्त कर दिया जाता है और इस प्रकार जीवनीशक्ति के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं रहता और रोगी रोग से मुक्त हो कर निरोग हो जाता है। (*ये बाहरी संकेत किसी वाह्य चिकित्सा किए बिना स्वयं ही समाप्त हो जाते है।*)

तथापि अनुभव सिखाता है कि खुजली और इसके वाह्य कष्ट, साथ ही आन्तरिक रतिज धातुदोष सहित रतिज व्रण केवल आन्तरिक रूप से दी गई स्पेसिफिक औषधियों के माध्यम से ही निरोग की जानी चाहिएँ। परन्तु अंजीर जैसे मस्से यदि वे लम्बे समय तक बिना चिकित्सा के रहे हों तो उनको पूरी तरह आरोग्य करने के लिए उनकी चिकित्सा में आन्तरिक स्पेसिफिक औषधि के उपयोग के साथ ही उक्त औषधि का बाहर से भी प्रयोग कर सकते हैं।''

283वें अनुच्छेद में वे बतलाते हैं कि भ्रमवश यदि रोग की प्रकृति के असमान औषधि उपयोग हो जाए तो औषधि की मात्रा अल्पतम होने के कारण किसी हानि की सम्भावना नहीं रहती। वे कहते हैं कि:

''अब वास्तव में प्रकृति की अनुरूपता के साथ सच्चा चिकित्सक अपनी अच्छी प्रकार चुनी गई होम्योपैथिक औषधि की मात्रा बिल्कुल उतनी अल्पतम मात्रा में प्रिस्क्राइब करेगा जितनी कि हस्तगत रोग को वश में करके समाप्त कर देने के योग्य हो, यदि भ्रमवश असमान औषधि उपयोग हो जाए तो इसकी प्रकृति रोग के लिए अनुपयुक्त होने के कारण इससे होने वाली हानि बहुत हल्की होगी, इसके अतिरिक्त यथासम्भव

Dr. G. K. Manggain, Email: drmanggain@gmail.com

अल्पतम मात्रा इतनी हल्की होती है कि इसके प्रभाव को जीवनीशक्ति तथा शीघ्रतापूर्वक समान क्रियाकारी उपयुक्त औषधि का चुनाव करके अल्पतम मात्रा में ही उपयोग कर देने के द्वारा तुरत समाप्त करके सुधार लिया जाता है।''

इस अनुच्छेद को महर्षि हैनिमैन द्वारा छठे संस्करण में इस अनुच्छेद को इसी भाव को प्रकट करते हुए पुनः नए सिरे से लिखा है केवल शब्दों का अन्तर है।

284वें अनुच्छेद में ऑर्गेनन के पाँचवे संस्करण में लिखे गए इस अनुच्छेद को पूरी तरह हटा कर उन्होंने छठे संस्करण में नए सिरे से इस प्रकार लिखा। वे लिखते हैं:

''जीभ, मुख और पेट औषधि के द्वारा सामान्यतः सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, इनके अतिरिक्त तरल अवस्था में, नाक और श्वास संस्थान के अंग सूँघने और मुख के माध्यम से साँस के द्वारा लेने की प्रक्रिया द्वारा भी औषधियों की क्रिया को ग्रहण कर लिया जाता है। परन्तु त्वचा जो पूरे शरीर की चर्म का आवरण है, वह भी औषधीय तरलों की क्रिया के प्रति अनुकूल होती है, खासतौर से यदि इनके लेपन के साथ ही साथ इनका आन्तरिक उपयोग भी किया जाय।''

इस अनुच्छेद की टिप्पणी में उन्होने लिखा है कि:

''औषधियों की शक्ति माँ या दूध पिलाने वाली नर्स के दूध के द्वारा शिशुओं पर क्रिया करके आश्चर्यजनक ढंग से सहायक होती है। शिशु का प्रत्येक रोग सही चुनी गई होम्योपैथिक औषधियाँ संयत मात्रा में दूध पिलाने वाली माता या नर्स को इस प्रकार दिए जाने पर संसार के इन नागरिकों द्वारा बाद के वर्षों की अपेक्षा अधिक आसानी से और निश्चितरूप से उपयोग कर ली जाती हैं। अक्सर, यदि पहले से ही उनको माँ के माध्यम से आनुवंशिकरूप से सोरा स्थानान्तरित न हो तो अधिकांश शिशुओं को दूध पिलाने वाली नर्स के दूध के माध्यम से संक्रमित हो जाता है, लेकिन, साथ ही ऐसे शिशु इसी प्रकार एण्टिसोरिक औषधि द्वारा नर्स के दूध के माध्यम से सुरक्षित किए जा सकते हैं। लेकिन, सोरिक माताओं के मामले में उनकी प्रथम गर्भावस्था के समय किसी सौम्य एण्टिसोरिक चिकित्सा, खासतौर से इस संस्करण में दिए गए निर्देशों (270वाँ अनुच्छेद) के अनुसार तैयार की गई सल्फर की पोटेन्सी के द्वारा सोरा - जो अधिकांश क्रॉनिक रोगों का जन्मदाता होता है - को समाप्त कर देना अपरिहार्य होता है - जो ऐसी आनुवंशिकरूप से पीड़ित माताओं को दिए जाने पर दोनों, माताओं और उनके भ्रूण में से समाप्त कर देता है, और वे भविष्य के लिए पहले ही सुरक्षित हो जाते हैं। यह सत्य है कि इस प्रकार चिकित्सित गर्भवती महिलाओं ने सबको अचम्भित करते हुए अक्सर अधिक स्वस्थ और अधिक

Dr S.K. Mangalm, Email: drmangalm@gmail.com

बलवान वच्चों को जन्म दिया। जो मेरे द्वारा आविष्कृत सोरा के सिद्धान्त के महान सत्य की एक नयी पुष्टि है बस वह दर्द या आक्षेप अथवा चर्म उद्‌भेद से प्रभावित हो सकने वाले अंगों को बचा कर रखे।''

285वें अनुच्छेद में वे कहते हैं कि होम्योपैथिक उपयोग के लिए मात्रा को कम करना जरूरी है इससे औषधि के आयतन में भी कमी को बढ़ावा मिलेगा। वस्तुतः पाँचवें संस्करण के इस अनुच्छेद को महर्षि हैनिमैन नें टिप्पणी सहित हटा करके नए सिरे से इस प्रकार लिखा कि:

''इस प्रकार बहुत पुराने रोगों के लिए जो औषधि आरोग्यकारक सिद्ध हुई है उस औषधि को आन्तरिक रूप से दे कर चिकित्सक इसीको बाहर से भी लगा कर, पीठ, बाहुओं और प्रत्यंगों में मलते हुए आरोग्य क्रिया को आगे बढ़ाए। ऐसा करते समय वह उन अंगों को बचाए रखे जिनमें दर्द या आक्षेप अथवा चर्म के उद्‌भेद हों।''

इस अनुच्छेद के लिए निम्नलिखित टिप्पणी में वे लिखते हैं कि:

''यदा-कदा इस तथ्य से उन शानदार आरोग्यों की व्याख्या की जा सकती है कि जहाँ रोग से विकृत रोगियों को, जिनकी चर्म तथापि स्वस्थ और साफ थी, खनिजयुक्त स्रोतों में, जिनके औषधीय घटक (दैवयोग से) होम्योपैथिकरूप से सम्बन्धित थे, कुछ बार के स्नान के बाद वे तेजी से और स्थायी रूप से आरोग्य हो गए। दूसरी ओर खनिजयुक्त स्नान से उन रोगियों को अधिकता से हानि हुई जिनके चर्म के उद्‌भेद अवदमित इस प्रकार हो गये थे। थोड़ी सी अवधि तक ठीक रहने के बाद, जीवनीशक्ति ने आन्तरिक अवदमित रोग को जीवन और स्वास्थ्य के लिए अधिक महत्वपूर्ण स्थान पर अन्यत्र प्रकट कर दिया।

इसके बदले कभी कभी आँख का स्नायु पक्षाघातग्रस्त होकर अंधापन और कभी कभी क्रिस्टेलाइन लैन्स का धुँधलापन (clouded) हो गया, श्रवण शक्ति समाप्त हो गई, उन्माद अथवा घुटनयुक्त दमा हो गया अथवा मोहित रोगी के कष्ट मिरगी में समाप्त हो गए।''

इसी टिप्पणी में उन्होंने आगे लिखा है कि इस कला का मौलिक चिकित्सक और प्रैक्टिशनर कभी भी ऐसे खनिजयुक्त स्रोतों मे स्नान करने के लिए भेजने की नादानी नहीं करेगा।

286वे अनुच्छेद से 294वें अन्तिम अनुच्छेद तक के अनुच्छेदों में महर्षि हैनिमैन नें तत्कालीन चिकित्सा में उपयोग की जाने वाली मैग्नेट, विद्युतशक्ति, मेस्मेरिज्म तथा स्वस्थ

Dr. S.K.Mangairi, Email: drmangain@gmail.com

एवं अच्छे स्वभाव वाले व्यक्तियों द्वारा मालिश करने आदि से चिकित्सा विधियों पर अपने विस्तृरित विचार व्यक्त किए हैं। प्रचलित एलोपैथिक चिकित्सा में उनके समय से आज तक आए परिवर्तनों के कारण ये विधियाँ आज के समय में लगभग महत्वहीन हो गई हैं। दूसरी ओर होम्योपैथिक चिकित्सा में महर्षि हैनिमैन के निष्ठावान और उत्साही अनुयायीयों द्वारा अनेक नई औषधियों पर परीक्षणों और अवलोकनों द्वारा इनकी रोग उत्पन्न करने की क्षमताओं का आविष्कार करके होम्योपैथी की औषधियों का भण्डार भरा है जिसके माध्यम से वर्तमान युग के निष्ठावान होम्योपैथिक चिकित्सक के लिए लक्षणों की समानता के आधार पर हर प्रकार के अधिकांश रोगों की आरोग्यकारक चिकित्सा करना कहीं अधिक सरल हो गया है। नित नये आविष्कारों के वर्तमान युग में महर्षि हैनिमैन द्वारा लगभग दो शताब्दि पूर्व आविष्कृत वैज्ञानिक और मानवीय दोनों पहलुओं पर पूर्ण रूप से आधारित, होम्योपैथिक चिकित्सा की यह पद्धति, निष्ठावान होम्योपैथिक चिकित्सकों द्वारा इसके मूल सिद्धान्तों के आधार पर चिकित्सा करके हर प्रकार के रोगों से पीड़ित रोगियों को निरन्तर पूरी तरह सहजता से निरोग करते रहने के कारण अपनी सार्थकता और नित्यता को सिद्ध करती रही है। लगभग पाँच दशकों के अपने चिकित्सा अनुभव के आधार मैं (डा0 ममगाई) विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि होम्योपैथी एक वास्तविक संजीवनी विद्या है।

***

उपसंहार

होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति पूरी तरह एक मानवीय और यथार्थ वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है।

मानवीय इसलिए कि महर्षि हैनिमैन ने होम्योपैथिक दर्शन (phylosophy) में सबसे पहले यही लिखा कि:

'चिकित्सक का एकमात्र ध्येय रोगी को आरोग्य करना होता है।'

कैसा हो यह आरोग्य?

'सहज बोधगम्य सिद्धान्तों के आधार पर सहजता के साथ द्रुत गति से प्राकृतिक और सामान्य स्वास्थ्य की स्थायी पुनर्स्थापना।'

ताकि रोगी पुन: सामान्य प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने लगे, और रोगी को फिर किसी औषधि के सहारे की जरूरत न रहे।

एक मानवीय पक्ष यह भी है कि:

Dr. S. K. Mamgain; Email: drmamgain@gmail.com

'चिकित्सक का एक यह भी कर्त्तव्य है कि वह रोगियों को सही पथ्य, परहेज तथा स्वस्थ जीवनचर्या की राय दे, साथ ही जो कुछ भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है उससे बचने के उपायों के प्रति समाज में जागृति पैदा करे।'

इसके बाद आती है बात वैज्ञानिकता की।

वैज्ञानिक आधार पर चिकित्सा करने के लिए चिकित्सक को मौलिकरूप से कुछ बातो का स्पष्ट ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है यथा:

- स्वास्थ्य क्या होता है?
- रोग क्या होता है?
- रोग कितने प्रकार के होते हैं?
- औषधि क्या होती है?
- औषधि के आरोग्यकारक गुण कैसे जाने जा सकते है?
- औषधि कैसे तैयार की जा सकती है कि उसके उपयोग से बिना हानि पहुँचाए रोगी पुन: पूरी तरह स्वस्थ हो जाए?
- हस्तगत रोगी के लिए उपयुक्त औषधि का चुनाव किस प्रकार किया जा सकता है?
- औषधि की उपयुक्त मात्रा या उसकी पुनरावृत्ति अथवा अगली औषधि का निर्धारण कैसे किया जाए?
- चिकित्सक कैसे जाने कि रोगी पूर्णरूप से आरोग्य हो गया?

महर्षि हैनिमैन ने उपरोक्त सभी प्रश्नों के उत्तर अपनी 'ऑर्गेनन ऑफ मेडिसिन' नामक पुस्तक, जिसे यहाँ पर केवल 'होम्यो दर्शन' नाम से दिया है, में विस्तार के साथ स्पष्टरूप से प्राकृतिक सिद्धान्तो के आधार पर वर्णन कर दिए हैं। प्राकृतिक सिद्धान्त शाश्वत और सार्वभौम होते हैं। इसी प्रकार होम्योपैथी के सिद्धान्त भी शाश्वत और सार्वभौम हैं अत: यह वास्तविक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है, यह तथ्य लगभग दो शताब्दियों के अनुभवों से पूरी तरह सिद्ध हो चुका है।

जैसा मैंने अभी कहा है कि महर्षि हैनिमैन ने सब कुछ पूरी तरह, हर पहलू से परख कर स्पष्ट कर दिया है फिर भी मैं संक्षेप में इतना ही कहना चाहूँगा कि भौतिक शरीर को जीवन एक अमूर्त ऊर्जा के माध्यम से मिलता है, जिसे आत्मा, चेतना, प्राण, रूह, इत्यादि अनेक नामों से जाना जाता है, होम्योपैथि में इसी को जीवनीशक्ति (vital force) कहा गया है। वास्तव में शरीर के स्वास्थ्य की तीनों अवस्थाओं के लिए यह जीवनीशक्ति ही उत्तरदायी होती है। ये तीन अवस्थायें इस प्रकार हैं:

Dr S K Mamgain, Email: drmamgain@gmail.com

1. प्राकृतिक सामान्य दशा में स्वास्थ्य।
2. रोग के प्रभाव की दशा में स्वास्थ्य।
3. औषधियों या विभिन्न मादक अथवा विषाक्त पदार्थों के प्रभाव की दशा में स्वास्थ्य।

जिस प्रकार जीवनीशक्ति एक ऊर्जा है उसी प्रकार रोगकारक घटक भी एक प्रकार के ऊर्जा स्वरूप ही होते हैं परन्तु उनकी ऊर्जा जीवन विरोधी होती हैं अत: जब किसी व्यक्ति की जीवनीशक्ति किसी जीवन विरोधी ऊर्जा से प्रभावित हो जाती है तो जीवनीशक्ति की प्रक्रिया विकृत हो कर तत्समान कार्य करने लगती है और प्रभावित व्यक्ति को पहले मानसिक स्तर पर फिर धीरे धीरे शारीरिक स्तर पर भी अनेक कष्ट कर अनुभूतियाँ और लक्षण अनुभव होने लगते हैं। प्राकृतिक सामान्य दशा में स्वास्थ्य से भिन्न ये अनुभूतियाँ और लक्षण ही वास्तव में असली रोग के द्योतक होते हैं और जीवनीशक्ति इन्हीं के माध्यम से वान्छित सहायता के लिए पुकार करती है; और इस प्रकार रोग के प्रभाव की दशा में विकृत स्वास्थ्य का संचालन करती है।

दूसरी ओर औषधियों या विभिन्न मादक अथवा विषाक्त पदार्थों के प्रभाव की दशा में भी स्वास्थ्य में परिवर्तन उत्पन्न हो कर विभिन्न अनुभूतियाँ और लक्षण अनुभव होने लगते हैं जो एक कृत्रिम रोग का ही रूप होते हैं। जीवनीशक्ति इस कृत्रिम रोग की दशा में भी विकृत स्वास्थ्य का संचालन करती है। महर्षि हैनिमैन ने इस नियम का लाभ उठा कर स्वयं अपने ऊपर तथा स्वस्थ और संवेदनशील व्यक्तियों पर परीक्षणों के द्वारा विभिन्न प्रकार के औषधीय पदार्थों में से प्रत्येक औषधीय पदार्थ के अलग अलग रोगकारक गुणों का अधिकाधिक पुरुषों और महिलाओं पर गम्भीर अवलोकनपूर्ण परीक्षणों के माध्यम से पता लगाया और उनका संकलन करके होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका के निर्माण का रास्ता खोला जिसे उनके अनुयायियों ने इसी प्रकार आगे बढ़ा कर मेटेरिया मेडिका का विस्तार किया।

एक प्राकृतिक नियम है कि एक कम शक्ति के रोग को दूसरा समान गुण धर्म परन्तु अधिक शक्तियुक्त रोग हमेशा के लिए समाप्त कर देता है। इसी प्राकृतिक नियम का लाभ उठा कर महर्षि हैनिमैन ने औषधीय पदार्थों की रोगकारक शक्ति को बढ़ा कर परन्तु मात्रा को कम करके ताकि औषधीय रोग स्थायी प्रभाव न डाल सकें जीवनीशक्ति को प्राकृतिक रोगों पर समान गुण धर्म वाले कृत्रिम रोगों से उद्दीपित करके इस तरह प्राकृतिक नियम के अनुसार विजय पा कर बिना किसी दुष्प्रभाव के हर प्रकार के रोगियों को पुन: पूरी तरह स्वस्थ करने की विधि का आविष्कार करके होम्योपैथिक नाम दे कर रोग पीड़ित मानवता की भलाई करने के लिये संसार को प्रदान कर दिया।

Dr S.K. Mangairi, Email: drmangairi@gmail.com

अत: विवेकवान होम्योपैथिक चिकित्सक इन होम्यापैथिक औषधियों के द्वारा केवल शरीर में स्थित जीवनीशक्ति को सही तरीके से उद्दीपित भर कर देता है, शेष आरोग्य का काम तो जीवनीशक्ति स्वयं करती है। परन्तु यश और सम्मान चिकित्सक को ही मिलता है।

जय महर्षि हैनिमैन!!!

Dr. S. K. Mamgain; Email: drmamgain@gmail.com